असीम

राखालदास बंद्योपाध्याय

अनुवादक
शंभुनाथ वाजपेयी

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

सूर्यकुमारी पुस्तकमाला—२४

असीम

राखालदास वंद्योपाध्याय

अनुवादक

शंभुनाथ वाजपेयी

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

प्रकाशक—नागरीप्रचारिणी सभा, काशी
मुद्रक—महताब राय, नागरी मुद्रण, काशी
प्रथम संस्करण १५००, संवत् २०११
मूल्य ।/)

माला का परिचय

जयपुर राज्य के शेखावाटी प्रांत में खेतड़ी राज्य है। वहाँ के राजा श्री अजीतसिंह जी बहादुर बड़े यशस्वी और विद्याप्रेमी हुए। गणित शास्त्र में उनकी अद्‌भुत गति थी। विज्ञान उन्हें बहुत प्रिय था। राजनीति में वह दक्ष और गुणग्राहिता में अद्वितीय थे। दर्शन और अध्यात्म की रुचि उन्हें इतनी थी कि विलायत जाने के पहले और पीछे स्वामी विवेकानंद उनके यहाँ महीनों रहे। स्वामी जी से घंटों शास्त्र चर्चा हुआ करती। राजपूताने में प्रसिद्ध है कि जयपुर के पुण्यश्लोक महाराज श्रीरामसिंह जी को छोड़कर ऐसी सर्वतोमुखी प्रतिभा राजा श्रीअजीतसिंह जी ही में दिखाई दी।

राजा श्री अजीतसिंह जी की रानी आउआ (मारवाड़) चाँपावत जी के गर्भ से तीन संतति हुई—दो कन्या, एक पुत्र। ज्येष्ठ कन्या श्रीमती सूर्यकुमारी थीं जिनका विवाह शाहपुरा के राजाधिराज सर श्रीनाहरसिंह जी के ज्येष्ठ चिरंजीव और युवराज राजकुमार श्रीउमेदसिंह जी से हुआ। छोटी कन्या श्रीमती चाँदकुँवर का विवाह प्रतापगढ़ के महारावल साहब के युवराज महाराजकुमार श्रीमानसिंह जी से हुआ। तीसरी संतान जयसिंह जी थे जो राजा श्रीअजीतसिंह जी और रानी चाँपावतजी के स्वर्गवास के पीछे खेतड़ी के राजा हुए।

इन तीनों के शुभचिंतकों के लिये तीनों की स्मृति, संचित कर्मों के परिणाम से, दुःखमय हुई। जयसिंह जी का स्वर्गवास सत्रह वर्ष की अवस्था में हुआ। सारी प्रजा, सब शुभचिंतक, संबंधी, मित्र और गुरुजनों का हृदय आज भी उस आँच से जल ही रहा है। अश्वत्थामा के व्रण की तरह यह घाव कभी भरने का नहीं। ऐसे आशामय जीवन का ऐसा

निराशात्मक परिणाम कदाचित् ही हुआ हो। श्रीसूर्यकुमारीजी को एकमात्र भाई के वियोग की ऐसी ठेस लगी कि दो ही तीन वर्ष में उनका शरीरांत हुआ। श्रीचाँदकुँवर बाई जी को वैधव्य की विषम यातना भोगनी पड़ी और भ्रातृवियोग और पतिवियोग दोनों का असह्य दुःख वे झेल रही हैं। उनके एकमात्र चिरंजीव प्रतापगढ़ के कुँवर श्रीरामसिंह जी से मातामह राजा श्रीअजीतसिंह जी का कुल प्रजावान् है।

श्रीमती सूर्यकुमारी जी के कोई संतति जीवित न रही। उनके बहुत आग्रह करने पर भी राजकुमार श्रीउमदेसिंह जी ने उनके जीवनकाल में दूसरा विवाह नहीं किया। किंतु उनके वियोग के पीछे, उनके आज्ञानुसार, कृष्णगढ़ में विवाह किया जिससे उनके चिरंजीव वशांकुर विद्यमान हैं।

श्रीमती सूर्यकुमारी जी बहुत शिक्षित थीं। उनका अध्ययन बहुत विस्तृत था। उनका हिंदी का पुस्तकालय परिपूर्ण था। हिंदी इतनी अच्छी लिखती थीं और अक्षर इतने सुंदर होते थे कि देखनेवाले चमत्कृत रह जाते। स्वर्गवास के कुछ समय के पूर्व श्रीमती ने कहा था कि स्वामी विवेकानंद जी के सब ग्रंथों, व्याख्यानों और लेखों का प्रामाणिक हिंदी अनुवाद मैं छपवाऊँगी। बाल्यकाल से ही स्वामी जी के लेखों और अध्यात्म, विशेषतः अद्वैत वेदांत, की ओर श्रीमती की रुचि थी। श्रीमती के निर्देशानुसार इसका कार्यक्रम बाँधा गया। साथ ही श्रीमती ने यह इच्छा प्रकट की कि इस संबंध में हिंदी में उत्तमोत्तम ग्रंथों के प्रकाशन के लिये एक अक्षय निधि की व्यवस्था का भी सूत्रपात हो जाय। इसका व्यवस्थापत्र बनते बनते श्रीमती का स्वर्गवास हो गया।

राजकुमार श्रीउमदेसिंह जी ने श्रीमती की अंतिम कामना के अनुसार बीस हजार रुपए देकर नागरीप्रचारिणी सभा के द्वारा ग्रंथमाला के प्रकाशन की व्यवस्था की। तीस हजार रुपए के सूद से गुरुकुल विश्वविद्यालय, कांगड़ी में 'सूर्यकुमारी आर्यभाषा गद्दी (चेयर)' की स्थापना की।

पाँच हजार रुपए से उपर्युक्त गुरुकुल में चेयर के साथ ही सूर्यकुमारी निधि की स्थापना कर सूर्यकुमारी ग्रंथावली के प्रकाशन की व्यवस्था की।

पाँच हजार रुपए दरबार हाई स्कूल शाहपुरा में सूर्यकुमारी-विज्ञान-भवन के लिये प्रदान किए।

स्वामी विवेकानंद जी के यावत् निबंधों के अतिरिक्त और भी उत्तमोत्तम ग्रंथ इस ग्रंथमाला में छापे जायँगे और अल्प मूल्य पर सर्व-साधारण के लिये सुलभ होंगे। ग्रंथमाला की बिक्री की आय इसी में लगाई जायगी। यों श्रीमती सूर्यकुमारी तथा श्रीमान् उमेदसिंह जी के पुण्य तथा यश की निरंतर वृद्धि होगी और हिंदी भाषा का अभ्युदय तथा उसके पाठकों को ज्ञान-लाभ होगा।

कथाबंध

भूमिका

श्री राखालदास बंद्योपाध्याय प्रसिद्ध पुरातत्त्वशास्त्री थे परंतु उनकी अमर यशगाथा के स्तंभ उनके ऐतिहासिक उपन्यास हैं जो किसी भी साहित्य के लिये गौरव की वस्तु हैं। हिंदी में तो ऐतिहासिक उपन्यास बहुत ही कम हैं, परंतु बँगला साहित्य में भी, जहाँ ऐतिहासिक उपन्यासों की महत्त्वपूर्ण परंपरा रही है और बंकिमचंद्र चटर्जी, रमेशचंद्र दत्त और रवींद्रनाथ ठाकुर जैसे साहित्य-महारथियों ने एक से एक अपूर्व उपन्यासों की रचना की, राखालदास के ऐतिहासिक उपन्यास अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। इनके उपन्यासों में तत्कालीन युग की सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का जैसा जीता-जागता चित्र मिलता है, वैसा अन्य उपन्यासों में नहीं मिलता। फिर भी इनके उपन्यास हिंदी में उतने लोकप्रिय नहीं हुए जितने होने चाहिए थे। पहले तो इनके सभी उपन्यास हिंदी में अनूदित भी नहीं हुए और जो उपन्यास—करुणा, शशांक, मयूख आदि—अनूदित हुए भी हैं वे बहुत लोकप्रिय नहीं हो सके। जब कि बंकिमचंद्र के सभी उपन्यासों के बीसों प्रकाशकों द्वारा अनेक संस्करण हुए वहाँ राखाल बाबू के उपन्यासों के एक या दो ही संस्करण हुए। इसका एक विशेष कारण है। राखाल बाबू उस युग में पैदा हुए जब ऐतिहासिक उपन्यासों का युग बीत चुका था और सामाजिक उपन्यासों का युग चल पड़ा था और एक से एक अच्छे सामाजिक उपन्यास लिखे जाने लगे थे। बँगला में रवींद्रनाथ ठाकुर और शरच्चंद्र चटर्जी तथा हिंदी में प्रेमचंद के उपन्यासों की धूम मच गई थी।

परंतु ऐतिहासिक-उपन्यास-कला की दृष्टि से राखाल बाबू के उपन्यास ही वास्तविक उपन्यास हैं। ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास केवल पृष्ठभूमि के निर्माण के लिये होता है। नाटकों में परदे और प्रकाश की जितनी सार्थकता है, ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास की भी उतनी ही सार्थकता है; उससे अधिक इतिहास ऐतिहासिक उपन्यासों को उपन्यास की सीमा से दूर ढकेल देता है। हिंदी में वृंदावन लाल वर्मा की 'झांसी की रानी' में इतिहास ने उपन्यास को पूर्णतः छा लिया है। इसी कारण उसे ऐतिहासिक उपन्यास के स्थान पर औपन्यासिक इतिहास कहना अधिक समीचीन जान पड़ता है। कल्पना और इतिहास का समन्वय ही ऐतिहासिक उपन्यासों का प्राण है और यह समन्वय जितनी सुंदरता से राखाल बाबू कर सके हैं, उतना बहुत कम उपन्यास-लेखक कर सके हैं।

इतिहास और ऐतिहासिक उपन्यासों में विशेष अंतर है। इतिहास साधारणतः राजवंशों के कूटनीतिक षड्यंत्र, संधि-विग्रह और शासनतंत्र की मीमांसा तक ही अपने को सीमित रखता है, तत्कालीन युग की साधारण जनता की रीति-नीति, रहन-सहन, मान्यताओं और विश्वासों का चित्रण नहीं करता। यह सच है कि आधुनिक युग के इतिहास ग्रंथों में युग की सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का भी उल्लेख रहता है, परंतु यह उल्लेख उपन्यासों के जीवंत चित्रण की तुलना में बहुत ही निष्प्राण होता है। ऐतिहासिक उपन्यासों में जनता का जीवन सजीव हो उठता है। राखाल बाबू के ऐतिहासिक उपन्यासों में, वास्तव में, युग का जीवन बोल उठा है।

'असीम' में हमें फर्रुखसियर के शासन काल में बंगाल और बिहार के जन-जीवन की एक झाँकी मिलती है। दिल्ली, पटना और मुर्शिदाबाद के कूटनीतिक षड्यंत्रों के समान ही डाहापाड़ा के राय-परिवार में

भी षड्यंत्रों का जाल बिछा हुआ है। नवीन नाई और सरस्वती वैष्णवी की सहायता से राय गृहिणी का कूटचक्र असीम का दिल्ली में भी पीछा नहीं छोड़ता। इन कूटचक्रों की सफलता और विफलता में नियति का योग भी कुछ कम नहीं है। राखाल बाबू ने नियति की विडंबना का बड़ा ही मनोरम चित्र इस उपन्यास में प्रस्तुत किया है। त्रिविक्रम मरने के लिये बैठा है, परंतु नियति को यह स्वीकार नहीं है; उसे तो त्रिविक्रम को विवाह के बंधन में बँधवाना है, उसे कानूनगो का पद पुनः दिलवाना है; उससे नवीन नाई का शासन कराना है। फर्रुखसियर की विजय और बाद में उसकी दुर्दशा और मृत्यु में नियति का जो संकेत हमें मिलता है वही संकेत हमें असीम के घर से निर्वासित होकर राजा बनने और फिर अंत में पत्नी के संशय और दुराग्रह से असफल होने में भी मिलता है और वही संकेत हमें हरनारायण राय की प्रारंभिक असफलता और अंतिम विजय में मिलता है। नियति के संकेत पर जिस प्रकार जहाँदारशाह और फर्रुखसियर जैसे सम्राट्, उनके अमीर उमरा और सेनापति नाचते रहते हैं, उसी प्रकार राय-परिवार के असीम, भूपेन, हरिनारायण विद्यालंकार, त्रिविक्रम और नवीन नाई भी नाचते हैं और उसी प्रकार सरस्वती वैष्णवी, दुर्गा और मुन्नी वेश्या भी परिवर्तन-चक्र में भ्रांत घूमते हैं। नियति के इस शासन-चक्र का जैसा अद्भुत् चित्र 'असीम' में मिलता है वैसा कम ही उपन्यासों में देखने को मिलता है।

'असीम' बहुत दिनों तक धारावाहिक रूप में 'भारतवर्ष' पत्रिका में प्रकाशित होता रहा। किंतु रचना के अत्यधिक बड़ी हो जाने के कारण संपादक ने इसका प्रकाशन बीच में ही स्थगित कर दिया। अस्तु, पुस्तक-प्रकाशन के समय लेखक को सारी कथा फिर से लिखनी पड़ी। राखाल बाबू ने असीम को यथार्थतः ऐतिहासिक उपन्यास माना है, क्योंकि असीम और मुन्नी को छोड़कर इसके अधिकांश पुरुष और नारी

चरित्र ऐतिहासिक ग्रंथों से लिए गए हैं। प्रस्तुत ग्रंथ के अनुवादक पं० शंभुनाथ वाजपेयी एक सिद्धहस्त अनुवादक हैं। उन्होंने बड़े परिश्रम से इस अनुपम ग्रंथ का हिंदी रूपांतर किया है। आज जब हिंदी राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित हो गई है और सभी प्रांतीय भाषाओं के अनुपम ग्रंथ-रत्नों का हिंदी में रूपांतर होना अनिवार्य-सा हो उठा है, वाजपेयी जी का यह प्रयास राष्ट्र और साहित्य दोनों के लिये शुभ है।

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी
मार्गशीर्ष १०, सं० २०११

श्रीकृष्ण लाल
साहित्य मंत्री

प्राक्कथन

(अ) लेखक का जीवनवृत्त

श्री राखालदास वंद्योपाध्याय का जन्म १२ अप्रैल, सन् १८८६ ई० को मुर्शिदाबाद के बहरामपुर नामक स्थान में हुआ था। उनके पूर्व-पुरुष ढाका के विक्रमपुर नामक स्थान के रहनेवाले थे और नवाबी दरबार में उच्च पदस्थ राजकर्मचारी थे। मुर्शिदकुली खाँ ने जिस समय दीवानी का कार्यालय मुर्शिदाबाद में स्थानांतरित किया था उस समय राखाल बाबू के पूर्वजों की एक शाखा भागीरथी के किनारे मुर्शिदाबाद के उस पार डाहापाड़ा में और दूसरी शाखा जैसोर के अंतर्गत चौघरिया में आ बसी थी।

राखाल बाबू के पिता श्री मतिलाल वंद्योपाध्याय बहरामपुर में वकालत करते थे। वकील समाज में उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। मतिलाल वंद्योपाध्याय की द्वितीय पत्नी को आठ संतानें हुईं जिनमें अकेले राखाल बाबू जीवित रहे। आठ संतानों के बीच अकेली जीवित रहनेवाली संतान का भरे-पूरे हिंदू परिवार में जैसा लाड़-प्यार होना चाहिए वैसा ही लाड़-प्यार बचपन में राखाल बाबू को मिला था। बचपन के इस दुलार ने उन्हें अनेक अंशों में हठी बना दिया था। अपने हठ और मान के अनेक संस्मरण वे सुनाया करते थे। इच्छानुसार कार्य न होने पर वे मारे क्रोध के करेंसी नोटों के टुकड़े-टुकड़े कर डाला करते थे किंतु कोई चूँ तक करने का साहस नहीं करता था।

बाल्यावस्था से ही उनकी बुद्धिमत्ता का परिचय लोगों को मिलने लगा था। बहरामपुर के कृष्णनाथ कालिजियट स्कूल से सन् १९०० में

उन्होंने ऐंट्रेंस परीक्षा उत्तीर्ण की और उन्हें १५) मासिक छात्रवृत्ति मिलने लगी। तीन वर्ष बाद प्रेसिडेंसी कालेज से उन्होंने एफ० ए० परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। इसी वर्ष उनके माता-पिता का देहांत हुआ। इसके पश्चात् वे पारिवारिक मामले-मुकद्दमों मे ऐसे उलझे कि कई वर्षों तक उनका पढ़ना-लिखना बिलकुल बंद रहा। सन् १९०७ में उन्होंने इतिहास में आनर्स के साथ बी० ए० परीक्षा और सन् १९१० में इसी विषय में एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् १९०० में ऐंट्रेंस की परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर ही उनका विवाह हो गया था। उनकी पत्नी श्रीमती कांचनमाला देवी उत्तरपाड़ा के प्रतिष्ठित जमींदार श्री नरेंद्रनाथ मुखर्जी की लड़की थीं। वे अत्यंत बुद्धिमती और विदुषी थीं। उन्होंने बंगभाषा में कई अच्छे उपन्यासों की रचना की है। विवाह के तीन वर्ष पश्चात् उनके ज्येष्ठ पुत्र असीम चंद्र का एवं १९०९ में उनके एकमात्र वर्तमान पुत्र श्री अद्रीशचंद्र का जन्म हुआ।

विद्यार्थी जीवन में ही राखाल बाबू की यह इच्छा थी कि भारतवर्ष के संबध में पुरातत्व विषयक विशेष अध्ययन करें। स्व० श्री रामेंद्र-सुंदर त्रिवेदी तथा स्व० श्री हरप्रसाद शास्त्री के संपर्क में आने पर उनकी यह इच्छा धीरे धीरे फलवती होने लगी। शास्त्री जी के वे विशेष स्नेह-भाजन थे और वे उन्हें बड़े प्रेम से पुरातत्व की शिक्षा दिया करते थे। बी० ए० की परीक्षा देने के पहले ही राखाल बाबू ने भारतीय पुरातत्व का यथेष्ट ज्ञान अर्जित कर लिया था। इसी काल में उनका परिचय भारतीय पुरातत्व विभाग के निरीक्षक तथा कलकत्ता संग्रहालय के अध्यक्ष डा० थियोडोर ब्लाक से हुआ। डा० ब्लाक पुरातत्व में राखाल बाबू की रुचि और अभिज्ञता देखकर उनकी ओर आकृष्ट हुए। यह आकर्षण धीरे धीरे मैत्री और घनिष्ठता में परिणत होता गया।

प्राचीन भारतीय शिलालेखों के पाठ-निर्धारण में डा० ब्लाक असाधारण रूप से दक्ष थे। राखाल बाबू ने इस शास्त्र में जो सिद्धि-लाभ किया उसका बहुत कुछ श्रेय उन्होंने अपने इन्हीं विद्वान् मित्र और सहकर्मी को दिया है। इस प्रकार बी० ए० परीक्षा में सम्मिलित होने के पहले ही भारतीय पुरातत्व, विशेषतः प्राचीन मुद्राशास्त्र एवं पुरालिपिशास्त्र, के विशेषज्ञ के रूप में उनकी ख्याति देश भर में फैल चुकी थी। बी० ए० पास करने के दूसरे वर्ष लखनऊ विश्वविद्यालय के पुरातत्व विभाग की सामग्री की विवरणात्मक सूची प्रस्तुत करने के लिये वे आमंत्रित किए गए और यह कार्य उन्होंने बहुत उत्तमतापूर्वक दो तीन मास में ही संपन्न कर डाला। सन् १९१० में उनकी नियुक्ति कलकत्ता संग्रहालय में सहकारी संग्रहाध्यक्ष के पद पर हुई। इस कार्य में उनकी अतिशय दक्षता से प्रभावित होकर भारत सरकार ने उन्हें पुरातत्व विभाग के और उच्च पद पर स्थायी रूप से नियुक्त कर दिया। इस प्रकार की नियुक्ति के लिये यह आवश्यक था कि राखाल बाबू कुछ दिनों तक अस्थायी रूप से उस पद की उम्मीदवारी करते और नियत काल के बाद उनके स्थायित्व के संबंध में सरकार विचार करती, किंतु उनकी प्रतिभा और विद्वत्ता के कारण सरकार ने उनके संबंध में अपना नियम ढीला कर दिया और सीधे सहायक सुपरिंटेंडेंट के पद पर उनकी स्थायी रूप से नियुक्ति कर दी। पुरातत्व विभाग के तत्कालीन अध्यक्ष सर जान मार्शल की संस्तुति पर सन् १९१७ में वे पश्चिमी क्षेत्र के सुपरिंटेंडेंट नियुक्त किए गए। छः वर्षों तक इसी पद पर वे पूना में नियुक्त रहे। उस समय पुरातत्व विभाग के पश्चिमी क्षेत्र के अंतर्गत बंबई प्रेसिडेंसी के अतिरिक्त राजपूताना और मध्य भारत की रियासतें भी थीं। इस विस्तृत भूभाग का निरीक्षण करके उन्होंने उत्खनन, शोध और संरक्षण का जो महत्वपूर्ण कार्य किया उसका विस्तृत विवरण पुरातत्व विभाग की तत्कालीन वार्षिक रिपोर्टों में दिया हुआ है। इसमें

जरा भी अतिशयोक्ति नहीं कि पुरातत्व विभाग को ऐसा धुन का पक्का विद्वान् उनके पहले दूसरा नहीं मिला था। त्रिपुरी और भूमरा के संबंध में रचित उनके शोध ग्रंथों को देखने से भली भाँति पता चलता है कि वे अपना कार्य कितनी लगन और परिश्रम से किया करते थे। पूना में पेशवाओं के राजप्रासाद की खुदाई करके उन्होंने इतिहास और पुरातत्व की अनेक टूटी हुई कड़ियाँ जोड़ी हैं।

लेकिन उनके यश को सबसे अधिक बढ़ानेवाला कार्य मोहेंजोदड़ो का आविष्कार है। सन् १९२२ में पहले पहल उन्होंने इस स्थान का दौरा किया था और थोड़ी बहुत खुदाई भी कराई थी। सरकारी कोष में इस कार्य के लिये अपेक्षित द्रव्य की व्यवस्था उस समय न रहने के कारण यह कार्य कुछ दिनों के लिये बंद कर देना पड़ा था, लेकिन इसी अल्पकालीन खुदाई में उन्होंने इस प्रागैतिहासिक नगरी की विशेषताओं पर प्रकाश डालनेवाली जो सामग्री आविष्कृत की उससे पुरातत्व जगत् में हलचल मच गई और भारत सरकार को अगले वर्षों मे वहाँ की नियमित और व्यवस्थित खुदाई का प्रबंध करना पड़ा। मोहेंजोदड़ो को आविष्कृत करने और एक अत्यंत प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति से आधुनिक युग को परिचित कराने का सारा श्रेय यद्यपि राखाल बाबू को मिलना चाहिए था, किंतु अँगरेजी शासन ने यह श्रेय दिया मार्शल को।

जब वे पूना में थे तभी उनके ज्येष्ठ पुत्र की मृत्यु हो गई। इस दुर्घटना से वे बहुत दुःखी हुए और उन्होंने चारपाई पकड़ ली। अत्यधिक रुग्ण हो जाने के कारण उन्हें एक वर्ष का अवकाश लेना पड़ा। सन् १९२४ में वे पूर्वी क्षेत्र के अध्यक्ष हुए और उनका स्थानांतरण कलकत्ता कर दिया गया। यहाँ वे केवल दो वर्ष रहे। इस अवधि में उन्होंने जो कार्य किए उनमें पहाड़पुर की खुदाई विशेष उल्लेखयोग्य

है। सन् १९२६ में उन्हें सरकारी कार्य से अवकाश लेना पड़ा। जबलपुर जिले के भेड़ाघाट नामक स्थान में चौंसठ जोगिनी के मंदिर से एक मूर्त्ति स्थानांतरित करने के अभियोग में मध्यप्रदेशीय सरकार ने उनकी गिरफ्तारी का वारंट निकाल दिया था, फलतः उन्हें अस्थायी रूप से निलंबित (ससपेंड) कर दिया गया। पुरातत्त्व विभाग की मध्यस्थता के कारण यद्यपि इस अभियोग में वे निर्दोष साबित हुए तथापि उन्होंने सरकारी नौकरी से नाम मात्र के पेंशन पर अवकाश ग्रहण कर लिया।

राखाल बाबू का लालन-पालन वैभव और विलास में हुआ था। युवावस्था भी उन्होंने वैसी ही काटी। पैतृक संपत्ति के अतिरिक्त उन्हें नानिहाल की विपुल सपत्ति भी उत्तराधिकार में मिली थी। लेकिन मितव्यय और सयम के अभाव में लक्ष्मी चंचला हो गईं और जीवन के अंतिम दिन राखाल बाबू को बड़े कष्ट से काटने पड़े। सन् १९२६ में महामना प० मदनमोहन मालवीय जी ने उन्हें हिंदू विश्वविद्यालय में बुला लिया और यहाँ वे 'मनींद्र नंदी प्राध्यापक' के पद पर अधिष्ठित हुए। राजपरिवारोचित सुख-सुविधा और परिचर्या में पला हुआ उनका शरीर मन की प्रतिकूलता सहते सहते जीवन के तीसरे पहर में आकर हार मान गया। दो तीन वर्षों तक रोग-शोक से लोहा लेने के पश्चात् मई १९३० में कलकत्ते में उनका शरीरांत हो गया। मृत्युकाल में उनकी अवस्था केवल ४६ वर्ष की थी।

राखाल बाबू में प्रतिभा के अतिरिक्त लिखने की अद्भुत् क्षमता थी। उन्होंने प्राचीन भारतीय लिपि और मुद्रा तथा मूर्त्ति एवं अन्यान्य शिल्पों के संबध में अनेक गवेषणात्मक निबंध और ग्रंथ लिखे हैं। अनेक शिलालेखों और मुद्राओं का उन्होंने गाठोद्धार किया है। आरंभ से लेकर अपने समय तक का बंगाल का क्रमबद्ध इतिहास लिखने का

उनका विचार था, किंतु 'दि ओरिजिन आव द बंगाली स्क्रिप्ट' तथा 'ईस्टर्न इंडियन स्कूल आव मिडीवल स्कलपचर' नामक दो ग्रंथों के अतिरिक्त बंगाल के राजनीतिक इतिहास का एक ही भाग वे लिख पाए। बंगाल के इतिहास के प्रथम भाग में आरंभ से लेकर लगभग १२०० ई० तक का इतिहास आ गया है। प्रस्तुत पुस्तक तथा उनके अन्य निबंधों से पता चलता है कि इसके बाद के इतिहास के लिये भी उनके पास पर्याप्त सामग्री एकत्र हो चुकी थी और दुर्दैव ने यदि उन्हें असमय में न उठा लिया होता तो वे अपना संकल्प अवश्य पूरा करते। उनकी अन्य ऐतिहासिक कृतियों में 'द पालाज आव बंगाल', 'हिस्ट्री आव उड़ीसा' तथा 'एज आव दि इंपीरियल गुप्ताज' प्रमुख हैं। शशांक, धर्मपाल, करुणा, मयूख और असीम इन चार बड़े बड़े उपन्यासों के अतिरिक्त 'पाषाणेर कथा' नामक ऐतिहासिक इतिवृत्तों का क्रमबद्ध कथात्मक संग्रह कथा-वाङ्मय-रचना में उनकी अद्भुत दक्षता का परिचायक है।

(आ) असीम : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तथा कथावस्तु

'असीम' की कहानी भी उसी समय आरंभ होती है जिस समय सूबा बंगाल, बिहार और उड़ीसा के राजस्व विभाग के सूबेदार मुर्शिदकुली ने राजधानी को धीरे धीरे ढाका से मुर्शिदाबाद में स्थानांतरित करना आरंभ किया था और राखाल बाबू के पूर्वज मुर्शिदाबाद के उस पार डाहापाड़ा में आ बसे थे। अतएव यह नितांत स्वाभाविक था कि राखाल बाबू इसका कथानक स्थिर करने में अपने पूर्वजों एवं उनके संपर्क में आनेवालों के इतिवृत्त से सहायता लेते। उन्होंने स्वयं लिखा है कि 'असीम' यथार्थतः ऐतिहासिक उपन्यास है और केवल असीम तथा मुन्नी के अतिरिक्त इसके प्रायः समस्त पात्रों की ऐतिहासिक सत्ता रही है। फर्रुखसियर उस समय बंगाल के

नायब सूबेदार थे। उन्हें जिस समय बंगाल से दिल्ली लौट आने की आज्ञा मिली थी उसी समय से इस कथा का आरंभ होता है और उन्हीं के अंत के साथ इसकी समाप्ति। उनके लगभग ६ वर्षों के राज्यकाल के बहुतेरे सूत्र इस कहानी से संबद्ध न होने के कारण छोड़ दिए गए हैं। ऐतिहासिक व्यक्तियों के जो चित्र राखाल बाबू ने अपने इस उपन्यास में दिए हैं उनमें उन्होंने कहाँ तक कल्पना और संभावना का आश्रय लिया है यह जानने के लिये फर्रुखसियर का वास्तविक इतिहास जान लेना आवश्यक है। फर्रुखसियर का बंगाल से प्रस्थान उनके लिये वरदान और अभिशाप दोनों सिद्ध हुआ। पटने में जाकर उनका राजकोश खाली हो चला। वर्षा ऋतु संनिकट थी; वे वहीं रुक गए। वहीं उन्हें शाह आलम की मृत्यु का संवाद मिला। तत्काल उन्होंने अपने पिता के नाम पर खुतबा-पाठ और उनके नाम की मुद्राओं का प्रचलन करा दिया। पटने के नायब सूबेदार हुसेन अली खाँ के साहस और प्रतिभा ने उन्हें अपनी ओर आकृष्ट कर लिया और उन्होंने हुसेन अली को अत्यंत विश्वस्त सरदार के रूप में अपनी सेवा में ले लिया। पटने में ही उन्हें समाचार मिला कि अजीमुश्शान भी जाते रहे और जहाँदारशाह ने राज्यारोहण किया है।

फर्रुखसियर ने उस समय बड़े साहस से काम लिया और अपने नाम से खुतबा-पाठ और मुद्रांकन की व्यवस्था करके वे हुसेन अली के साथ दिल्ली के मार्ग पर आगे बढ़े। इलाहाबाद में हुसेनअली के बड़े भाई सैयद अब्दुल्ला सूबेदार थे। उन्होंने भी फर्रुखसियर का साथ दिया। बंगाल से दिल्ली जानेवाला राजकोश यहीं उनके हाथ लगा जिससे उन्होंने सेना का संघटन करके जहाँदार शाह पर आगरा के पास बड़ा करारा हमला किया। जहाँदार शाह ने भागकर दिल्ली के किले में शरण ली लेकिन आसदुद्दौला खाँ को उनकी पराजय का समाचार मिल गया था, इसलिये उन्होंने उन्हें बंदी कर लिया। कुछ

दिन विश्राम करके फर्रुखसियर ने दिल्ली में प्रवेश किया। जहाँदार शाह मारे गए। सिंहासनारूढ़ होने पर फर्रुखसियर ने सैयद अब्दुल्ला खाँ को कुतुबुल्मुल्क की उपाधि और सात हजारी मनसब तथा हुसेन अली को अमीरुल-उमरा फीरोजजंग की उपाधि, मीर बख्शी का पद और सात हजारी मनसब दिया।

सैयद अब्दुल्ला और हुसेन अली को राज्यशासन के उच्च पदों पर नियुक्त करके फर्रुखसियर निश्चिंत हो गए। किंतु सैयद बंधुओं की महत्वाकांक्षा को विराम नहीं मिला। उन्होंने राज्यशासन में ऐसी गड़बड़ियाँ आरंभ कीं, ऐसे ऐसे अत्याचार करने लगे जिनसे फर्रुखसियर और उनके हितेच्छु बड़े विरक्त हो गए। मीर जुमला नामक एक विचक्षण और कार्यदक्ष सरदार इस बीच बादशाह के बड़े प्रियपात्र हो चुके थे। वे वस्तुतः बादशाह के हितचिंतक और सैयदों की चालढाल से परिचित थे। उन्होंने कूटनीति से काम लिया और सैयदों का दबदबा नष्ट करने के उद्देश्य से उन्हीं के द्वारा अनेक अपयशी कार्य कराए। सैयदों के हाथ से अमीरुल उमरा जुल्फिकार खाँ आदि संभ्रांत सरदारों की हत्या हुई, अमीरुल उमरा के दीवान राजा शुभचाँद की जीभ काट डाली गई, जहाँदार शाह के पुत्र अजीजुद्दीन, आजम शाह के पुत्र अली तबर और फर्रुखसियर के छोटे भाई हुमायूँ बख्त नेत्रहीन कर दिए गए।

मीर जुमला की इच्छा थी कि सैयद बंधुओं को बंदी बना लिया जाय लेकिन बादशाह ने वैसा नहीं किया। सैयदों को अपने संबंध में जब बादशाह और मीर जुमला के विचारों का पता चला तब वे सतर्क हो गए। लेकिन मनोमालिन्य का जो सूत्रपात हो चुका था वह बढ़ता गया, यहाँ तक कि सैयदों ने दरबार में आना बंद कर दिया और अपने महलों पर सशस्त्र पहरा रखने लगे। किसी प्रकार बादशाह की

माता ने आपस में मेल कराया और मीर जुमला पटना के सूबेदार बनाकर बिहार भेज दिए गए। लेकिन उनके सिपाहियों ने वेतनवृद्धि के लिये आंदोलन आरंभ किया और उन्हें दिल्ली वापस आना पड़ा। बादशाह इसपर विरक्त हो गए। अंत में मीर जुमला को अपने पुराने शत्रुओं (सैयदों) की ही शरण में जाना पड़ा। उन्हें पंजाब भेजने की व्यवस्था हुई। हुसेन अली दक्षिण भेजे गए पर अब्दुल्ला दिल्ली में ही बने रहे। सैयद सरदारों के कूटचक्र से बादशाह का छुटकारा नहीं हुआ। हुसेन अली और उनके सहायक दाऊद खाँ को दक्षिण में मराठों से निरंतर उलझना पड़ रहा था। वे साहू जी से संधि कर लेना चाहते थे। किंतु बादशाह को यह स्वीकार नहीं हुआ। अब्दुल्ला खाँ के हाथ से मंत्रित्व-पद भी जाता रहा। पंजाब में सिक्खों का उपद्रव बढ़ रहा था और बंगाल में अँगरेज अपने पाँव फैला रहे थे। अब्दुल्ला बारंबार अपने छोटे भाई पर दिल्ली आने के लिये दबाव डाल रहे थे। फर्रुखसियर यदि चाहते तो इन कंटकों को सहज में दूर कर सकते थे किंतु उन्होंने ऐसा किया नहीं और इसका दुःखद परिणाम उन्हें भुगतना पड़ा।

फर्रुखसियर की हत्या इस दुःखांत उपन्यास के कथानक का चरमोत्कर्ष है और उसे चित्रित करने में राखाल बाबू ने बड़े कौशल से काम लिया है। समसामयिक प्रामाणिक इतिहास ग्रंथों में इस घटना के संबंध में जो थोड़ा सा भेद मिलता है वहीं राखाल बाबू की कल्पना प्रवृत्त हुई है। उन्होंने अपनी कहानी में जो कुछ कहा है वह उपर्युक्त भेद के कारण सर्वथा स्वाभाविक और संभाव्य प्रतीत होता है।

इलियट और डासन ने मुहम्मद हाशिम खाफी खाँ द्वारा लिखित मुंतखबुल्लुबाब का जो अनुवाद अपने ग्रंथ में किया है उसके अनुसार फर्रुखसियर की मृत्यु किले के भीतर त्रिपोलिया की एक ऊपरी कोठरी में हुई। सैयद हुसेन अली और सैयद अब्दुल्ला के सैनिकों ने जिस

समय अत्यंत निर्दयतापूर्वक और अपमानजनक रीति से फर्रुखसियर को किले से निकाला उसी समय उन्हें अंधा बना डाला। फर्रुखसियर त्रिपोलिया की उस कोठरी में लगभग दो मास तक बंदी रहे। उन्हें बंदी अवस्था में नाना प्रकार की यातनाएँ दी गईं। खाफी खाँ का कहना है कि फर्रुखसियर को अंधा करने की जो क्रिया की गई उससे उनकी दृष्टिशक्ति बिलकुल लुप्त नहीं हुई थी। वैसी अवस्था में भी फर्रुखसियर अपनी बुद्धिहीनता का परिचय देने से विरत नहीं हुए। राजसत्ता के प्रति अपनी आसक्ति के वशीभूत होकर उन्होंने सरदारों के पास इस आशय के संदेश भेजवाए कि यदि मुझे पिछली भूलों के लिये क्षमा किया जाय और फिर से गद्दी पर बैठाया जाय तो मैं दोनों सैयद बंधुओं के परामर्श के अनुसार राज्य का संचालन करूँगा। उनकी इच्छा भागकर महाराजाधिराज जयसिंह की शरण में भी जाने की हुई थी और इसके लिये उन्होंने पहरेदार को सातहजारी मंसब का लालच भी दिया था। सैयद बंधुओं को जब इसकी सूचना मिली तब उन्होंने फर्रुखसियर को मार डालने का निश्चय किया। उनपर दो बार विष का प्रयोग किया गया किंतु दोनों बार कोई प्रभाव नहीं पड़ा। तीसरी बार जब विष ने अपना प्रभाव दिखलाया तब भी मृत्यु ने फर्रुखसियर को यंत्रणाओं से एकबारगी नहीं मुक्त किया। सैयद बंधुओं के दुर्व्यवहार और अपने लिये की हुई उनकी प्रतिज्ञाओं के विपरीत व्यवहार की बात फर्रुखसियर बराबर सोचते रहे। अपने पर नियंत्रण न रख सकने के कारण वे सैयद बंधुओं को गालियाँ देने लगे और कहने लगे कि इन वचन भंग करनेवालों को दंड क्यों नहीं दिया गया। वे ऐसे अपशब्दों का प्रयोग करने लगे जो उन्हें नहीं करना चाहिए था। दोनों सैयद भाइयों को जब इसकी सूचना मिली तब उन्होंने आज्ञा दी कि शीघ्र से शीघ्र फर्रुखसियर को गला घोटकर समाप्त कर दिया जाय। उनके गले में जब रस्सी डाली गई तब उन्होंने

दोनों हाथों से उसे पकड़ लिया और हाथ पैर चलाकर छुटकारे का अंतिम प्रयास करने लगे। गला घोटनेवालों ने उन्हें डंडों से मार मार कर विवश कर दिया। कहा जाता है कि इस समय खंजरों और छुरों का भी प्रयोग किया गया किंतु खाफी खाँ लिखता है कि जहाँ तक मैंने सुना है, इन शस्त्रों का प्रयोग नहीं किया गया।[1]

फर्रुखसियर का शव हुमायूँ के मकबरे में ले जाया गया। उसके साथ दो तीन हजार स्त्री-पुरुष थे जिनमें अधिकांश वे भिक्षुक और खाना-बदोश थे जिन्हें बादशाह से मदद मिलती थी। वे सभी रो रहे थे। दुःख और क्रोध के मारे इन्होंने अपने वस्त्र नोच डाले थे, शरीर उनके धूलिधूसर हो गए थे और वे अत्याचारियों को गालियाँ देते चल रहे थे। सैयद अब्दुल्ला खाँ और हुसेन अली खाँ के बख्शी भी शव के साथ साथ थे। उनपर ईंट-पत्थरों की वर्षा होती चल रही थी। शाही रीति के अनुसार जो रोटियाँ और पैसे बाँटे जानेवाले थे उनमें किसी ने हाथ तक नहीं लगाया। तीसरे दिन भिक्षुक पुनः एकत्र हुए, उन्होंने रोटियाँ बनाईं, गरीबों को बाँटीं और सारी रात मातम मनाते रहे।[2]

खाफी खाँ फर्रुखसियर के राज्यकाल में जीवित था। उसने यद्यपि अपना ग्रंथ पूर्णतः निष्पक्ष भाव से प्रस्तुत किया है, फिर भी फर्रुख-सियर के राज्यकाल के सबंध में उसे अपनी सफाई देनी पड़ी है। उसने लिखा है कि फर्रुखसियर का काल विचित्रताओं और परिवर्तनों का काल था। मैंने जो वृत्तांत लिखा है उसे या तो अपने निजी अनुभवों के आधार पर अथवा फर्रुखसियर के संपर्क में रहनेवालों की सूचनाओं के आधार पर। इन सूचनाओं में जहाँ मुझे अंतर दिखाई पड़ा वहाँ मैंने

---

१. इलियट-डासन कृत हिस्ट्री आव इंडिया, भाग ७, पृ० ४८०-८१

२. वही, पृ० ४८१

सत्य का पता लगाने की चेष्टा की है। फिर भी यदि कहीं भूल से अशुद्धि रह गई हो तो उसके लिये मैं कृपा और क्षमा का प्रार्थी हूँ।[१]

मीर गुलाम हुसेन खाँ ने हि० सन् १११८ (सन् १७०६ ई०) से ११९४ (सन् १७८२ ई०) तक का मुगल साम्राज्य का जो विस्तृत इतिहास 'सियरुल मुताखरीन' नामक लिखा है उसमें भी फर्रुखसियर की मृत्यु के संबंध में दो भिन्न भिन्न विवरण दिए गए हैं। इस इतिहासकार ने अपने मित्रों और विश्वस्त परिचितों से सुने हुए वृत्तांत के आधार पर लिखा है कि सैयद बंधुओं ने फर्रुखसियर की हत्या का कभी विचार तक नहीं किया और न उनकी यह इच्छा थी कि बादशाह के प्रति किसी प्रकार का दुर्व्यवहार किया जाय। वे केवल यह चाहते थे कि बादशाह पहरे में सुरक्षित रहें और इसीलिये उन्होंने अपना एक विश्वस्त अफगान अधिकारी चौबीसों घंटे उनकी देखरेख करने के लिये नियुक्त किया था। एक दिन सायंकाल मौका पाकर बादशाह भाग निकले। वे थोड़ी ही दूर गए थे और किले से नीचे कूदने की ताक में थे कि पहरेदार लौट आया और बादशाह को न देखकर बड़ा घबड़ाया। प्रश्न स्वतः पहरेदार की जान का भी था। उसने तुरत ढूँढ खोज की और थोड़ी दूर पर दीवार की छाया में छिपे हुए बादशाह को देखकर उसने उन्हें धर दबोचा और पकड़कर पुनः कोठरी में बंद कर दिया। बादशाह को अपने काबू में पाकर उसने फर्श पर पटक दिया और थप्पड़ तथा घूसों से बड़ी निर्दयतापूर्वक मारने लगा। फर्रुखसियर इस प्रकार का दुर्व्यवहार सहन नहीं कर सके और समस्त शक्ति बटोरकर उन्होंने अपना सिर दीवार पर दे मारा। उनकी खोपड़ी फट गई और वे तत्काल मर गए।[२]

---

१. वही, पृ० ४४१-४२

२. द सियर मुताखरीन, नोटा मैनस, भाग १, द्वितीय संस्करण, पृ० १३८-९

किंतु यह वृत्तांत ठीक नहीं प्रतीत होता। सियरुल मुताखरीन के अनुवादक नोटा मैनस ने इसपर शंका की है और लिखा है कि एक सैयद (मुताखरीन के लेखक सैयद थे) दूसरे सैयद (सैयद बंधुओं से तात्पर्य है) के लिये और एक शिया दूसरे शिया के लिये ऐसा ही कहता है। यदि सचमुच सैयद बंधुओं की इच्छा बादशाह को केवल बंदी बनाए रखने की होती तो उनके साथ वैसा दुर्व्यवहार न किया जाता जैसा बंदी अवस्था में किया गया।[1]

सियरुल मुताखरीन में उल्लिखित फर्रुखसियर की मृत्यु की दूसरी कहानी के अनुसार उनकी मृत्यु सैयद बंधुओं के षड्यंत्र और उन्हीं के आदेश से हुई थी। बंदी बनाए जाने के प्रायः दो मास पश्चात् उनकी आँखों में तपाई हुई सुइयाँ चला दी गईं किंतु इससे वे एकदम अंधे नहीं हुए। बारंबार इसी प्रकार के विभिन्न अमानुषिक अत्याचार सहते सहते बादशाह जब एकदम ऊब गए तब उन्होंने छुटकारे की कई कोशिशें कीं। एक बार उन्होंने अपने व्यवहार के लिये सैयदों से क्षमा भी माँगी और उन्हें यह आश्वासन दिया कि यदि मुझे फिर से सिंहासन पर बैठा दिया जाय तो साम्राज्य की व्यवस्था का संपूर्ण अधिकार उन्हें दे दूँगा। दूसरी बार उन्होंने अफगान पहरेदार अब्दुल्ला खाँ को प्रभूत धनराशि का लालच दिया कि वह उन्हें सवाई जयसिंह के पास पहुँचा दे। इन सबकी पूरी पूरी सूचना सैयद बंधुओं को मिलती रही और अंत में उन्होंने बादशाह को समाप्त कर देने का निश्चय किया। भोजन में दो बार विष दिया गया किंतु कोई प्रभाव नहीं हुआ। तीसरी बार विष देकर उसका प्रभाव देखने के लिये जब दोनों सैयद बंधु बंदी बादशाह के पास पहुँचे तब बादशाह ने उन्हें गालियाँ दीं और उनके दुर्व्यवहार तथा कृतघ्नता के लिये अनेक अपशब्दों का प्रयोग किया। खुदा

---

१. वही, पृष्ठ १३६, पादटिप्पणी (१२२)

और कुरान शरीफ की कसमें खाकर बादशाह के प्रति भक्ति, निष्ठा और सेवाभाव के जो वादे किए गए थे उनको तोड़ने के लिये उन्होंने सैयदों की बड़ी लानत मलामत की। सैयद सुनते सुनते आपे से बाहर हो गए और उन्होंने आज्ञा दी कि फर्रुखसियर का गला तुरंत घोट दिया जाय जिसमें वे ऐसे अपशब्दों का प्रयोग न कर सकें। सैयदों की आज्ञा का पालन किया गया। फर्रुखसियर ने बहुत हाथ पैर मारे किंतु अंत में बड़ी यातना भुगतने के बाद उनके प्राण निकल गए।[१]

इन तीनों वृत्तांतों में जो थोड़ा थोड़ा भेद है उसी में राखाल बाबू की कल्पना को सक्रिय होने के लिये थोड़ी संधि मिल गई है। इस उपन्यास में उनकी कल्पना को लंबी उड़ान भरने के लिये उतना अवकाश सुलभ नहीं था जितना शशांक और करुणा में, जिनमें गुप्त साम्राज्य की अवनति की कथा है। परवर्ती मुगलकाल के अनेक प्रामाणिक इतिहास-ग्रंथ मिलते हैं जिनमें मुख्य मुख्य घटनाओं में विशेप भेद नहीं है। प्रायः सभी लेखकों ने फर्रुखसियर को नीच, कृतघ्न और समय की गति को न पहचाननेवाला बादशाह कहा है जिसे हुसेन अली और अब्दुल्ला मनमाना नाच नचाया करते थे। उसके उदात्त गुणों की कहीं चर्चा तक नहीं है। लेकिन इतिहास के उन्हीं प्रामाणिक ग्रंथों की संधियों से राखाल बाबू की सहृदयता ने फर्रुखसियर का ऐसा चित्र उपस्थित किया है जिसमें वैसी नीचता और कृतघ्नता की झलक तक नहीं है।

सैयद इतिहासकारों के पक्षपात पर जैसा कटाक्ष सियरुल मुताख्खरीन के अनुवादक ने किया है वैसा ही व्यावहारिक कटाक्ष राखाल बाबू ने अपनी अत्यंत प्रौढ़ रचना 'शशांक' में हुएनसांग के यात्रा-विवरण के प्रति किया है जिसमें उन्होंने शशांक नरेंद्रगुप्त को कट्टर शिवोपासक और

---

१. वही, पृष्ठ १४०-४२

घोर बौद्धविद्वेषी नहीं, प्रत्युत् अपने धर्म के प्रति आस्थावान् रहते हुए अन्यान्य मानवोचित उदात्त गुणों से समन्वित चित्रित किया है।

सैयद बंधुओं की महत्वाकांक्षा सेनापतित्व और मंत्रित्व पद प्राप्त करने पर भी शांत नहीं हुई। फर्रुखसियर सैयदों की चाल से अवगत थे और भीतर ही भीतर उनसे छुटकारा पाने और स्वतंत्र रूप से शासन कार्य करने का उपाय ढूँढ रहे थे। मतभेद धीरे धीरे बढ़कर वैमनस्य में परिणत हो गया और फर्रुखसियर को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा। इस प्रकार फर्रुखसियर और सैयद बंधुओं के विवाद की बात तो समझ में आती है, परंतु इस षड्यंत्र में बादशाह के श्वसुर जोधपुर के राजा अजीतसिंह जिस रूप में संमिलित हुए वह सचमुच बड़ा नीचतापूर्ण तथा घृण्य था। राखाल बाबू ने उनपर बड़ा आक्रोश प्रकट किया है। अजीतसिंह बड़े अवसरवादी थे। औरंगजेब के राज्यकाल में ही उन्होंने साम्राज्य के विरुद्ध हाथ पैर मारना आरंभ कर दिया था। औरंगजेब की दूरदर्शिता के कारण अजीतसिंह उभड़ नहीं सके और जंगलों पहाड़ों में छिपते फिरे। शाहआलम बहादुरशाह से भी पहले इनका मित्र-भाव नहीं रहा। पीछे उसने इन्हें क्षमा करके तीन हजारी मंसबदार बनाया। बादशाह ने कामबख्श के दमन के लिये जब दक्षिण की यात्रा की तब अजीतसिंह भी साथ थे पर रास्ते में ये जयसिंह कछवाहा से साँठगाँठ करके आवश्यक सामान उड़ाकर मारवाड़ भाग गए। दक्षिण से लौटने पर बादशाह ने इन्हें दंड देने का विचार किया था किंतु साम्राज्य की अवस्था देखकर वह विचार छोड़ दिया। फर्रुखसियर के राज्यारोहण के दूसरे वर्ष हुसेनअली खाँ स्वयं अजीतसिंह का दमन करने के लिये भेजे गए। अजीतसिंह ने सुलह कर ली और अपनी लड़की फर्रुखसियर को ब्याह दी। फर्रुखसियर के सिंहासनच्युत होने की गड़बड़ी में ये अपनी लड़की को विपुल धन-संपत्ति के साथ फिर अपने यहाँ वापस लिवा ले गए। स्वयं खाफी खाँ को इनकी बड़ी

भर्त्सना करनी पड़ी है ।[1] इनकी हत्या इन्हीं के पुत्र ने अत्यंत जघन्य संदेह के कारण की थी ।

राखाल बाबू में विचारशील इतिहासकार की पैनी दृष्टि के साथ-साथ सहृदय साहित्यकार की उदात्त प्रतिभा थी । संभावना के जिस आधार को ग्रहण कर उन्होंने शशांक का चरित्र उसके इतिहास-वर्णित चरित्र की अपेक्षा श्रेष्ठ और उन्नत रूप में चित्रित किया उसी पुष्ट आधार पर उन्होंने फर्रुखसियर को नीच और कृतघ्न नहीं बल्कि स्वार्थी दरबारियों और कूटनीतिक तथा षड्यंत्र-प्रिय अधिकारियों से घिरा निरीह शासक मात्र चित्रित किया है । ऐतिहासिक उपन्यासों की कथा का कुशल निर्वाह बिना इस प्रकार की सूक्ष्म दृष्टि के होना कठिन है ।

इस उपन्यास में ई० १८ वीं शती के आरंभ की उत्तर भारत की राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक स्थिति के चित्र हैं । औरंगजेब की मृत्यु के उपरांत मुगल साम्राज्य में जिस आपसी फूट और कलह का आरंभ हुआ वह फर्रुखसियर के शासनकाल तक पहुँचते पहुँचते बहुत व्यापक हो गया था । हिंदू राजा ही नहीं, दूरवर्ती प्रांतों के मुसलमान शासक भी केंद्र की उपेक्षा कर अपनी स्वतंत्रता स्थापित करने की चेष्टा करने लगे थे । राज-परिवार और राज-दरबार के भीतर नाना प्रकार के कुचक्र चल रहे थे । राजकीय कोश का दुरुपयोग हो रहा था । सबको अपनी अपनी पड़ी थी । षड्यंत्रों और हत्याओं का बोलबाला था । साम्राज्य के उच्चपदस्थ अधिकारियों का गृहजीवन भी इन आपत्तियों से अछूता नहीं बचा । उनमें इसी प्रकार की चालें चली जा रही थीं और छल-प्रपंच से एक अधिकारी दूसरे को अपदस्थ करके उसके स्वत्व को स्वायत्त करना चाह रहा था । लंबी यात्राएँ बड़ी कष्टकर

---

१. इलियट डासन, भाग ७, पृ० ४७३

और भयंकर हो गई थीं। लूट-मार और चोरी-डाके की आशंका बढ़ गई थी। शासकीय ढिलाई से उत्साहित होकर चोरों और डाकुओं को खुल खेलने का अवसर मिल गया था, यहाँ तक कि राजकीय पहरे में चलनेवाले कोष तथा यात्री भी सुरक्षित नहीं रह गए थे। नैतिकता का इतना ह्रास हो चला था कि अपने स्वार्थ के लिये सगे-संबंधियों की हत्या तक में उच्चवर्गीय लोगों को कोई संकोच नहीं होता था। असीम की कथा तत्कालीन राज-परिवार तथा साम्राज्य के उच्चपदस्थ कर्मचारियों और उनके संपर्क में रहनेवाले मित्रों एवं परिचितों के पारिवारिक जीवन की कहानी है और उसमें उपर्युक्त सभी स्थितियों की पूरी और सच्ची झाँकी मिलती है।

उत्तर-मध्यकाल में बंगाल में शक्ति-उपासकों और तांत्रिकों का जो प्राबल्य रहा उसका भी आभास इस उपन्यास के त्रिविक्रम में मिलता है, जो अपनी अद्भुत् सिद्धियों और दुर्द्धर्ष चरित्र के कारण पाठक को बरबस अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है।

शंभुनाथ वाजपेयी

असीम

पहला परिच्छेद

अंधा बालक

अभी संध्या नहीं हुई थी; अस्ताचलगामी सूर्य की रक्तिम आभा से भागीरथी के दोनों किनारों पर लगे हुए वृक्षों के ऊपरी हिस्से आलोकित थे किंतु उनके नीचे अँधेरा हो गया था। जाड़े के दिन थे। मार्गशीर्ष मास समाप्त हो रहा था और भागीरथी की धारा सूख चली थी; केवल एक किनारे से क्षीण स्रोत धीरे धीरे बह रहा था। उस पार का तट घने कुहासे में क्रमशः लुप्त हुआ जा रहा था। ऐसे समय नदी किनारे लगे हुए एक विशालकाय पीपल के वृक्ष के नीचे ईंट के बने लंबे-चौड़े चबूतरे पर एक बालक उदास बैठा हुआ था। गाँव के और लोग जाड़े के कारण वहाँ से अपने अपने घर चले गए थे। बालक अकेला था और माथे पर हाथ रखे कुछ सोच रहा था। सहसा उसकी चिंताधारा में बाधा पड़ गई—कुछ दूरी पर उसे किसी मनुष्य का पदशब्द सुनाई पड़ा। उसने मस्तक ऊपर उठाया।

आगंतुक मुसलमान था। उसके दाहिने हाथ पर शिकारी बाज, पीठ पर बंदूक और धनुप तथा कमर में लंबी तलवार थी। पीपल के

नीचे एक मनुष्यमूर्ति देखकर वह बोल उठा, "सुभान अल्लाह, इतनी देर में एक आदमी तो दिखाई पड़ा। भाई, क्या तुम मेरी बात समझ रहे हो ?" पीपल के नीचे बैठा बालक उसकी बात सुनकर चौंक पड़ा, क्योंकि आगंतुक विशुद्ध फारसी भाषा में बोल रहा था। बालक खड़ा होकर बोला—"हाँ, समझ रहा हूँ। जनाब, जान पड़ता है आप मुगल हैं।"

"हाँ भाई, मैं चगताई हूँ; शिकार में रास्ता भूल गया। इस जंगली प्रदेश में शिष्ट फारसी भाषा समझ सकने लायक किसी मनुष्य की खोज दिन भर से कर रहा हूँ। अब तुमसे साक्षात् करके प्राण बचे हैं। क्या तुम मुझे लालबाग तक पहुँचा सकते हो ?"

"जनाब, आपकी आज्ञा का पालन करके मैं अपने को धन्य समझता; किंतु भगवान् की इच्छा कुछ और ही जान पड़ती है।"

आगंतुक उसके पास आकर और उसके मुँह की ओर देखकर हँस पड़ा। उसे सुनकर लड़के ने कहा—"जनाब, मैं जन्मांध हूँ।"

आगंतुक बोला—"भाई मैं इसलिये नहीं हँसा कि खुदा ने जो दिया था, उसे उसने ही वापस ले लिया। तुम्हारा मुँह देखकर ही मैं समझ गया था कि सूर्य चंद्र की ज्योति तुम्हारे दृष्टिपथ से हटाकर खुदा ने तुम्हें एक नई तरह की रोशनी दी है। हँस रहा था मैं अपनी किस्मत पर। सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त पर्यंत रास्ता ढूँढ़ता फिर रहा हूँ, अगर कोई आदमी मिलता भी है, तो मैं उसकी बात नहीं समझ सकता; बात समझने लायक आदमी अब मिला भी तो दृष्टिहीन। भाई यहाँ पास में क्या कोई गाँव है ? मैं अब और चल नहीं सकता। बहुत तेज भूख लगी हुई है, मुझे कुछ खिलाओ।"

आगंतुक यह कहकर पेड़ के नीचे बैठ गया। अंधे युवक ने कहा—"आप आराम करें। पास ही हमलोगों का गाँव है। मैं किसी

को बुला लाता हूँ। हमलोग हिंदू हैं, हमारे यहाँ तो आपके लायक भोजन मिलेगा नहीं।"

जान पड़ता है, मुसलमान क्षुधा की यंत्रणा से पागल हो रहा था। वह बोल उठा—"ईश्वर की दुहाई है, भाई। तुम जरा भी देर मत करो। भूख-प्यास का कष्ट अब असह्य हो गया है। मनुष्य जो भी खा सकता है उसे पाकर मैं संतुष्ट होऊँगा।"

अंधा युवक पीपल के नीचे से गाँव की ओर अग्रसर हुआ। उसी समय पीछे से पुकारकर आगंतुक ने कहा—"भाई, काफिर और मुसलमान के एक खुदा की दुहाई है, कहीं मुझे भूल न जाना!"

युवक ने हँसकर कहा—"आपको यदि संदेह वा भय है तो मेरे साथ ही क्यों नहीं चलते?"

"अब और चल जो नहीं पा रहा हूँ भाई! मालूम होता है जैसे आज दो-तीन हजार कोस की यात्रा की है।"

"जनाब, तब आप आराम कीजिए, मैं आधे घंटे में वापस आ जाऊँगा।"

आगंतुक लंबी साँस लेकर पेड़-तले बैठ गया। युवक ने भागीरथी का तट छोड़ एक छोटे से गाँव की सीमा में प्रवेश किया। गाँव के छोर पर आम के बगीचे के बीच ईंटों का बना एक छोटा घर है, घर के किवाड़ और खिड़कियाँ बंद हैं। घर के भीतर किसी पुरुष-कंठ ने गाया—

"ओ माँ श्यामा हरमनमोहिनी,—"

अंधे ने बंद किवाड़ थपथपाया। गानेवाले ने अत्यंत विरक्ति से पूछा, "कौन है रे?" युवक ने कहा, "भैया, मैं हूँ। दरवाजा खोल दीजिए।" "साँझ बेला यह कौन आफत आई रे!" "मैं हूँ, भैया!"

"तू जमराज के घर जा! पंडित जी रायसाहब के यहाँ गए हैं इसलिये जरा सुर मिला रहा था, तब तक तू आफत आ पड़ा? बजावेगा तो आ जा, नहीं दूर हो!" "हाँ भैया, बजाऊँगा, लेकिन थोड़ी देर बाद। पहले विपत्ति से उद्धार कीजिए।" एक दुबले पतले लंबे युवक ने हाथ में वीणा सँभाले दरवाजा खोल दिया और पूछा, "तबला निकालूँ क्या?" युवक ने कहा, "जरा ठहरकर। दीदी से पूछिए, घर में इस समय कुछ भोजन है।" "क्यों रे भूपेन, नीच की बेटी ने क्या आज तुझे खिलाया नहीं?" "लगभग ऐसा ही है। एक संभ्रांत मुसलमान सज्जन राह भूल गए हैं—" "मुसलमान? गोभक्षक, लुच्चा! अबे उल्लू के पट्ठे, तू हरिनारायण विद्यालंकार के घर का प्रसाद उस लुच्चे को खिलाएगा? दूर हो, निकल।" "पहले बात तो सुनो भैया…" "मैं तेरी कोई बात नहीं सुनूँगा, पाखंडी, कुलांगार, नराधम……"

उसी समय एक अर्द्ध-अवगुंठनवती रमणी ने कमरे में प्रवेश किया और बोली, "क्यों संध्या समय बच्चे को अकेला पाकर जो मुँह में आता है, बकते जाते हो; क्या बात है, सुनूँ जरा?'

युवक—"देखो दीदी, एक संभ्रांत मुसलमान सज्जन……"

ब्राह्मण—"तूने कैसे जाना कि वह संभ्रांत है?"

रमणी—"आः हाः, जो कहता है उसे सुनो तो?"

ब्राह्मण—"एक संभ्रांत मुसलमान सज्जन राह भूलकर गाँव में आ गए हैं। वे बँगला नहीं समझते और दिन भर से उन्होंने भोजन नहीं किया है। घर में क्या है दीदी?"

रमणी—"भगवान के भोग का संदेश है। तुम जरा बैठो। मैं पूरियाँ बना लाती हूँ।"

ब्राह्मण—"देखो बड़ी बहू, जो कुछ तैयार है वही ठीक है; ज्यादा

फैलाव न करो। मेरे जीवित रहते अगर हरिनारायण विद्यालंकार के घर का प्रसाद म्लेच्छ यवन के······"

स्त्री सहसा ब्राह्मण के मुँह पर हाथ रखकर बोली—"देखो भट्टाचार्य जी, जो बात मान न सकूँ उसके लिये न कहना। वह मुसलमान हो या कोई भी हो, अतिथि है। अतिथि अगर बिना भोजन किए गाँव से लौट जायगा तो अमंगल होगा। भैया, तुम बैठो।"

"दीदी, मैं राँगा भाई को ढूँढ़ने जा रहा हूँ। तुम एक केले के पत्ते में भोजन बाँध रखना; मैं जल्द ही वापस आऊँगा।"

युवक चला गया। ब्राह्मण बिना दरवाजा बंद किए फिर गाने बैठ गया—

"ओ माँ श्यामा हरमनमोहिनी···"

———

दूसरा परिच्छेद

छोटे राय

गाँव के दूसरे किनारे एक बड़ी भारी अट्टालिका के दो-तल्ले पर एक कृष्णवर्णा मोटी-ताजी स्त्री बैठी पान लगा रही थी। उसके सामने बड़ा सा चाँदी का पानदान था जिसमें छोटी-बड़ी असंख्य डिबियों में बहुत सी सामग्री रखी थी। सामने दो-तीन दासियाँ बैठी थीं; कोई सुपाड़ी काट रही थी, कोई पान साफ कर रही थी। दो अन्य दासियाँ चाँदी की थाली में पान सजाकर गृहिणी के सामने रख रही थीं और वे प्रत्येक पान में केवल मसाले लगा रही थीं क्योंकि हिलना-डुलना उनके लिये असंभव था। गृहिणी विस्तृत दालान में बैठी हुई थीं। एक ओर प्रशस्त काश्मीरी गलीचा था, सामने शतरंजी पर पान का सामान फैला हुआ था। दालान के दूसरी ओर से एक गौरवर्ण युवक ने प्रवेश किया और गृहिणी से पूछा—"बहू जी, मालिक के समय का सोने का पानदान कहाँ है?"

गृहिणी ने सामने बैठी दासी के हाथ पर रखे चाँदी के पात्र की ओर से दृष्टि हटाए बिना कहा—"मुझे क्या मालूम, भंडार में जाकर देखो।"

"भंडारी कहता है कि वह आपके आज्ञानुसार ऊपर आया है।"

"तो क्या मैंने तुम्हारा सोने का पानदान चुरा रखा है।"

"सुनता हूँ, वह पानदान ईश्वरगंज भेज दिया गया है।"

ईश्वरगंज का नाम सुनकर गृहिणी का भारी-भरकम शरीर ऊपर उठा। आबनूस के गोल-मटोल कुंदे की भाँति गृहिणी के बाहु का धक्का खाकर चाँदी के पात्र में सजा हुआ पान चारों ओर बिखर गया और जो दासी पात्र लिए थी वह भी गिर पड़ी। गृहिणी बोलीं—

"जितना बड़ा मुँह नहीं, उतनी बड़ी बात! ईश्वरगंज के लोगों के पास क्या खाने को नहीं है कि राय घराने के बरतन चुराने आएँगे? तू मेरे ही अन्न से मनुष्य हुआ है; तुझे ऐसी बात कहते लज्जा नहीं आती? बरतन मेरे स्वामी का है, मैं जो चाहूँ करूँगी; इसमें किसी का क्या! अगर तू चार पैसे का धंधा करता तो न जाने क्या करता। देखूँगी, तू इस घर में अब कैसे रहता है।"

यह कहकर गृहिणी ने दालान छोड़ शयनकक्ष में प्रवेश किया और किवाड़ बंद कर लिए। युवक का मुँह क्रोध के मारे तमतमा उठा। वह बहुत कठोर उत्तर देने जा रहा था कि सहसा पीछे से किसी ने उसके मुँह पर हाथ धर दिया। युवक और भी चिढ़ गया तथा नवागंतुक का हाथ पकड़कर उसे दालान में खींच लाया। आगंतुक ने उसे दोनों हाथों से जोर से पकड़कर कहा—"भैया, तुम कुछ कहने नहीं पाओगे। जो कुछ कहना हो बड़े भाई साहब के आने पर कहना।"

पहला युवक आगंतुक को अपनी बाहों में जकड़े कुछ देर स्तब्ध खड़ा रहा। लगभग दस मिनट बीत गए। दासियाँ उनकी भावभंगी देख जिधर रास्ता मिला उधर सरक गईं। किसी प्रकार का उत्तर न मिलने के कारण जान पड़ता है गृहिणी के मन में कुछ संदेह हुआ; वे किवाड़ की फाँक में से दोनों को देख रही थीं। दोनों आदमियों को बहुत देर तक चुपचाप देख उन्हें कुछ साहस हुआ।

किवाड़ खोलकर वे बोलीं—"मारेगा क्या? आ न!"

आगंतुक ने युवक को और जोर से दाबकर कहा—"भैया! दुहाई है तुम्हारी, कुछ भी बोलना मत।"

युवक ने लंबी साँस लेकर कहा—"नहीं भाई, कुछ नहीं बोलूँगा।" फिर गृहिणी की ओर मुँह करके बोला—

"बहू जी, मैं ईश्वरगंज का गुलाम मुंशी नहीं हूँ। रायवंश में किसी ने कभी भी स्त्री पर हाथ नहीं उठाया। तुम तो बड़े भाई की पत्नी हो, माता के समान। आज तुमने मेरी आँखें खोल दीं। जिस घर में तुम रहोगी उसका अन्न अब मैं मुँह में न धरूँगा।"

इतना कह युवक ने दूर से ही गृहिणी को प्रणाम किया और आगंतुक का हाथ पकड़े अट्टालिका के बाहर हो गया। रास्ते पर पहुँचकर आगंतुक ने पूछा—"जा कहाँ रहे हो, भैया?"

"जिधर ये दोनों आँखें उठें। तुम भी मेरे साथ चलो भाई। तुम्हारा ही मुँह देखकर मैंने घोर अपमान, यंत्रणा और लांछना सहा है। भूप! आज और सह नहीं सका। घर-द्वार, गाँव-इलाका, हम लोगों का जो कुछ था सब भाई साहब ने ले लिया है। बाबू जी के पास जो कुछ चल-संपत्ति थी, सब ईश्वरगंज पहुँच गई है। सोने का एक जोड़ा पानदान रह गया था···। अब तो तुम भी बड़े हो गए; फिर किसके लिये अपमान सहूँ?"

अंधे की दोनों दृष्टिहीन आँखें भाई के चेहरे की ओर मुड़ीं। गला भर आया। उसने पूछा—"घर छोड़ दूँ? तब क्या घर हम लोगों का नहीं है?"

"नहीं भाई, घर बड़े भाई साहब का है, अर्थात् बहू जी का। आगे चलकर हम लोगों का हिस्सा देने के डर से उन्होंने घर की जमीन बहू जी के नाम से खरीद की है।"

"तब जाऊँगा कहाँ?"

"जहाँ भगवान आश्रय दे।"

"विद्यालंकार जी के यहाँ चलना ठीक होगा ?"

"ना भाई, इस गाँव में अब एक घड़ी भी नहीं ठहरूँगा। तुम चलोगे न मेरे साथ ?"

अंधे लड़के ने अपनी दोनों बाहें भाई के गले में डाल दीं और रुँधे हुए कंठ से बोला—"भैया, मैं आपको छोड़कर एक घड़ी भी जी न सकूँगा। जहाँ भी जाओगे मैं संग चलूँगा। लेकिन तुम्हें थोड़ी देर प्रतीक्षा करनी होगी। मैं गंगा किनारे पीपल के नीचे एक अतिथि को बैठा आया हूँ। उसका प्रबंध किए बिना चल न सकूँगा।"

"भूप ! इस समय कहाँ क्या मिलेगा कि अतिथि को खिलाएगा ?"

"तुम इसकी चिंता छोड़ो भैया, मैं भट्टाचार्य जी की बहू से भोजन की व्यवस्था करने के लिये कह आया हूँ। क्या समझते हो कि बहू जी मेरे अनुरोध से किसी दिन किसी को मुट्ठी-भर अन्न देने से रहीं ?"

"लेकिन भूप, इस समय विद्यालंकार जी के घर चलने से तो पकड़ा जाऊँगा।"

"तो न हो तुम दूर ही रहो।"

"नहीं, चलो चलें, सुदर्शन से कहकर ही चले चलें।"

"ऐसा काम मत करना भैया, नहीं तो भट्टाचार्य भैया सारे गाँव में डुग्गी पीट देंगे।"

"अच्छा, कुछ न कहूँगा। लेकिन चलो, उससे भेंट करता चलूँ, शायद अब इस गाँव में लौटना न हो।"

दोनों विद्यालंकार जी के यहाँ पहुँचे। दूर से ही सुदर्शन भट्टाचार्य का गाना सुनाई पड़ा। बड़े भाई ने छोटे से कहा—"भूप, सुदर्शन गा रहा है, इस समय उसे छेड़कर क्या दुखी करूँ ?"

'विलंब करना ठीक न होगा भैया, मेरा अतिथि अत्यंत भूखा है।'

दोनों भाइयों ने दरवाजा खटखटाया। सुदर्शन ने अत्यंत क्रोध-पूर्वक कहा—'भूप है न! ठहर तेरा सिर तोड़ता हूँ।" लेकिन बंद दरवाजा खोलने पर उसने देखा सामने एक आदमी और खड़ा है। तब उसका ब्राह्मण-सुलभ क्रोध दूर हो गया। उसने कहा—"कौन? छोटे राय! आओ भाई, एक नए गाने का सुर बाँधा है।" युवक ने पहले ब्राह्मण का आलिंगन किया; फिर प्रणाम करके कहा—"तुम्हारा नया गाना सुनने में बहुत समय लगेगा। मैं अभी परदेश जा रहा हूँ, आशीर्वाद दो।"

इसी समय कमरे में दो स्त्रियों ने प्रवेश किया। एक सधवा थी, एक विधवा। सधवा ने केले के पत्ते में लपेटी कुछ खाने की सामग्री दूसरी स्त्री के हाथ में देकर कहा—"छोटे मालिक, लौटती बेर इधर से जाना न भूलना; तुम्हारे लिये प्रसाद रखा है।

विदेश-यात्रा की बात सुन सुदर्शन भट्टाचार्य किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गए थे। उन्होंने हठात् कहा—"अरी चल, रहने दे अपना प्रसाद! असीम और भूपेन परदेश जा रहे हैं।" दोनों स्त्रियाँ आश्चर्यचकित हो एक साथ बोल उठीं—"परदेश! कहाँ?" युवक ने कहा—"दिल्ली।"

विधवा स्त्री आत्म-संवरण न कर पाई और रो पड़ी; उसने अंधे बालक का हाथ पकड़कर अपनी गोद में खींच लिया। ब्राह्मण ने वीणा छोड़ दी और युवक के कंधे पर हाथ रखकर कहा—"हाँ रे असीम! तुम दोनों चले जाओगे; फिर मैं किसके भरोसे रहूँगा?"

युवक ने कहा—"डर क्या है भैया! हम लोग जल्दी ही लौटेंगे। तुम एकाग्र मन से गाने का सुर ठीक करो। हम लोग लौटकर एक ही बैठक में सारा गाना सुन लेंगे। और देर न करूँगा, सवारी खड़ी है।"

दोनों भाई सुदर्शन, उसकी स्त्री और बहन को प्रणाम करके विद्या-लंकार के घर से बाहर हुए। आम के पेड़ों से घिरे उस छोटे से गाँव

के बाहर होते समय पैरों की आहट सुन दोनों भाई चौकन्ने होकर रुक गए। दूसरे ही क्षण एक स्त्री द्रुत गति से उनके पास आई। युवक ने पूछा—"कौन ?"

स्त्री बोली—"भैया मैं हूँ, दुर्गा।"

अंधे ने घबराकर पूछा—"कौन, दीदी ? तुम इस अँधेरे में बगीचे में क्यों आई ?"

स्त्री ने उसे अपनी गोद में खींचकर युवक से कहा—"मेरा एक अनुरोध मानना होगा, भैया !"

"कौन सा अनुरोध, बहन।"

"देखो भैया, तुम पुरुष लोग जिसे बातचीत में प्रकट नहीं होने देते, वह मुँह के भाव से प्रकट हो जाता है। मुँह के भाव की वह भाषा पुरुष सहज में नहीं समझ पाता, लेकिन स्त्री समझ जाती है। मैं अच्छी तरह समझ गई हूँ कि तुम लोग गाँव छोड़ रहे हो। किसलिये छोड़ रहे हो, यह सभी जानते हैं। देखो भैया ! तुम्हारी ही तरह मैंने भी भूप को तीन बरस के अबोध बच्चे से पालकर इतना बड़ा किया है; इसलिये उसपर मेरा भी कुछ दावा है। इस पोटली में जो कुछ है वह मेरे स्वामी की संपत्ति है इसलिये अब इसपर मेरे सिवा किसी दूसरे का अधिकार नहीं है। मैंने इसे भूप को दिया, उसी के लिये इसे खर्च करना।"

दुर्गा देवी युवक के हाथ पर एक भारी-सी पोटली रखकर जल्दी जल्दी वापस चली गई। इसी समय आम के पेड़ के नीचे अँधेरे में से एक आदमी ने बाहर आकर पूछा—"तुम लोग क्या चाहते हो ?"

युवक ने पूछा—"क्यों ?"

कंठस्वर सुनकर उस आदमी ने प्रणाम किया और कहा—"कौन, छोटे हजूर ? अँधेरे में पहचान नहीं पाया; मैं हूँ, नवीन।"

———

तीसरा परिच्छेद

अतिथि

गाँव की सीमा पीछे छूटने पर युवक ने अंधे बालक से पूछा—"भूप ! तेरा अतिथि है कौन ?"

लड़का बोला—"एक चगताई है ।"

"चगताई !"

"हाँ भैया ! खालिस मुगल । बँगला या हिंदी बिलकुल नहीं समझता । शिकार करने जाकर रास्ता भूल गया है । बात समझता नहीं, इससे दिन भर से खाना नहीं मिला । बहू जी के यहाँ से जो कुछ मिलता वह जानते ही हो । मैं भट्टाचार्य जी की स्त्री से भोजन बनाने के लिये कहकर तुम्हें बुलाने जा रहा था । भैया ! उसे शहर तक पहुँचा देना होगा ।"

"अच्छा ही हुआ । शहर में जाने से बड़े भाई साहब के आदमी हमें सहज में मार न सकेंगे ।"

"क्यों भैया, बड़े भाई साहब के आदमी हमें मारेंगे किसलिये ?"

"क्या समझोगे भाई ! संपत्ति का मामला बड़ा टेढ़ा होता है ।"

"संपत्ति तो हम लोगों ने लिख दी है; फिर हमें मारेंगे क्यों ?"

"इसलिये कि पीछे फिर कभी हमलोग दावा न करें । संपत्ति की

बात अगर नवाब-सरकार या बादशाह के दरबार में पहुँचेगी तो बड़े भाई साहब बहुत अपमानित होंगे।"

"तो चलो न भैया, नवाब को सब बातें बता दें।"

"नवाब बड़े भाई साहब के अनुगृहीत हैं; उनसे कहने पर हमारा कोई उपकार नहीं होगा।"

"बादशाह भी क्या बड़े भैया के अनुगृहीत हैं ?"

"नहीं। मैंने बादशाह के ही दरबार में जाने का विचार किया है। बड़े भाई साहब का अविचार देखकर बहुत दिनों से संकल्प कर रखा है कि एक दिन दिल्ली जाऊँगा। आज ही वह संकल्प कार्य में परिणत करूँगा। तेरा अतिथि कहाँ है ?"

"यह रहा !"

इसी समय उस पथभ्रांत मुसलमान ने पीपल के नीचे अँधेरे में से पूछा—"दोस्त ! तुम क्या वही हो ?"

भूपेंद्र ने फारसी में उत्तर दिया—"जनाब ! अपराध क्षमा कीजिएगा—आपके लिये भोजन लाने में देर हो गई।"

"तुम लौट आए, इसके लिये ईश्वर को धन्यवाद देता हूँ। अँधेरा हो गया है। रात में कैसे नदी पार करूँगा ?"

"उसका प्रबंध कर आया हूँ।"

"भाई ! तुम फरिश्ता हो।"

दोनों भाइयों ने पीपल तले केले का पत्ता बिछाकर भोजन परस दिया। उनका अतिथि अत्यंत क्षुधार्त्त हो गया था। अनुमति की प्रतीक्षा किए बिना उसने खाना आरंभ कर दिया। भूख थोड़ी शांत होने पर उसने पूछा—"दोस्त, तुम्हारे साथ कौन है ?"

भूपेंद्र बोला—'ये मेरे बड़े भाई हैं। इन्हीं को बुलाने में देर हुई।'

"बंधु, जान पड़ता है तुम मुझे रास्ता दिखाने चलोगे।"

"हाँ।"

इसी समय भूपेंद्र ने कहा—"हम दोनों ही चलेंगे।"

आगंतुक ने विस्मित होकर पूछा—"तुम भी चलोगे ?" अँधेरे में तुम्हें कष्ट तो न होगा दोस्त !"

भूपेंद्र ने कहा—"अंधकार में बहुत दूर से चला आ रहा हूँ जनाब, और अभी बहुत दूर जाना है।"

"कितनी दूर से आ रहे हो ?"

"बीस बरस का रास्ता तै किया है।"

"अहह, वह बात भूल गया था, माफ करना दोस्त ! आलोक और अंधकार तो तुम्हारे लिये एक समान है; इसकी याद न रही।"

"तुम लोग क्या आज रात में ही लौट आओगे ?"

"नहीं, रात शहर में रुककर सबेरे दूसरी जगह जायँगे।"

"कहाँ जाओगे ?"

"फिर बताऊँगा। अब चलिए। रात अधिक हो चली है।"

पीपल-तले से निकल तीनों आदमी नदी की ओर अग्रसर हुए। नदी के तट पर वेणु-कुंजों के बीच एक पर्णकुटी में छोटे-से दीपक के मंद प्रकाश में एक आदमी जाल बुन रहा था। दूर से ही भूपेंद्र ने उसे पुकारा—"केना भैया !"

मल्लाह ने जाल छोड़कर पूछा—"कौन ? लल्लू बाबू ? अँधेरे में इतनी दूर क्यों आए भैया ?"

भूपेंद्र के पीछे से उसके बड़े भाई ने कहा—"केना ! मैं आया हूँ, जल्दी बाहर आ।"

उसकी बात सुन मल्लाह चौकन्ना हो गया और जाल दूर फेंककर उसने कहा—"आया हुजूर।"

कुटिया के भीतर से एक स्त्री ने पूछा—"कौन है हो !" मल्लाह ने

घुड़ककर कहा—"चुप रह री ! किसको क्या कह रही है, होश नहीं रहता। देखती नहीं, छोटे राय और लल्लू बाबू आए हैं !"

इसी समय भूपेंद्र ने कहा—"केना दादा, नाव ठीक करो, हमलोग शहर जायँगे।"

"बजड़ा लाऊँ या डोंगी।"

"डोंगी।" कुटी के ही नीचे नदी में एक छोटी नाव बँधी थी। मल्लाह एक डाँड़ा लेकर उसपर बैठ गया और किनारे ले आया। सबके बैठ जाने पर उसने नाव खोल दी। थोड़ी दूर धकेलकर केनाराम नाव खेने लगा और कुछ जोर से भूपेंद्र से पूछा—

"लल्लू बाबू, जा कहाँ रहे हो ?"

भूपेंद्र ने कहा—"क्यों ! बताया न कि शहर जाऊँगा !"

"इतनी रात गए शहर ?"

"निमंत्रण है।"

"बड़े मालिक को निमंत्रण नहीं है ?"

"वे बहुत रात बीते दरबार से लौटेंगे, फिर जा न सकेंगे।"

"यह बच्चू कौन है ? मुसलमान जान पड़ता है !"

"हाँ चोगताई (चगताई) है।"

"चोगदार (रसोइया) तो ब्राह्मण न होता है ? यह बेटा जरूर मुसलमान है।"

"मुसलमान ही तो है। चोगताई (चगताई) माने मुगल, चोगदार नहीं।"

"अरे दादा ! वही तो मैंने समझा ! लल्लूबाबू यह बेटा बँगला समझता है ?"

"ना तुम निश्चिंत रहो; यह बँगला, हिंदी कुछ भी नहीं समझता।"

"जान बची ! बेटा जायगा कहाँ ?"

"लालबाग ।"

"लालबाग में तो सुना बादशाह का नाती रहता है, वहाँ जाने पर रात में लौटने पाऊँगा न ?"

"कोई भय नहीं, केना दादा । हम लोग संग ही हैं ।"

देखते-देखते नाव दूसरे तट के पास पहुँच गई । यह देख बड़े भाई ने छोटे से कहा--"भूपेन ! देख तो दुर्गा क्या दे गई ।"

"भूपेंद्र ने कपड़ों में से एक थैली निकाली और बड़े भाई के हाथ पर रख दी । उन्होंने उसे उलट-पुलटकर कहा—"यह तो कुल मोहरें हैं ।"

"वह तो मैं छूते ही समझ गया था ।"

"गिनकर देख ।"

भूपेंद्र ने गिनकर कहा—"एक हजार एक ।"

"ये तो बहुत-से रुपए हैं रे !"

"दुर्गा दीदी के पति को त्रिपुरा के महाराज ने प्रणामी दी थी ।"

इसी समय डोंगी किनारे लगी । नदी के बीच दूर तक रेती पड़ी थी और किनारे पर मुर्शिद कुली खाँ का दर्शनीय, सुरम्य नवनिर्मित नगर था । नाव से किनारे पर उतरकर असीम ने मल्लाह से कहा—"केनाराम, तुम लौट जाओ । घर लौटकर राय-गृहिणी से कह देना कि छोटे राय बिदा हो गए अब उनका अन्न नष्ट करने न आएँगे ।"

वृद्ध मल्लाह गंगा में उतरकर उस छोटी नाव का सिरा पकड़े हुए था । उसने अत्यंत विस्मित होकर पूछा—"यह कैसी बात है छोटे हुजूर !"

"ठीक है केनाराम ! बड़े मालिक से कह देना कि अन्न नष्ट होने

के डर से गृहिणी ने हम लोगों को बिदा कर दिया है। भूपेन, केना को एक मोहर दे दो।"

भूपेंद्र केनाराम को मोहर देने गया तो वृद्ध मल्लाह उसे जोर से पकड़कर रो पड़ा और बोला—"मेरे लल्लू, तू कहाँ जायगा ?"

मुसलमान सज्जन विस्मित होकर उन लोगों की यह बिदाई देख रहे थे। उन्होंने असीम से पूछा—"दोस्त, तुम लोग क्या देश छोड़कर जा रहे हो ?"

उत्तर मिला—"जी जनाब !"

"क्यों ?"

"जीविका के लिये।"

"कहाँ जाओगे ?"

"अपराध क्षमा करेंगे जनाब ! इस प्रश्न का उत्तर न दे सकूँगा। और जो कुछ आप पूछिएगा, बता दूँगा।"

"यह वृद्ध मल्लाह कौन है ?"

"मेरे पिता का पुराना सेवक है।"

मुसलमान सज्जन ने वस्त्र में से एक थैली निकालकर कुछ सिक्के असीम को दिए और कहा—"यह अपने नौकर को दे दो।"

असीम ने देखा, सिक्के सोने के थे। उन्होंने कहा—"ये तो अशर्फियाँ हैं।"

मुसलमान सज्जन ने कहा—"तो क्या हुआ ?"

"मैंने समझा आपने भूल से रुपए के बदले मोहरें दी हैं।"

"नहीं; जानकर ही दी हैं।"

भूपेंद्र ने बहुत कष्ट से वृद्ध मल्लाह के आलिंगन से मुक्त हो रेती पार की। किनारे राजपथ पर एक मुसलमान अश्वारोही निश्चल पाषाण-प्रतिमा की भाँति खड़ा था। मुसलमान सज्जन ने उससे पूछा—"तुम क्या

२

अहदी हो दोस्त ?" अश्वारोही ने कंठस्वर सुन घोड़े से नीचे कूद-कर अभिवादन किया। मुसलमान सज्जन ने फिर पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है ?" "मैं लुतफुल्ला हूँ जनाब। आप लौटे नहीं इसलिये चारों ओर सवार छूटे हैं।"

"लालबाग कितनी दूर है ?"

"पाव कोस।"

"मैं तुम्हारा घोड़ा ले जा रहा हूँ। तुम इन दोनों हिंदुओं को ग़ुसलखाने में ले आओ।"

———

चौथा परिच्छेद

गृह-त्याग

भारतीय इतिहास में हिजरी सन् ११२५ चिरस्मरणीय है। इसी वर्ष औरंगजेब के पुत्र शाह आलम बहादुर की मृत्यु हुई और मुगल-गौरव-सूर्य का अवसान हुआ। इसी समय औरंगजेब के वंशधरों में जो विवाद आरंभ हुआ उसके फलस्वरूप पचास वर्षों के भीतर दिल्ली के बादशाह दाक्षिणात्य मराठों के भिक्षान्न-भोगी हो गए। शाहजहाँ का विशाल साम्राज्य नष्ट हो गया। शाह आलम बादशाह ने वृद्धावस्था में सिंहासन-लाभ किया था और उनके अभिषेक के समय से ही उनके लड़कों में विवाद का सूत्रपात हो गया था।

औरंगजेब जिस समय जीवित था उसी समय शाह आलम के मँझले बेटे अजीमुश्शान अपने पितामह के बड़े प्रियपात्र हो चुके थे। वे बहुत दिनों तक बंगाल के सूबेदार रहे। औरंगजेब की मृत्यु से कुछ दिन पूर्व उन्हें अपने द्वितीय पुत्र फर्रुखसियर को प्रतिनिधि के रूप में छोड़कर दिल्ली जाने की आज्ञा हुई। फर्रुखसियर कुछ दिन ढाका में रहकर ईस्वी सन् १७१२ अर्थात् ११२४ हिजरी में मुर्शिदाबाद आए।

औरंगजेब के विश्वासपात्र, महाराष्ट्र की राजनीति में लब्धप्रतिष्ठ जफरकुली खाँ 'मुर्शिद कुली खाँ' की उपाधि पाकर सूबा बंगाल-बिहार-उड़ीसा के राजस्व बिभाग के दीवान नियुक्त हुए। अजीमुश्शान उस

समय बंगाल के सूबेदार थे। उद्धत-प्रकृति अजीमुश्शान के साथ दीवान मुर्शिदकुली का सद्भाव नहीं था। थोड़े समय बाद ही अजीमुश्शान ने मुर्शिद कुली की हत्या करने की चेष्टा की। बादशाह की अनुमति से दीवान ने ढाका या जहाँगीरनगर से राजस्व-विभाग को मखसूसाबाद में स्थानांतरित किया। औरंगजेब के राज्यकाल में ही मखसूसाबाद दीवान के नामानुसार 'मुर्शिदाबाद' नाम धारण कर बंगाल का एक प्रधान नगर हो गया था। तभी से ढाका श्रीहीन होने लगा और थोड़े ही दिनों बाद राजधानी भी वहाँ से मुर्शिदाबाद स्थानांतरित कर दी गई।

ढाका से बादशाही राजस्व-विभाग मुर्शिदाबाद स्थानांतरित होने पर बहुतेरे उच्च पदस्थ हिंदू कर्मचारियों को पूर्व बंग छोड़ना पड़ा था। वे परदेश में आकर भी धर्मांध मुर्शिदकुली के नगर में नहीं बसे।

मुर्शिदकुली बादशाह औरंगजेब के प्रिय शिष्य थे। मरण काल पर्यंत हिंदू धर्म के प्रति उनका विद्वेष बना रहा। इसीलिये कानूनगो हरनारायण राय आदि कर्मचारियों ने गंगा के पश्चिमी किनारे पर एक नवीन ग्राम स्थापित करके उसी में वास किया। इस गाँव का नाम है डाहापाड़ा अर्थात् ढाकापाड़ा। मुगल साम्राज्य के अतीत गौरव के चिह्नस्वरूप डाहापाड़ा गाँव अब भी मुर्शिदाबाद के उस पार वर्तमान है।

सन् १७१२ ई० में डाहापाड़ा एक प्रधान गाँव था। कानूनगो हरनारायण राय उस समय उसके अधिकारी थे। उनके पिता हरिनारायण राय ने बहुत दिनों तक राजस्व-विभाग का संचालन करके यथेष्ट द्रव्य और यश अर्जित किया था। उनकी मृत्यु होने पर औरंगजेब के आदेशानुसार उनके ज्येष्ठ पुत्र हरनारायण कानूनगो नियुक्त किए गए।

जिस दिन वह पथभ्रांत मुसलमान सज्जन डाहापाड़ा में आए थे उसी दिन आधी रात गए हरनारायण कचहरी का कार्य समाप्त कर घर लौट रहे थे। उनका बजड़ा डाहापाड़ा के घाट किनारे आ लगा। घाट पर चार-पाँच मशालची प्रतीक्षा में थे। बजड़ा देख उन सबने मशालें जलाईं। मशाल के प्रकाश से घाट पर दिन की तरह उजेला हो गया। हरकारों और आसा-सोटा-बरदारों से घिरे सूबा बंगाल के कानूनगो हरनारायण राय बजड़े पर से उतरे। बगल के वृक्ष के नीचे से एक वृद्ध आकर उनके पैरों पर लेट गया। हरकारे और आसाबरदार उसे दूर हटा रहे थे लेकिन हरनारायण ने उन्हें मना कर दिया और वृद्ध से पूछा—"क्यों रे केना, क्या हुआ ?"

वृद्ध ने रोते रोते कहा—"हुजूर ! सर्वनाश हो गया ! छोटे राय और लल्लू बाबू गाँव छोड़कर चले गए'।'

"कहाँ गए ?"

"सो तो कह नहीं सकता हुजूर ! लेकिन अब वे लोग लौटेंगे नहीं।"

"तूने कैसे जाना कि नहीं लौटेंगे ?"

"मुझसे कह गए हैं।"

"कुछ बता सकता है, किधर गए ?"

"डोंगी पर मैं उन्हें लालबाग तक पहुँचा आया हूँ।"

"लालबाग ?"

"जी हुजूर।"

"साथ में और कौन था ?"

"एक मुसलमान थे।"

"मुसलमान कहाँ से आया ?"

"सो नहीं कह सकता हुजूर।"

"देखने में वह कैसा था?"

"गोरे रंग का, चेहरा पतला था; अँधेरे में मुँह ठीक नहीं दिखाई पड़ा। पीठ पर बंदूक और धनुष था; कमर में तलवार थी।"

"तू रोता क्यों है?"

"हुजूर लल्लूबाबू......"

"डर मत। तू घर जा। मैं कल ही उन लोगों को लौटा लाऊँगा।"

वृद्ध मल्लाह आँखें पोंछता-पोंछता चला गया। अनुचरों से घिरे हरनारायण राय घर की ओर बढ़े। उनकी कोठी के निचले खंड की बैठक में एक प्रौढ़ ब्राह्मण अकेले एकाग्र मन से शतरंज खेल रहे थे। सूबा बंगाल के प्रतापी कानूनगो के लौट आने से घर के नौकर चाकर अमले अत्यंत व्यस्त हो उठे थे लेकिन वह ब्राह्मण नहीं हिले। बैठक के दरवाजे पर रुककर हरनारायण ने उनसे पूछा—"क्यों भट्टाचार्य, अभी घर नहीं गए?"

ब्राह्मण ने बिना सिर ऊपर उठाए कहा—"जाओ, जाओ, देर न करो; कपड़े उतारकर आ जाओ। इतनी देर में तो तीन बाजी खतम हो जाती!"

"कुछ पता है, रात कितनी गई?"

"यही, डेढ़ घंटे।"

"यह सुनो, आधी रात की नौबत बजी।"

"आधी रात! इतनी देर से क्यों लौटे?"

"आज जाकर लेखा-ड्योढ़ा बराबर हुआ है।

"झाड़ू मारूँ तुम्हारे लेखे-ड्योढ़े के मुँह में। सारा दिन चौपट हो गया।"

"तुम भागना मत। सुनता हूँ, असीम और भूपेन चले गए। सोच बिचारकर कोई न कोई व्यवस्था करनी होगी।"

हरनारायण भीतर प्रविष्ट हुए। कानूनगो की कोठी के दोतल्ले पर विस्तृत बारादरी में बहुत-सी स्त्रियों से घिरी हुई राय-गृहिणी दरबार कर रही थीं। उस दरबार में कुल-महिलाओं और दासियों के बीच बैठी गृहिणी की मसनद के पास केवल एक पुरुष बैठा था। गृहिणी उससे हँस-हँसकर बातें कर रही थीं। मालिक के आने की आहट मिलते ही उनका प्रसन्न मुख सहसा गंभीर हो गया। बारादरी के भीतर हरनारायण के प्रवेश करते ही दासियाँ घूँघट निकालकर चली गई। नवीन ने भूमिष्ठ हो प्रणाम किया; गृहिणी का मुँह थोड़ा विकृत हो गया। हरनारायण ने जैसे इसे देखकर भी नहीं देखा। उन्होंने हँसकर कहा—"सुना है असीम और भूपेन शायद नाराज होकर चले गए हैं।"

गृहिणी की प्रशस्त नाक का बड़ा-सा नथ प्रबल वेग से डोल उठा। दुबले-पतले हरनारायण ने समझा, देखने में भूल हुई होगी। उन्होंने दुबारा कहा—"छोटे मालिक का माथा जान पड़ता है कुछ खराब हो गया है।"

इस बार गृहिणी के सारे शरीर में आग लग गई। उन्होंने दूसरी ओर मुँह फेरकर गंभीर स्वर से कहा—"और कुछ दिनों तक दूध पिला-पिलाकर साँप को पालो।"

हरनारायण की अब हिम्मत बढ़ी। उन्होंने गृहिणी की मसनद की ओर थोड़ा खिसककर पूछा—"जाते समय क्या कुछ कह गया है?"

गृहिणी का चेहरा सामने नहीं हुआ; उन्होंने उत्तर भी नहीं दिया। उनकी प्रिय प्रौढ़ा दासी रतनमणि ने घूँघट थोड़ा आगे खींचकर द्वार के भीतर से कहा—"मालिक, मुझे ईश्वरगंज भेजवा दें। मैं रोज-रोज मालकिन का अपमान न सह सकूँगी।"

हरनारायण ने उससे पूछा—"क्या हुआ आज रतन ?"

रतन ने मुँह घुमाकर कहा—"ईश्वरगंज के बाबू चोर बने हैं।"

इस बार गृहिणी का विशाल शरीर हिला, सारे शरीर के आभूषण झंकृत हो उठे। उनकी लाल-लाल आँखों की क्रूर दृष्टि के उत्ताप से जैसे हरनारायण झुलस गए। गृहिणी ने गरजकर कहा—"और ईश्वरगंज की चौदह पीढ़ी की खबर नहीं सुनाई ?"

औरंगजेब के शिष्य कूटनीति-विशारद हरनारायण समझ गए कि रण-नीति में कुशल गृहिणी दुर्भेद्य व्यूह रचकर बैठी हैं; इसलिये इस समय भाई का पक्ष लेने से पराजय निश्चित है। तब उन्होंने दूरदर्शी सेनापति की तरह संधि का प्रबंध करके कहा—"वही तो, भाई समझकर इतने दिन कुछ नहीं कहा, लेकिन उसका अत्याचार धीरे धीरे असह्य हो गया।"

अवसर देखकर गृहिणी हुंकार उठीं। उनकी प्रिय दासी रतनमणि ने अश्रुहीन आँखों को वस्त्र से पोंछते-पोंछते लाल बना डाला। इस बीच हरनारायण को भीतर भागने का उपक्रम करते देख गृहिणी बोलीं—"चले कहाँ, गुणवान भाई के गुणों की गाथा तो सुनते जाओ।"

"और क्या हुआ ?"

"और क्या हुआ ! तुम्हारे प्राणप्यारे भाई ने हरिनारायण की रूप-वती, विदुषी, सती-लक्ष्मी कन्या दुर्गादेवी के साथ......"

"हरे राम ! यह क्या कहती हो ?"

"क्या कहती हूँ ! नवीन के मुँह से सुनो। आज रात में किरी-टेश्वरी के रास्ते, सड़क किनारे, देवी के बाड़े में, पेड़ तले अँधेरे में भट्टा-चार्य की कन्या प्राणेश्वर के गले में बाहें डाल रो रही थी। नवीन उन्हें अपनी आँखों देख आया है और कानों से सुन आया है। दुर्गा का

प्राणेश्वर कौन है, जानते हो ? तुम्हारे सहोदर लक्ष्मण !"

इसी समय नापित-कुल-तिलक नवीन बोले—"दुहाई हुजूर की, जान बख्शिए। आधी रात को देवी के बाड़े से होकर जा रहा था। किरीटेश्वरी के राह-किनारे छोटे हुजूर और दुर्गादेवी···"

हरनारायण शेषांश के लिये रुके नहीं; मैदान छोड़ भाग खड़े हुए।

———

पाँचवाँ परिच्छेद

अनुसंधान

शीघ्र कपड़े बदलकर हरनारायण दूसरे रास्ते से नीचे उतर आए। विद्यालंकार उस समय शतरंज के मोहरे बिछाकर उनका आसरा देख रहे थे। उन्हें देखकर हरनारायण ने कहा—"भट्टाचार्य, आज यह हाथी-दाँत का शतरंज अलग करो; संसार के शतरंज में दो-एक बड़ी चालें चलनी हैं, जरा सोच-विचारकर राय तो दो।"

विद्यालंकार सिर हिलाकर बोले—"देखो, इस हाथीदाँत के शतरंज की तरह और कोई चीज नहीं। इसका मर्म समझकर भी तुम नहीं समझे। अनित्य संसार की चिंता में तुमने दिन बिता दिया। कहो तो, इस संसार में तुम्हारा है कौन ?"

"व्यर्थ की बातें रहने दो। इस संसार में जबतक हूँ, नित्य हो या अनित्य, इस संसार की चिंता करनी ही पड़ेगी। देखो विद्यालंकार, आज एक ही चाल में अपने दो सगे शत्रुओं को घर से निकाल बाहर किया है।"

"यह काम क्या अच्छा हुआ ? तुम्हारी माँ के पेट से पैदा न होने पर भी असीम और भूपेन तुम्हारे पिता के ही लड़के हैं। तुम निःसंतान ठहरे। बाल-बच्चे होने की आशा भी कम ही है। हरनारायण, दिन बीत

चुके हैं, हिसाब-किताब का समय सिर पर है; दोनों अनाथ बच्चों को भला तुमने क्यों निकाल दिया ?"

"अरे रे, रुको भी ! तुम तो अच्छा धर्मशास्त्र खोल बैठे। पहले बात तो सुनो।"

"कैसे भगाया ?"

"बाबूजी के समय के सोने-चाँदी के जो बरतन थे उन्हें धीरे धीरे ईश्वरगंज खिसका रहा था। उनका पाँच सौ भर का एक सोने का पानदान था। भंडारी को उसे ईश्वरगंज भेजने के लिये आज सवेरे कह गया था। यहाँ से जो कुछ ईश्वरगंज जाता था उसकी खबर मेरे कहने के अनुसार भंडारी चुपके से असीम को दे देता था। आज गृहिणी की कृपा से बाकी काम पूरा हो गया; असीम भूपेन के साथ घर छोड़कर चला गया।"

"ओह ! भूप एक तो ठहरा अंधा, दूसरे परदेश कभी गया नहीं ! उसे पैत्रिक जगह-जमीन में हिस्सा तो दोगे न ?"

"अच्छी रही। हिस्सा ही यदि देना होता तो तुमसे राय क्यों लेता ? देखो, बादशाह आलमगीर के मरने से जगह-जमीन की रक्षा बड़ी कठिन हो गई है। बहुत कुछ ऊँचा-नीचा सोचकर मैंने उनका हिस्सा भी अपने नाम लिखा लिया है।"

"यह कब किया ?"

"लगभग साल भर पहले।"

"असीम ने लिख दिया ?"

"उसे समझा दिया था कि जैसा देश-काल है उसमें नाबालिगों के लिये जगह-जमीन को बचाए रखना असंभव है और अगर पूरी जमींदारी मेरे नाम रहेगी तो बादशाह का कानूनगो होने के कारण संभवतः कोई अनिष्ट न कर पाएगा। बादशाह की आयु सत्तर वर्ष से

भी अधिक हो गई है। तख्त मिलने पर शीघ्र ही फिर गज-ग्राह की लड़ाई छिड़ेगी। देश में शांति होने पर तुम लोगों का हिस्सा फिर लौटा दूँगा। इसपर असीम और भूपेन ने रोकनपुर परगने का पाँच आना छः गंडा एक कड़ा एक क्रांति हिस्सा मेरे नाम लिख दिया।"

"हरू, तुम मेरे बाल्यबंधु हो। तुमसे बहुत दिनों से एक बात कहता आ रहा हूँ किंतु तुमने उसपर कान नहीं दिया। देखो, एक दिन था जब जहाँगीरनगर के आधे आदमी तुम्हारे पिता का अन्न खाकर जीते थे। रोकनपुर परगने को एक राजा की रियासत समझो। उनके जैसी सोने-चाँदी की सामग्री बहुतेरे अमीरों के यहाँ भी नहीं है। तुम उनके बड़े लड़के हो, तुमने उनका पद भी पाया है, तुम हिंदुस्तान के एक अमीर और बादशाह के मनसबदार हो, बंगाल बिहार उड़ीसा के जमींदार तुम्हारे दर्शनों के लिये लालायित रहते हैं। तुम्हें कमी किस बात की है ? तुम किसके लिये, किस अभाव के लिये असत्पथ ग्रहण कर रहे हो ? तुम्हारे न रहने पर असीम और भूपेन ही तुम्हारी इस विशाल धन-संपत्ति के अधिकारी होंगे, देश में धर्म और शास्त्र की मर्यादा रहने तक कोई भी उन्हें अपने अधिकार से वंचित नहीं कर सकेगा। तुम्हें अब जीना ही कितने दिन है ? भला कहो तो, इस दो दिन के जीवन के लिये तुमने छल और कपट करके पैत्रिक संपत्ति से उन्हें वंचित क्यों किया ? इस संपत्ति का क्या करोगे तुम ?"

"अरे ठहरो महाराज ! धर्मशास्त्र जरा बंद करो। ब्राह्मण को संपत्ति-बुद्धि न कभी हुई और न होगी। देखो विद्यालंकार, विद्या तुम्हारा अलंकार हो सकती है लेकिन बुद्धि जो है वह बहुत सूक्ष्म है, बल्कि कहना चाहिए कि लुप्त हो गई है। इस संसार में कौन किसका है ? असल में केवल मैं अपना हूँ। माता-पिता, कन्या-पुत्र सब मिथ्या हैं, नित्य केवल मैं हूँ। मेरा ऐहिक, पारलौकिक, कायिक और मानसिक

सुख ही जगत् का सार है, एकमात्र काम्य वस्तु है। देखो भट्टाचार्य ! रोकनपुर परगने के पाँच आने छः गंडे एक कड़े एक क्रांति का मालिक होने में सुख नहीं है, सोलह आने का मालिक होना चाहिए। दस फकीर हों तो एक ही कंबल में सब सरलता से जगह बना लेते हैं, लेकिन छोटे से छोटे राज्य में भी एक से अधिक राजा के लिये जगह नहीं होती। पाँच सौ तोले सोने के पानदान में मेरा एक सौ छाछठ तोला है तो अवश्य, लेकिन इतने ही से जी खोलकर पानदान का व्यवहार करते नहीं बनता। इसीलिये छल से, कौशल से, पारिवारिक शत्रु का अधिकार नष्ट किया है।"

"तब फिर मुझसे क्यों कुछ पूछते हो ?"

"उसका एक कारण है; बड़ा टेढ़ा समय आ गया है। बादशाह की मृत्यु में अधिक विलंब नहीं है। जैसी अवस्था देख रहा हूँ उसमें शाहजादा अजीमुश्शान के ही बादशाह होने की संभावना अधिक है। कागजपत्रों पर नवाब के हस्ताक्षर-मोहर तो करा लिया है लेकिन मुर्शिद-कुली के साथ अजीमुश्शान का जैसा प्रेम है वह तो तुमसे छिपा नहीं है। अजीमुश्शान के बादशाह होते ही मुर्शिदकुली की नवाबी समाप्त हो जायगी। वृद्ध वजीर असद खाँ अभी जीवित है। उस समय क्या करूँगा ?"

"लोभ में पाप होता है और पाप में मृत्यु; उस समय मरोगे।"

"उसके लिये तो भट्टाचार्य की सलाह की आवश्यकता नहीं है; इस समय क्या करूँ सो बताओ।"

"और एक बात नहीं सोचते। गंगा के उस पार लालबाग में अजीमुश्शान का बेटा बैठा हुआ है। आज अगर बादशाह की मृत्यु होती है तो कल अजीमुश्शान के बादशाह होने पर असद खाँ राज-प्रतिनिधि होगा। मुहम्मद करीम मयूरसिंहासन के बाईं ओर बैठेगा

और फर्रुखसियर तुम्हारे जान-माल का विधाता होगा। आज अगर असीम फर्रुखसियर के दरबार में उपस्थित हो जाय तो कल तुम्हें राह का भिखारी होना पड़ेगा।"

"भट्टाचार्य! यह बात तो बिलकुल नहीं सूझी!"

"तुरंत जाओ, जैसे भी हो उन सबको लौटा लाओ।

हरनारायण ने पुकारा—"चोपदार!"

चोपदार के आने पर उन्होंने आज्ञा दी—"बड़ा बजड़ा दस मिनट में तैयार करने के लिये कह दे।"

रात के तीसरे पहर हरनारायण राय अपने किए का प्रायश्चित्त करने लालबाग रवाना हुए।

———

छठा परिच्छेद

राजदर्शन

रात में तीसरे पहर एक दुबला-पतला हिंदू लालबाग के चारों ओर वाले आम के बगीचे की छावनी में टहल रहा था। उस समय अधिकांश लोग सो गए थे। जो दो-एक जागते थे उनसे वह हिंदू कह रहा था—"शाहजादा के साथ मेरा साक्षात् करा सकते हो?"

किसी ने उसकी बात पर कान नहीं दिया। अंततः एक आदमी ने दयार्द्र होकर कहा—"देखो बाबू, रात के तीसरे पहर शाहजादा से साक्षात् करने में थैली भर अशर्फी खरचनी होगी, दे सकोगे?"

उस हिंदू ने बिना आश्चर्य प्रकट किए कहा—"दे सकूँगा या नहीं, चेष्टा करके देखूँगा।"

"नगद एक अशरफी अगर खरच करोगे तो तुम्हें लुत्फुल्ला खाँ के तंबू में ले चलूँगा। वहाँ पूछताछ कर सकते हो। लेकिन उसका मूल्य कम से कम पाँच अशर्फी होगा?"

"पाँच अशरफी देकर तो पूछताछ करूँगा। फिर?"

"दोस्त! तुम्हारे भाग्य में देखता हूँ शाहजादा से आज साक्षात् नहीं बदा है। तुम एक काम करो। एक अशरफी खरच डालो। फिर हाथ खुल जायगा।"

आगंतुक ने अधिक बातचीत न करके उस सिपाही को एक अशरफी दे दी। सिपाही ने उसे दीपक के प्रकाश में भली भाँति देखकर पूछा—"दोस्त, तुम्हारी अशरफी जाली तो नहीं है ?"

हिंदू ने हँसकर कहा—"परख तो लिया तुमने, क्या समझे ?'

"कुछ अधिक नहीं समझ में आया क्योंकि शाहजादा फर्रुखसियर को भी सूचना दी जा सकती है। हम लोगों के लश्कर में बख्शी लोग ही खाने नहीं पाते फिर हम लोग तो अहदी ठहरे। शाहजादा अजीमुश्शान सचमुच शाहजादे थे। उनके राज्य में दो चार असली अशर्फियाँ दिखाई पड़ जाती थीं।"

"ठीक है। अब क्या किया जाय ?"

"देखो, इस सामनेवाले आम के पेड़ के नीचे लुत्फुल्ला खाँ का खेमा है। सीधे वहीं चले जाओ, लंबी कोरनिश करके पाँच अशर्फी नजर पेश करो और कहो कि जैसे भी हो शाहजादे से मुलाकात होनी चाहिए।"

"उसके बाद ?"

"उसके बाद फिर क्या ? लौटती बार मुझे भूलना मत।"

आगंतुक सिपाही के बताए खेमे की ओर अग्रसर हुआ। दूर से ही उसे इसराज की ध्वनि सुनाई पड़ी। पास पहुँचकर उसने देखा कि एक दीर्घाकार मनुष्य इसराज बजाने की चेष्टा कर रहा है। आगंतुक ने बाहर खड़े-खड़े अभिवादन किया और पाँच मोहरें इसराज के सामने रख दीं। सोने की मधुर झंकार सुन लुत्फुल्ला की आँखें चमक उठीं। खाँ साहब ने इसराज हटाकर आगंतुक की अभ्यर्थना की। फिर कहा—"आइए, आइए।"

हिंदू ने बहुत संकुचित होकर कहा—"ऐसा कैसे हो सकता है। मैं क्या ऐसी गुस्ताखी करूँगा कि आपके सामने बैठूँ ? उसके पहले

ही अपना सर अपने हाथों कलम कर दूँगा। मैं बिलकुल लाचार होकर आपकी शरण में आया हूँ।"

"कहिए, क्या करना होगा ?"

"जिस तरह भी हो, एक बार शाहजादा से मुलाकात करा देनी होगी।"

"काम तो बहुत कठिन है। अहमदबेग को कम से कम दस अशरफी देनी होगी।"

आगंतुक ने दश अशरफियाँ निकालकर इसराज के पास धर दीं। लुत्फुल्ला ने उन्हें कपड़ों के भीतर छिपाकर कहा—"अफरसियर खाँ भी क्या दस अशरफी से कम में छोड़ेंगे !"

आगंतुक इस बार किंचित् मुसकराया। उसने पूछा—"कुल कितना खरच होगा खाँ साहब ?"

लुत्फुल्ला ने बहुत देर तक इधर उधर सिर हिलाकर निश्चित किया कि पचास अशर्फी से ज्यादा माँगने पर शिकार हाथ से निकल जा सकता है इसलिये दस तो मिल ही गईं, चालीस और माँगनी चाहिए। प्रकाश्य रूप से उसने कहा—"मुझे आपने जो दिया है उसके सिवा और चालीस मोहरें लगेंगी।"

आगंतुक ने कहा—"स्वीकार है, लेकिन पहले आधे से ज्यादा नहीं दूँगा।"

"बहुत ठीक। आप यहीं ठहरें, मैं शाहजादे से मुलाकात की व्यवस्था करने चला।"

आगंतुक से और दस मोहरें लेकर लुत्फुल्ला खाँ ने प्रसन्नचित्त लालबाग़ में प्रवेश किया। आगंतुक तंबू के भीतर जाकर एक गलीचे पर बैठ गया।

उस समय रात्रि का तीसरा पहर प्रायः बीत चला था। लालबाग के भीतर महल के दीपक बुझ गए थे। केवल गंगा के किनारे का

रंगमहल प्रकाश से जगमगा रहा था। सुरीली गायिका के कलकंठ से निकली मीठी संगीत-ध्वनि ने जैसे दिगंत को मुग्ध कर लिया था। लुत्फुल्ला खाँ ने कमरे में प्रवेश कर शाहजादा का अभिवादन किया और अफरसियर खाँ के पास जाकर बैठ गया। अफरसियर खाँ को बहुत बुरा लगा और अपनी विरक्ति सूचित करने के लिये उसने लुत्फुल्ला खाँ की ओर पीठ फिरा लिया। लुत्फुल्ला खाँ ने तब एक अशरफी निकाली और उसे अरफसियर खाँ की गोद में फेंक दिया। मजलिस भर में अहमदबेग और अफरसियर के सिवा और किसी की निगाह अशरफी पर नहीं पड़ी। अफरसियर अशरफी पाकर थोड़ा नरम पड़ा। तब सुयोग समझकर लुत्फुल्ला ने धीरे से उसके कान में कहा—"जनाब एक बार बाहर कष्ट करेंगे?"

अफरसियर खाँ उठा। लुत्फुल्ला भी उसके पीछे पीछे आया और एक एक करके और नौ अशरफियाँ अफरसियर के हाथ पर गिनकर बोला—"जनाब आली! ग़ुलाम की गुस्ताखी माफ हो, ज्यादा जरूरत न होती तो इतनी तकलीफ न देता। एक हिंदू शाहजादा के साथ मुलाकात करना चाहता है।"

"कितना देने के लिये कहा है?"

"दस अशरफी।"

"उससे नहीं होगा, अहमद ने अशरफी देख ली है।"

"उसे भी दस अशरफी दिलाऊँगा।"

"तुम बाहर ठहरो। मैं कोशिश करके देखूँ।"

अफरसियर खाँ कमरे में लौट गया और अहमदबेग को साथ लेकर वापस आ गया। उसके साथ ही एक और व्यक्ति भी मजलिस से उठकर बाहर आया किंतु उनमें से कोई उसे देख नहीं पाया।

रात्रि का तीसरा पहर भी बीत गया। आम के बगीचे में बहुत से उल्लू बोल उठे। अहमदबेग के रोएँ खड़े हो गए। अफरसियर खाँ ने हँसकर कहा—"कहिए खाँ साहब, डर गए क्या?"

खाँ साहब ने जमीन पर थूककर कहा—"ये चिड़ियाँ मेरी दुश्मन हैं। खैर, हटाओ इसे; और क्या कह रहे थे?"

"एक काफिर शाहजादा से मुलाकात करना चाहता है। नगद दस अशरफी नजर करेगा।"

अभ्यासवश अहमद ने हाथ फैलाकर कहा—"कहाँ है?"

इसपर अफरसियर खाँ ने लुत्फुल्ला खाँ को बुलाया और उससे और दस अशरफी लेकर अहमदबेग को दिया। अहमदबेग ने प्रसन्न होकर कहा—"अपने काफिर को बुला लाओ, मैं जनाब आली को राजी कर रहा हूँ।"

लुत्फुल्ला खाँ बगीचे के बाहर चला गया और बाकी दोनों आदमी फिर रंगमहल में प्रविष्ट हुए। अंधकार में छिपकर जो आदमी इन लोगों की बातचीत सुन रहा था उसने बाहर आकर मशाल जलाई और उसे एक हरकारे को देकर घाट पर खड़े रहने की आज्ञा दी और उसे समझा दिया कि अगर कोई पूछे तो बता देना कि शाहजादा की आज्ञा से खड़ा हूँ।

वह आदमी जिस समय रंगमहल के भीतर गया उस समय अहमदबेग के अनुरोध से फर्रुखसियर उस हिंदू से मुलाकात करने के लिये राजी हो चुके थे। इसी समय उस आदमी ने शाहजादा के कान में फुसफुसाकर कुछ कहा। उसे सुन शाहजादा ने अहमदबेग से कहा—"बहुत अच्छा! घाटपर चौकी लगाने के लिये कह दो। वहीं हिंदू से मुलाकात करूँगा।"

सातवाँ परिच्छेद

दिल्ली-यात्रा

रात बीत चली है। लालबाग में घाट के ऊपर हरकारा तब भी मशाल पकड़े खड़ा है। घाट के नीचे बेड़े की नावों पर पूरब के मल्लाह धीरे धीरे बातें कर रहे हैं। शाहजादा फर्रुखसियर चंदन की बड़ी सी चौकी पर बैठे हैं। सामने खड़ा एक ठिंगने कद का हिंदू उनके प्रश्नों का उत्तर दे रहा है। सहसा कोई मल्लाह किंचित् उच्च स्वर से बोल पड़ा। तुरंत हरकारे ने हाँक लगाई—"सुमसाम!" एक खवास जल्दी जल्दी नीचे उतर गया।

शाहजादा पूछ रहे थे—"तुम्हारा नाम क्या है?"

हिंदू ने कहा—"मेरा नाम है हरनारायण राय।"

"पेशा क्या है?"

"हम लोग पीढ़ियों से बादशाह के गुलाम हैं। स्वर्गीय बादशाह शाहजहाँ के राज्यकाल से ही हम लोग राजस्व विभाग में कार्य करते हैं।"

"तुम कौन सा काम करते हो?"

"मैं सूबा बंगाल का कानूनगो हूँ।"

इसी समय पाँच बजड़े आकर घाट पर लगे। जो खवास नीचे

गया हुआ था उसने एक बजड़े पर जाकर ऊँचे स्वर से पूछा—"सेठ मानिकचंद कहाँ हैं ?"

सेठ जी दूसरे बजड़े में थे। उन्होंने कहा—"मैं यहाँ हूँ। लंगर क्या नाव में ही बाँधूँ ?"

खवास उनके पास जाकर बोला—"चुपचाप रहो सेठ जी! यह आदमी कौन है, बतला सकते हो ?"

जो दुबला पतला हिंदू शाहजादा के साथ बातचीत कर रहा था उसे देखते ही मानिकचंद का मुँह सूख गया। उन्होंने कहा—"सर्वनाश! खाँ साहब, इसे नहीं पहचानते ?"

खवास ने विस्मित होकर कहा—"ना !"

"यह है मुर्शिदकुली का विश्वस्त अनुचर, दीवानी सरिश्ते का प्रधान कर्मचारी और मेरा प्रधान शत्रु हरनारायण राय !"

"देखो सेठ जी, रात के कारण पहले इस आदमी को पहचान नहीं पाया। यह एक दिन शाहजादा के दरबार में आया था। कुछ कह सकते हो, किस मतलब से आया है ?"

"इसे जरूर रुपयों की खबर मिली है।"

"तुम लोग रुपए पैसे की बात ही पहले सोचते हो, लेकिन इस मामूली बात के कारण कानूनगो हरनारायण राय जैसा पदाधिकारी इतनी रात को शाहजादा के साथ क्यों मुलाकात करेगा ? दीवान का पेशकार चाहता तो तुम्हीं को बुलवा लेता और तुम्हें मना कर देता तो तुम्हारा कोई चारा न चलता। यह आदमी जरूर किसी दूसरे मतलब से आया है।"

इसी समय गंगा में खड़ी एक नाव में से पूरब देश के एक मल्लाह ने हाँक लगाई—"इलाका शाहंशाही नावारा—छिप् तफात्।"[१]

१—राजकीय बजड़ों से सावधान ! नाव दूर रखो।—अनु०

अँधेरे में से एक और बजड़ा बहुत वेग से आ रहा था। उसमें से एक आदमी ने उत्तर दिया—"अमल शाहंशाही, रास्ता दो।"[१]

तुरंत बहुत से मल्लाह इकट्ठे हो गए और बजड़े के लिये रास्ता दे दिया। देखते देखते बजड़ा घाट किनारे आ लगा। खवास ने मानिकचंद से कहा—"तुम अँधेरे में छिपे रहो; मामला क्या है, मैं समझ आऊँ।"

बजड़ा किनारे लगाने पर उसने मल्लाह से पूछा—"बजड़ा कहाँ का है?"

मल्लाह ने कहा—"बिहार के सूबेदार का है। खास दरबार से रुक्का आया है।"

बजड़े से उठकर एक दीर्घाकार तूरानी ने कहा—"दीन दुनिया के मालिक, हिंदुस्तान के बादशाह शाह आलम बहादुर शाह की जय हो!"

खवास बोला—"कौन, रोशन खाँ?"

"हाँ जनाब। मिहरबान साहबजादा को अभी इत्तला देनी होगी।"

"इत्तला दे रहा हूँ। शाहजादा अभी तक सोए नहीं।"

"जान बची! एक महीने में लाहोर से आ रहा हूँ। शाहजादा का हुक्म है कि साहबजादे जहाँ कहीं हों, वहाँ रुक्का पहुँचा दिया जाय।"

"देखता हूँ, रुक्का बहुत जरूरी है।"

"बहुत सी बातें हैं, फिर बताऊँगा।"

खवास ने घाट के ऊपर जाकर एक चोबदार को पुकारा। चोबदार ने दस बारह हरकारों को घाट के दोनों ओर खड़ा कर दिया। तब खवास ने फर्रुखसियर को अभिवादन करके कहा—"जहाँपनाह

१—राजकीय अधिकार है, हमें जाने दो।—अनु०

लाहोर से शाही अहदी रोशन शाहंशाह का हुक्मनामा लेकर आया हुआ है।"

फर्रुखसियर ने इतना सुनते ही कहा—"हरनारायण, तुमसे बातें करके मैं बहुत खुश हूँ। तुम्हारी अगर कोई अर्जी हो तो फिर किसी समय सुनूँगा। रात अधिक बीत गई है और पिता जी के यहाँ से जरूरी खबर आई है। बाद में तुम जब भी आओगे, मुझसे मुलाकात हो जायगी।"

हरनारायण अब तक मीठी मीठी बातों से शाहजादा को प्रसन्न करते रहे, दोनों भाइयों की चर्चा करने का अवसर ही उन्हें नहीं मिला। शाहजादा की बात सुन दुःखी मन से वे बिदा हुए। लाहोर से जो अहदी पत्र ले आया था वह दूर खड़ा प्रतीक्षा कर रहा था। हरनारायण के दूर निकल जाने पर वह पास आया और अभिवादन करके खड़ा हो गया। खवास ने चाँदी की थाली में पत्र रखकर फर्रुख-सियर के सामने उपस्थित किया।

पत्र पढ़कर फर्रुखसियर का मुँह सूख गया। उन्होंने उखड़े गले से खवास से कहा—"अहमदबेग को बुला लाओ।"

अहमदबेग के आनेपर फर्रुखसियर ने कहा—"समाचार अशुभ है। बादशाह की हालत दिन पर दिन गिरती जा रही है। पिता जी ने मुझे तुरंत दिल्ली जाने के लिये लिखा है।"

अहमदबेग ने विस्मित होकर पूछा—"दिल्ली जाना होगा, अभी?"

चिट्ठी लानेवाले अहदी ने कहा—"जनाब, शाहजादा का हुक्म है कि आप तुरंत सारी फौज लेकर दिल्ली चले चलें।"

अहमद—"सारी फौज लेकर चलने में तो बहुत रुपए लगेंगे।"

फर्रुखसियर—"कितने रुपए लगेंगे?"

अहमद—"हिसाब लगाना मेरे लिये संभव नहीं है। बख्शी को बुलाऊँ क्या ?"

फर्रुखसियर—"बख्शी को बुलाने से क्या होगा। अंदाज से नहीं बता सकते ?"

अहमद—"शाहजादा ! इतनी ही विद्या होती तो अब तक सूबेदार हो गया होता। असद खाँ ने मेहरबानी करके बख्शी बनाने के लिये कहा था लेकिन विद्या की दौड़ देख जुलफिकार खाँ ने मार भगाया"।

खवास—"गुलाम की गुस्ताखी माफ हो जनाब ! पूरी सूबेदारी फौज को दिल्ली ले चलने में कुल मिलाकर करीब पचास लाख रुपयों की जरूरत पड़ेगी।"

फर्रुखसियर—"पूरी फौज ले जाने से कैसे काम चलेगा ?"

अहमद—"तब कितनी फौज ले जायँगे ?"

फर्रुखसियर—"आधी।"

अहमद—"तो पचीस लाख लगेंगे।"

फर्रुखसियर—"खजाने में कितने रुपए हैं ?"

खवास—"दो-तीन हजार से ज्यादा नहीं हैं। लेकिन जान पड़ता है सेठ मानिकचंद कुल रुपए ले आए हैं।"

फर्रुखसियर—"दस लाख ?"

खवास—"जनाब !"

फर्रुखसियर—"अहमदबेग ! अब उपाय क्या है ?"

अहमद—"चिंता किस बात की है जनाब ! जितने रुपए आए हैं उनसे इलाहाबाद तक पहुँच सकते हैं। वहाँ सैयद अब्दुल्ला खाँ हैं, छबीलेराम नागर हैं; इटावा में अली असगर खाँ हैं; और रास्ते में अगर रुपयों की जरूरत पड़ी तो पटने में हुसेन अली खाँ हैं।"

फरुखसियर—"अहमदबेग ! देखता हूँ अभी तुम्हारी अक्ल एकदम जाती नहीं रही। तुम कूच का हुक्म जारी करो; मैं तुरंत रवाना होऊँगा।"

रात बीतते ही लालबाग के चारों ओर फैले आम के बगीचे में दमामे बजने लगे। उसे सुनकर आसपास के गाँववाले गाँव छोड़-छोड़कर भागने लगे क्योंकि बादशाही समय में मुगल सेना जिस रास्ते से होकर जाती थी उसके चारों ओर एक कोस तक लोगों के लिये मान-मर्यादा की रक्षा करना असंभव हो जाता था। चारों ओर हजारों मशालें जल गईं और सैनिकों ने तंबू उतारकर बाँधना आरंभ किया। अहदी लोग बैलगाड़ी की खोज में निकले; गाड़ीवान मार खा-खाकर बैलों की खोज में चले। शाहजादा फरुखसियर ने रंगमहल में प्रवेश किया और नर्तकियों को बिदा करने के बाद असीम और उसके भाई से पूछा—"मैं अभी मुर्शिदाबाद से रवाना होऊँगा; तुम लोग कहाँ जाओगे?"

दोनों ने ही कहा—"शाहजादा की आज्ञा होगी तो हम लोग दिल्ली चलेंगे।"

"तब मेरे साथ चलो। मैं भी दिल्ली जाऊँगा। बहुत दूर तक साथ रहेगा; तुम लोगों सा गुणी साथी पाकर हँसते-गाते दिन कट जायगा।"

दूसरे दिन प्रातःकाल सूबा बंगाल के राजस्व-विभाग के दीवान मुर्शिदकुली खाँ ने नए नगर के प्रासाद की खिड़की में से देखा कि सूबेदारी फौज बादशाही नगाड़े बजाती हुई उत्तर की ओर जा रही है।

आठवाँ परिच्छेद

गंगा किनारे

जाड़े का आरंभ है। ओस की मोटी तह के कारण हरी घास बिलकुल सफेद हो गई है। अभी सूर्योदय नहीं हुआ है। ऊषाकाल के धुँधले आलोक में मुर्शिदाबाद के उस पार गंगा किनारे एक शुभ्रवसना श्यामांगी पूजा के लिये पुष्पचयन कर रही थी। बगीचे के नीचे क्षीण-तोया भागीरथी बह रही थीं। एक एक दो दो करके स्नानार्थी स्त्रियाँ गंगा किनारे आ रही थीं। श्यामांगी का ध्यान उधर नहीं था, वह एकाग्र मन से फूल चुनने में ही लगी थी। कीमती शाल ओढ़े एक मोटी ताजी स्त्री गंगा तट की ओर जा रही थी। पूर्वोक्त स्त्री को देखकर उसने पूछा—"कौन है?" पहलेवाली स्त्री ने प्रश्न करनेवाली की ओर घूमकर देखा। उसने फिर कहा—"ओ हो! विद्यालंकार महाराज की बेटी दुर्गा है! तुम रात में यहाँ क्या कर रही हो बेटा?" पहलेवाली स्त्री ने किंचित् मुसकुराकर कहा—"रात कहाँ है चाची? सूर्योदय होने में अब देर ही कितनी है! वह देखिए, आम के पेड़ की फुनगी पर धूप आ गई।"

"ओ हो, वही तो! मैं सोचती हूँ कि चारों पहर बीत गए। आह; कल रात तू सो नहीं पाई?"

"सो क्यों न सकूँगी, चाची ?"

"यही दुनिया भर की चिंता सोच के कारण !"

"चिंता काहे की ? सोच हो दुश्मन को !"

"तेरी यह उमर, यही खाने-पहनने का समय है। इसके बदले तू ही बता भगवान ने तुझे कैसा बना रखा है !"

"चाची, सबका भाग्य क्या एक सा रहता है ? उस जन्म में जो किया है उसका फल इस जन्म में पा रही हूँ। इसके लिये दुःख क्यों। भगवान् भाई साहब का संसार बनाए रखे, मेरे लिये इसी में सब कुछ है।"

"ठीक, ठीक ! सो तो है ही। लेकिन फिर भी हम लोगों का मन क्या मानता है बेटा ?" यह कहकर उस स्त्री ने अपने बहुमूल्य शाल के कोने से अपनी सूखी आँखें पोंछ डालीं। फिर तुरंत उसने कहा—"सुनती हो, दुर्गा ?"

"क्या, चाची ?"

"राय गृहिणी ने छोटे राय को क्या घर से निकाल दिया है ?"

"निकाला नहीं है। भैया बड़े मानी आदमी हैं; कोई बात सह नहीं सकते। गुस्सा होकर चले गए हैं।"

"तुम लोगों से तो भेंट करके गए हैं !"

"न क्यों करेंगे ! साँझ को भाई साहब से भेंट करने आए थे और सबसे कहकर गए हैं। भैया के साथ भूप भी गया है।"

"तुझे तो बड़ा क्लेश होता होगा ?"

"होगा नहीं, चाची ? याद है, तुम्हारी पालतू बिल्ली खो गई थी तो तुम तीन महीने तक गाँव भर में रोती घूमती रहीं। और भूप मेरा कौन है ? विधवा होकर जिस दिन लौटकर बाप के घर आई उसी दिन साल भर के बच्चे को मेरी गोद में डाल बड़ी चाची परलोक चली गईं।

मैंने उसे सत्रह बरस तक छाती पर लादकर इतना बड़ा किया है, चाची।"

दुर्गादेवी का गला भर आया। यह देख चाची ने कहा—"वही तो, सो तो है ही। आहा लड़का बेचारा! असीम खुद तो गया, लेकिन भूप को क्यों लेता गया?"

"मैं क्या जानूँ चाची, दूसरे के मन की बात मैं कैसे समझूँ?"

"असीम तो तेरा हमजोली है।"

"हाँ, हम लोग साथ के खेले हुए हैं।"

"उसके लिये मन में क्लेश नहीं होता?"

"बड़े भैया तो पुरुष ठहरे, अब काफी बड़े हो गए हैं। उनके लिये क्लेश क्यों होने लगा? बड़े भैया बराबर परदेश जाते थे पर केवल भूप का मुँह देखकर समस्त यंत्रणा, अत्याचार, लांछन सहते चलते थे। चाची, भूप मेरा अंधा जो ठहरा।"

दुर्गा देवी का कंठ अवरुद्ध हो गया। उसे देख चाची ने दुबारा अपने बहुमूल्य शाल का कोना आँखों की ओर उठाया और बात को खींचकर बाहर करने के उद्देश्य से कहा—"हाँ बेटी, कल रात नवीन से तेरी भेंट हुई थी?"

दुर्गा देवी ने पूछा—"कौन नवीन, चाची?"

"नवीन नाई।"

"हाँ भेंट हुई थी।"

'कहाँ?"

"देवी के बाड़े में।"

"कितनी रात गए?"

"यही, पहले पहर के अंत में।"

"इतनी रात को अकेली देवी के बाड़े में क्यों गई थी बेटी!"

प्रश्न सुनकर दुर्गा का माथा ठनका। मोहरों की थैली लेकर जिस समय उस जनशून्य स्थान में रात को वह अकेली असीम से भेंट करने गई थी उस समय लोकनिंदा और समाज की कोई बात उसके मन में नहीं उठी थी। भूपेंद्र को उसने पुत्र से भी अधिक स्नेह से पाला था। वह पैसे बिना दाने दाने के लिये कष्ट उठाएगा, इस दुश्चिंता ने उस सहृदया ब्राह्मण कन्या के मन से और सब चिंताओं को दूर कर दिया था। उसे चुप देख प्रौढ़ा स्त्री की दोनों आँखें हर्ष से चमक उठीं। अब दुर्गा देवी ने चाची के आकस्मिक स्नेह का कारण समझा और घबराकर कहा—"इसे फिर कहूँगी, चाची। बहुत गुप्त बात है; समय आने पर स्वयं जान जाओगी।"

प्रौढ़ा और कुछ न कहकर घाट के नीचे उतर गई। दुर्गा फूल चुनना समाप्त होने पर घर लौट आई।

विद्यालंकार महाशय पूजा पर बैठने की तैयारी कर रहे थे और फूल न पाने पर पतोहू से लड़की के देर करने का कारण पूछ रहे थे। इसी समय दुर्गा आकर पूजाघर के सामने खड़ी हो गई। लड़की का मुँह देख पिता ने विस्मित होकर पूछा—"क्या हुआ बेटा, चेहरा बादल जैसा गंभीर क्यों है?"

दुर्गा ने जल्दी जल्दी पूजा की सामग्री ठीक करते हुए कहा—"कुछ नहीं बाबू जी!"

हरिनारायण ने हँसकर कहा—"बेटी, मैं बुड्ढा जरूर हो गया हूँ, लेकिन फिर भी तुम्हारा पिता हूँ। तुम बुद्धिमती हो। तुम्हारी सहन-शक्ति असाधारण है। मैंने स्वयं तुम्हें शास्त्रों की शिक्षा दी है। लेकिन मैं जो तुम्हारा मुँह देखकर ही तुम्हारे हृदय के भाव पोथी की तरह पढ़ सकता हूँ बेटी! क्या हुआ है, बोलो?"

"पूजा के बाद बताऊँगी।"

"नहीं, अभी कहो। कोई विशेष बात न होती तो तुम्हारा जग-जननी की तरह सुंदर शांत मुँह एकबारगी गंभीर न हो जाता। फूल लाने में देर क्यों हुई ?"

"गंगा किनारे घोष के यहाँ की बड़ी चाची से भेंट हुई थी।"

"ठीक। क्यों देर लगी ?"

"वे बहुत सी बातें पूछने लगीं।"

"वह तो महापातकी है। उसके साथ इतनी कौन सी बात हुई बेटा ? बड़ी बहू उत्तरराढ़ कुल की कलंक है।"

"बाबू जी, मैंने जीवन में आपसे कोई बात छिपाई नहीं, आज भी नहीं छिपाऊँगी। जान पड़ता है, मन के आवेग में मैंने एक अनुचित काम कर डाला है।"

"उसी से तो कहता हूँ कि बताओ क्या हुआ।"

"बाबू जी, कल रात में बड़े भैया और भूप जन्म भर के लिये घर छोड़कर चले गए।"

"सो सुना है।"

"गाँव छोड़कर जाने से पहले वे लोग भाई साहब से भेंट करने आए थे। बड़े भैया ने भाई साहब से कहा कि मैं जरूरी काम से दिल्ली जा रहा हूँ, जल्दी ही लौटूँगा। भाई साहब ने भी ऐसा ही समझा; किंतु बाबू जी, आदमी का चेहरा देखकर मन का भाव समझ में आ जाता है। यह बात पुरुष लोग भूल जाते हैं। लेकिन हम लोग उस भाव को जितनी सरलता से जान जाती हैं पुरुष उतनी सरलता से नहीं जान पाता। बड़े भैया और भूपेन का चेहरा देख मैं समझ गई कि जीवन भर के लिये ये लोग गाँव-घर छोड़ रहे हैं और सहज में लौटेंगे नहीं।"

"बिलकुल ठीक है।"

"जिस दिन स्वामी का स्थान छोड़कर आपके साथ आई थी उसके दूसरे ही दिन बड़ी चाची भूपेंद्र को मेरी गोद में देकर स्वर्गलोक चली

गई। भगवान ने मुझे संतान नहीं दी लेकिन भूप को पाकर मैंने इस अभाव का अनुभव नहीं किया। सत्रह बरस तक उसे गोद में लेकर आदमी बनाया। बाबू जी, कल साँझ को जब उसकी दृष्टिहीन आँखों में विदा लेने का आभास पाया था तब मैं ज्ञानशून्य हो गई थी। दोनों भाइयों के पास रास्ते के लिये जो कुछ संवल था सो मुझे मालूम था। मैंने सोचा कि कल ही अन्नाभाव के कारण भूप को कष्ट होगा; बिना माँ के जिस बच्चे का इतने दिनों पुत्र से भी अधिक यत्न और स्नेह से पालन किया है वह भूख की यंत्रणा से तड़पेगा, इस चिंता ने मुझे क्षण भर के लिये पागल कर दिया। उसी समय, पति के घर से जो कुछ भी ले आई थी—समाज का शासन और लोक-लाज भूलकर—त्रिपुरा के महाराज ने उन्हें जो मोहरें दी थीं वह सब लेकर बाहर निकल गई। मैं जानती थी, उन्हें लौटते समय देवी का बाड़ा पार करना पड़ेगा। पिछवाड़ेवाले दरवाजे के बगल में ही देवी का मंदिर है, इस लिये पीछे के दरवाजे से ही बाहर होकर मैंने उन्हें जा पकड़ा। मोहरें देकर जब मैं लौट रही थी तब किसी ने पूछा—"तुम लोग क्या चाहते हो।" बड़े भैया ने कहा—"क्यों?" उसने मेरी ओर और बड़े भैया की ओर देखकर कहा—"कौन, छोटे हुजूर? अँधेरे में पहचान नहीं पाया, मैं हूँ नवीन।"

"नवीन नाई! बेटा, उसके साथ घोष-गृहिणी का क्या संबंध है, जानती हो?"

"जानती हूँ।"

"बेटा! जो कुछ तुमने किया, अच्छा ही किया। अपनी संपत्ति पोष्य पुत्र की मंगलकामना के लिये दान कर दी, अच्छा किया। लेकिन मुझसे पूछ लेतीं तो ठीक होता।"

"आप तो उस समय राय महाशय के यहाँ थे, बाबू जी!"

नवाँ परिच्छेद

विद्यालंकार का विचार

उसी रोज दो घड़ी दिन रहे अक्षय गांगुली के चंडीमंडप में एक बड़ी भारी सभा का अधिवेशन हो रहा था। गृहस्वामी अत्यंत कुलीन थे और उन्होंने बहुतेरी कुलीन कन्याओं का पाणि-पीड़न करके ईस्वी सन् की १८ वीं शताब्दी के ब्राह्मण-समाज में अपनी प्रतिष्ठा स्थापित की थी। गाँव में विद्यालंकार के बाद वे ही संपन्न गृहस्थ थे, लेकिन उनमें और हरिनारायण विद्यालंकार में एक विशेष अंतर था। किशोरावस्था से ही असंख्य कुलीनों की कुलरक्षा में प्रवृत्त होने के कारण गांगुली महाशय को सरस्वती की ओर कृपादृष्टि करने का अवसर नहीं मिला। आज उनके आमंत्रण पर उनके चंडीमंडप में चारों ओर ब्राह्मण-मंडली इकट्ठी हुई थी। अक्षय स्वयं उस सभा के सभापति थे।

वे कह रहे थे—"ए हो रामचंद्र, खाली पढ़ने लिखने से ही नहीं होता। कुल-मरजादा बहुत जरूरी है।"

इसपर वृद्ध हरिकेशव चट्टोपाध्याय ने कहा—"सो तो है ही, कुल-मरजादा बनाए रखना ही काफी है। विद्या हो या न हो, इसमें क्या आता जाता है। देखो, अगर हरिनारायण के पास विद्या न होकर कुल-मरजादा होती तो उसके घर में ऐसी बात कभी न होती।"

चंडीमंडप के एक किनारे कुशासन पर एक वृद्ध बैठे थे। वे बोल उठे—"हरिकेशव! अपने घर की बात भूलना मत।"

उनकी बात समाप्त होने के पहले ही चट्टोपाध्याय-कुल-पुंगव गरज उठे—"मेरे घर की बात! इतनी हिम्मत! तेरा जितना बड़ा मुँह नहीं, उतनी बड़ी बात!"

दोनों वृद्धों को मल्लयुद्ध के लिये तैयार देख गृहस्वामी ने दोनों के बीच में खड़े होकर कहा—"तुम दोनों आदमी सभी सामाजिक कामों में लड़-भिड़कर गड़बड़ मचाते हो। लेकिन आज सो नहीं होने का। ठहरो, शांत होओ।"

दोनों के बैठने पर गांगुली महाशय ने कहा—"देखो, इतना बड़ा पाप ब्राह्मण समाज के बीच गुप्त रखने से देश का, समाज का, सभी का सर्वनाश हो जायगा। इसलिये अभी इसका कोई उपाय करना जरूरी है।"

हरिकेशव बोले—"बात तो ठीक है अक्षय, लेकिन इससे होगा क्या? हिंदू राजा का राज्य नहीं, देश इस समय मुसलमानों का है। नवाब के प्रियपात्र हरनारायण स्वयं विद्यालंकार के सहायक हैं। हरिनारायण का कुछ कर सकोगे तुम?"

"धर्म है चट्टोपाध्याय महाशय, अभी धर्म जीवित है; अभी दिन-रात होता है; चंद्र-सूर्य उदय होते हैं। सो, पाप कभी छिपा नहीं रहता। यह बात राय-गृहणी के कानों तक पहुँच गई है। वे पुण्यात्मा हैं, देवता-ब्राह्मण की भक्त हैं। वे कभी भी पाप को आश्रय दे सकती हैं? उन्होंने कहलाया है कि जैसे भी हो इन दोनों महापापियों को दंड देना होगा।"

"राय-गृहिणी की तुलना में हरनारायण किसी गिनती के नहीं; लेकिन वे बिलकुल उनकी मुट्ठी में हों, ऐसी बात भी नहीं है। इसलिये

कानूनगो जबतक खुद नहीं कहते, मैं विद्यालंकार के मामले में नहीं पड़ता।"

"देखो हरिकेशव काका, जिस समय तुम्हारी जाति जाने को थी उस समय इन्हीं अक्षय गांगुली ने आड़े आकर तुम्हारे मुँह की लाली रखी थी। आज उस नेकी का बदला दो। हरिनारायण मेरा पुराना बैरी है। जीवन भर उसने मेरा अपमान किया। विद्या के अहंकार में वह कहता फिरता है कि कुलीन का बेटा होने से ही कोई कुलीन नहीं होता। कुलीन के सब लक्षण होने पर भी कुलोन का लड़का ब्राह्मण नहीं होता! वह मुझे अब्राह्मण कहता है; याने प्रकारांतर से जारज बताता है। कानूनगो हरनारायण के डर से इतने दिनों उसका कुछ बिगाड़ नहीं सका। आज विधाता प्रसन्न हुए हैं।"

"सचमुच? पहले ही यह बात कहनी थी।"

"तुम लोग कहने का मौका ही कहाँ देते हो?"

"नहीं नहीं, तुम कहो; तुम्हारी बातें बड़ी मीठी लगती हैं। बहुत दिनों से आशा लगाए हूँ कि हरिनारायण विद्यालंकार का मुँह चबाकर खा जाऊँ।"

"राय-गृहिणी ने कहला भेजा है—बात बहुत गोपनीय है—कि बंधुत्व के कारण मालिक यदि इस पाप को प्रश्रय देंगे तो मैं अपने पिता के यहाँ चली जाऊँगी।"

"अच्छा! तब तो मामला गंभीर है। क्या कहते हो रामचंद्र?"

राम०—"देखिए हरिकेशव काका, ब्राह्मण की जाति-पाँति की बात बहुत गंभीर होती है। गवाह-सबूत सब ठीक है न?"

हरि०—"रामू! तू अभी कल का छोकड़ा ठहरा, उस दिन तुझे पैदा होते देखा; आज तू मुझे झूठा कहता है!"

अक्षय—"गुस्सा क्यों होते हो, काका? रामचंद्र की बात तो

खतम करने दो। गवाही साखी सब मौजूद है रामचंद्र। इस नवीन नाई ने सब कुछ अपनी आँखों देखा है। कल पहर भर रात गए विद्यालंकार की विधवा कन्या देवी के बाड़े में अकेली असीम राय के पास गई थी। क्यों नाई ठाकुर ?"

नवीन—"महाराज जी, आपने जो कुछ कहा है वह भला झूठ हो सकता है !"

हरि०—"ओ अक्षय, हे रामचंद्र ! इसने तो बड़ी कठिनाई में डाल दिया। असीम राय, छोटे राय, कानूनगो हरनारायण राय के छोटे भाई ! दूसरा कोई होता तो अब तक उसका सिर काट लेता। यह तो बड़ी कठिन समस्या है।"

अक्षय—"काका जी, धर्म अभी बचा है ! ईश्वर ने सब व्यवस्था कर दी है। कल रात बड़े भाई से झगड़कर पापी असीम घर से भाग गया है। बल्कि कहना चाहिए कि हरनारायण ने उसे घर से निकाल दिया है।"

राम—"यह तो नई बात है, अक्षय ! भाई भाई का झगड़ा, विशेषतः जब बीच में उनकी स्त्री पड़ी हुई हैं, तब सहज में नहीं दूर होगा। क्यों नवीन, देखने में भूल तो नहीं की ?"

नवीन—"यह कैसे हो सकता है देवता ? जहाँ इतने साक्षात् देवता उपस्थित हैं वहाँ मेरे जैसा अदने से अदना आदमी कोई बेढंगी बात भला कैसे कह सकता है ? मैं अगर झूठ बोलता होऊँ तो आप समझिए मेरे सात पुरखे... ..."

राम—"हैं ! हैं !! यह क्या कर रहे हो नाई भाई ? अरे, ठहरकर तुमने यह देख लिया था कि वे दोनों कौन हैं ?"

नवीन—"क्षमा करें देवता, घोर कलजुग आ गया है। और फिर ये आदमी की आँखें ठहरीं। निश्चयपूर्वक क्या कह सकता हूँ ?

आप लोग देवता हैं; इच्छा करने से ही आप लोग दिन को रात बना सकते हैं और रात को दिन……”

राम—“अरे व्याख्यान बंद कर ! तूने रुककर यह देख लिया था कि छोटे राय ही हैं ?”

नवीन—“देखना क्या देवता मैंने बातचीत की थी, प्रणाम किया था।”

राम—“अच्छा। यह कैसे पहचाना कि वह औरत दुर्गा थी ?”

नवीन—“महाराज जी ! गाँव की लड़कियों को—चालीस बरस इसी गाँव में बीत गया—चाल देखकर बता सकता हूँ कि किसके घर की औरत है।”

राम—“देखो नवीन ! मामूली बात नहीं है, गाँव के एक प्रधान ब्राह्मण की जाति-पाँति की बात है। अंधेरी रात थी, उसपर देवी का बाड़ा; तुमने क्या उस औरत की बात सुनी थी ?”

नवीन—“नहीं प्रभु ! देवता से क्या छिपा है ? मैं क्या बताऊँ कि वैसी स्त्रियाँ कैसी बातें करती हैं ?”

राम—“तू ठीक ठीक पहचान गया था कि हरिनारायण विद्यालंकार की कन्या दुर्गा है ?”

नवीन—“हाँ महाराज जी ! किरीटेश्वरी की मार बड़ी सुंदर होती है।”

इसी समय चंडीमंडप के कोने से वही वृद्ध सज्जन बोले—“देखो रामू। नवीन की बात पर विश्वास करके एक धर्मात्मा ब्राह्मण को जाति-च्युत कर देना उचित नहीं है।”

नवीन—“यह क्यों, जरा बताइए तो महाराज जी ? मैंने क्या आपके पके खेत में हल चलाया है ? नवीन जाति का नाई है सही, लेकिन उसकी बात का भी मोल है। नाई समाज में उसकी भी प्रतिष्ठा

है। गांगुली जी ने बुलाया था इसलिये आ गया नहीं तो नवीन शौक से किसी के घर नहीं जाता।"

अक्षय—"गुस्सा मत करो नवीन! देखो हरिकेशव काका, हम सब नवीन को पहचानते हैं; यह यों ही झूठी बात नहीं कहता। हरिनारायण विद्यालंकार की विधवा कन्या दुर्गा पहर रात गए अकेली असीम राय के साथ देवी के बाड़े में कुछ हरिकीर्त्तन करने नहीं गई थी। अब आप लोग समाज की रक्षा के लिये क्या व्यवस्था करते हैं, कीजिए!"

हरि—"जो व्यवस्था हो, सो तुम्हीं कहो अक्षय!"

अक्षय—"निमंत्रण बंद, धोबी-नाई बंद; कहीं दूसरी जगह हरिनारायण का निमंत्रण होने पर वहाँ हमारे गाँव का कोई नहीं जायगा।"

हरि—"बड़ी अच्छी बात है।"

राम—"लेकिन एक बात रह गई काका। वह औरत दुर्गा थी या कोई और, यह स्पष्ट नहीं हुआ।"

इसपर चंडीमंडप के कोने से वही वृद्ध सज्जन बोले—"देखो रामचंद्र, क्या यही राढ़ का कुलीन समाज है? हरिकेशव की सधवा कन्या ससुराल से मुसलमान के साथ भाग गई, उसका कोई दंड नहीं दिया गया; लेकिन प्रमाण न होने पर भी हरिनारायण को जातिच्युत करने की व्यवस्था हुई।"

बूढ़े हरिकेशव काँपते काँपते उठकर चिल्ला पड़े—"मेरी लड़की भाग गई थी तो तेरा क्या?"

दोनों में वाग्युद्ध छिड़ गया। धीरे धीरे मल्लयुद्ध की नौबत देख लोग उन्हें पकड़कर अन्यत्र लिवा ले गए। बड़ा हंगामा मचा और सभा भंग हो गई।

सब लोगों को एक एक करके घर लौटते देख रामचंद्र ने अक्षय से पूछा—"अक्षय भैया, क्या तै हुआ?"

अक्षय ने हँसते हुए कहा—"होगा क्या? वही जो मैंने कहा था।"

"अच्छा नहीं किया, अक्षय भैया। बड़े घर की बात ठहरी। प्रमाण भी थोड़ा ही है। जानते तो हो, बड़ों की प्रीति और बालू की भीत एक होती है।"

"धर्म है रामचंद्र, धर्म वर्तमान है!"

"यह बात तुम भी न भूलना। विद्यालंकार मुहँफट हैं, लेकिन हैं आचारवान् ब्राह्मण। दुर्गा को मैं पहचानता हूँ, वह कुलटा नहीं है।"

———

ग्यारहवाँ परिच्छेद

बड़ों की प्रीति

दोपहर के बाद चिंताक्लांत वृद्ध हरिनारायण विद्यालंकार ने बहुत धीरे धीरे सूबा बंगाल के प्रधान कानूनगो हरनारायण राय की राजमहल सरीखी कोठी में प्रवेश किया। हरनारायण उस समय भोजन करके बैठकखाने में आराम कर रहे थे। दूध की तरह स्वच्छ और मुलायम बिस्तर पर लेटकर, बड़े से नक्काशीदार हुक्के की नाल मुँह में लगाए वे अर्द्धनिद्रित अवस्था में पड़े हुए थे। बिस्तर के किनारे बैठा एक नौकर उनका पैर दाब रहा था। विद्यालंकार के पैरों की आहट से उनकी नींद खुल गई। उन्होंने किंचित् मुसकराकर पूछा—"कहिए भट्टाचार्य जी, असमय कैसे चले!"

उदास होकर हरिनारायण ने कहा—"बहुत विपत्ति में पड़कर आ रहा हूँ भैया; तुम उद्धार न करोगे तो मानमर्यादा न बचेगी।"

"तुम्हारे ऊपर भला कौन सी विपत्ति है? दूसरे की नौकरी नहीं, कोई झंझट नहीं, पेट के लिये परिश्रम करना नहीं पड़ता। मैं तो देखता हूँ कि शाह आलम और तुम्हारे में कोई अंतर नहीं है।"

"हँसी का अवसर नहीं है, हरनारायण! बड़ी विपत्ति में हूँ। तुम रक्षा न करोगे तो मेरे लिये दूसरा उपाय नहीं।"

हरिनारायण बिस्तर के एक किनारे बैठ गए। हरनारायण ने पूछा—"ऐसी कौन सी बड़ी बात है?"

"अक्षय गांगुली और हरिकेशव चट्टोपाध्याय ने षड्यंत्र रचकर मुझे जातिच्युत कर दिया है।"

"तुम्हें जातिच्युत! कहते क्या हो? तुम तो देशविख्यात पंडित हो। तुम्हारे डर से सारे बंगाल के कुलीन एक घाट पर पानी पीते हैं और नीच से भी नीच अक्षय गांगुली और हरिकेशव चट्टोपाध्याय ने तुम्हें जातिच्युत कर दिया! सपना तो नहीं देखा तुमने?"

"सपना नहीं है भैया, कठोर सत्य है। हरिकेशव ने एक आदमी से कहला भेजा है कि आज से मेरा धोबी नाई बंद हो गया। दुर्गा को अगर निकाल दूँ और ठीक से प्रायश्चित्त करूँ तभी ब्राह्मण वर्ग मुझे फिर ग्रहण करेगा।"

"दुर्गा का अपराध?"

"वह व्यभिचारिणी है।"

"यह बात कहता कौन है?"

"तुम्हारी स्त्री।"

"मेरी स्त्री?"

"हाँ, तुम्हारी स्त्री।"

"प्रमाण?"

"नवीन नाई।"

"तुम क्या पागल हो गए हो? बोलो, खेलोगे एक बाजी अभी?"

"सुनो हरनारायण! कल रात में जब असीम और भूपेन घर छोड़कर जा रहे थे तब दुर्गा भूपेन के लिये अत्यंत कातर होकर अँधेरे में अकेली देवी के मंदिर तक जाकर उसे कुछ रुपए दे आई थी। नवीन ने उसी समय उन लोगों को देखा था। दुर्गा अगर और किसी को साथ

लेकर जाती तो संभवतः कोई बात न उठती लेकिन उसने बचपन से ही भूपेन का पालन पोषण किया है और उसे लड़के से भी बढ़कर चाहती है। भूपेन का देश छोड़कर जाना सुनकर उसे आगे-पीछे का ज्ञान नहीं रहा। मैं भी यहीं था, लेकिन सुदर्शन तो घर पर रहा, दुर्गा उसे संग लेकर बेखटके जा सकती थी। नवीन ने उसी समय आकर गृहणी को बतलाया कि मैंने पहर रात बीते अँधेरे में असीम और दुर्गा को बाड़े में देखा है। आज सबेरे तुम्हारी स्त्री के आदेशानुसार नवीन ने यह बात गाँव भर में फैला दी और उन्हीं के आदेशानुसार गाँव के समस्त कुलीन लोगों ने अक्षय गांगुली के यहाँ इकट्ठे होकर मुझे जातिच्युत किया है। देखो भैया, मैं बूढ़ा ब्राह्मण ठहरा। तुम्हारा आश्रित हूँ। अगर किसी कारण तुम्हारा या गृहिणी का असीम से मनोमालिन्य होता है तो उसके लिये मैं क्यों दंड पाऊँ?"

"कैसी बात कहते हो भट्टाचार्य! गृहिणी ठहरीं कायस्थ की लड़की और आप ठहरे ब्राह्मण देवता! कायस्थ की लड़की की बात पर ब्राह्मण जातिच्युत हो गया, यह कहने से लोग हँसी उड़ाएँगे। तुम शांत हो जाओ; बाजी बिछाने के लिये कहूँ?"

"कलियुग का ब्राह्मण सब कुछ कर सकता है भाई। बाजी तो होगी ही, लेकिन मन कहाँ ठिकाने कर पा रहा हूँ? हरिकेशव की सधवा कन्या जिस समय रूपवान गुणवान स्वामी का परित्याग करके मुसलमान के साथ भाग गई थी उस समय तुम्हारी ही सहायता से मैंने उसकी जाति बचाई थी। कृतघ्न हरिकेशव ने आज यह बदला चुकाया! अक्षय तो वज्रमूर्ख है। ब्राह्मण-समाज में वह कुलीनता की दुहाई देकर पूजनीय होने का दावा करता है। हर बार मैं भी उसका विरोध करता हूँ। इतने दिनों तक ये कुलीन के विद्याहीन, आचार-

हीन संतान लोग मेरे पीछे पीछे कुत्ते की तरह फिरते रहे। आज तुम्हारी पत्नी का सहारा पाकर ही उन्हें मेरा यह अपमान करने का साहस हुआ है। हरनारायण ! तुम्हारे ही भरोसे पर मैं इस गाँव में रहता हूँ; मेरा ऊँचा मस्तक कभी भी नीचे नहीं झुका। भैया, आज सच्चे भाई का काम करो। तुम्हारी एक ही दृष्टि से कुलीन समाज दब जायगा। मेरी लड़की कुलटा नहीं है।"

"यही तो भट्टाचार्य, तुमने बड़े संकट में डाल दिया !"

"तुम्हारे लिये कैसा संकट ?"

"लोगों का मुँह कैसे बंद करूँगा ?"

"वहाँ तो भूपेन था।"

"बात तो तुमने जरूर ब्राह्मण पंडितों जैसी कही; अरे पागल वह अंधा जो है।"

"तब तुम्हें भी विश्वास है ?"

"विश्वास की बात नहीं भट्टाचार्य; यह प्रमाण की, साक्षी की बात है।"

"तुम अक्षय और हरिकेशव को बुलाकर कह दो तो सारी बातें समाप्त हो जायँगी।"

"देखो भट्टाचार्य, मैं कायस्थ हूँ, ब्राह्मण समाज की बातों में पड़ना क्या मेरे लिये उचित होगा ?"

"यह कैसी बात हरू ! हरिकेशव की लड़की के समय क्या समझ कर पड़े थे ?"

"तब तुम लोग मेरी बात मानते थे। अब अगर न मानो तो ? यह तो हरनारायण राय के लिये बड़े अपमान की बात होगी।"

"हरू, तुम मेरे बाल्यबंधु हो। बचपन से ही तुम दुर्गा को जानते हो। वह कुलटा नहीं है। अच्छे बुरे का विचार किए बिना स्नेहवश उसने एक काम कर डाला है। अवसर पाकर मेरे शत्रु मुझे निकाल रहे हैं। इस समय तुमने रक्षा न की तो मुझे लांछित होकर देशत्याग करना पड़ेगा।"

"बड़े दुःख की बात है भाई!"

"फिर तुम्हारी क्या इच्छा है?"

"मेरी इच्छा क्या है सो क्या तुमसे छिपा है?"

"भैया, भारी संकट में फँसा हूँ। तुम्हारे सिवा मेरी और कहीं गति नहीं। मुझे बचाओ; बुढ़ापे में निर्वासित न करो।"

"मैं क्या चाहता हूँ कि तुम गाँव छोड़ दो? लेकिन करूँ क्या भाई; मैं कायस्थ हूँ, ब्राह्मण समाज की किसी बात में मेरा हाथ डालना ठीक नहीं।"

"फिर, मेरे लिये क्या उपाय है?"

"दो चार दिन लोगों के घर जाकर देखो; अवश्य ही उनके मन में दया आएगी।"

"यह काम हरिनारायण द्वारा नहीं होगा।"

"मुझे भी दूसरा उपाय नहीं दिखाई देता।"

वृद्ध ब्राह्मण कुछ देर सिर झुकाए बैठे रहे, फिर अचानक उठ खड़े हुए और तीर की तरह बाहर चले गए।

हरनारायण थोड़ा-सा हँस पड़े।

बारहवाँ परिच्छेद

सूती का संगम

संध्या के पहले भागीरथी में एक छोटी सी नाव पाल उड़ाए चली जा रही थी। पास ही पद्मा और भागीरथी का संगम था। उस समय भागीरथी की अवस्था इतनी खराब नहीं थी। गंगा का अधिकांश जल भागीरथी में मिलकर समुद्र में चला जाता था इसलिये उस समय पद्मा का रूप उतना उग्र नहीं था। लगभग दो सौ वर्ष पूर्व सूती गाँव से थोड़ी दूर आगे भागीरथी में एक बहुत बड़ा दह था जिसका कुछ भाग अब गड्ढों के रूप में परिवर्तित हो गया है। दिन डूबते देख उक्त छोटी सी नाव का माँझी पाल उतारकर नाव रोकने की तैयारी कर रहा था। इसी समय एक और छोटी सी डोंगी आकर उसके बगल में खड़ी हो गई। डोंगी में सामने बैठे एक वृद्ध ब्राह्मण छोटे से हुक्के पर तंबाकू पी रहे थे और उनके सामने बैठा एक काला-सा अधेड़ व्यक्ति उनके मुहँ से निकलते हुए धुएँ की ओर ललचाई आँखों से देख रहा था। कुछ देर देखते रहने पर अधेड़ व्यक्ति ने कहा—"देखो महाराज जी, मेरे मालिक नवद्वीपचंद्र बड़े विलक्षण थे।"

ब्राह्मण ने कुंडलाकार धुआँ निकालकर कहा—"हुँ:!"

ब्राह्मण को पुनः हुक्के में लीन होते देख उनके साथी ने कहा—"नवद्वीप मालिक कहा करते थे कि ब्राह्मण के हाथ में हुक्का पड़ने से···"

ब्राह्मण ने विरक्त होकर कहा—"देखो दीनानाथ, तुम्हारे मालिक के फेर में निश्चिंत होकर एक चिलम तंबाकू भी नहीं पी सकता ?"

दीनानाथ ने क्रोध में आकर कहा—"देखो महाराज, तीन चिलम तंबाकू चढ़ा चुका और सब तुमने अकेले ही जला डाला। अब यह चिलम भी जल चली है। नवद्वीप मालिक कहते थे कि ब्राह्मण के हाथ से···"

"अरे हटा, बड़ा तेरा मालिक !"

ब्राह्मण ने इतना कहकर हुक्के पर से चिलम उतार दी। उसे लेकर दीनानाथ ने अपने हुक्के पर चढ़ाया। त्योंही दोनों नावें किनारे लगीं और एक मोटे ताजे काले से ब्राह्मण ने आकर दीनानाथ से पूछा—"चिलम में कुछ है, मालिक ?"

दीनानाथ ने हुक्का नीचे रखकर बड़ी विरक्ति से पूछा—"तुम ब्राह्मण हो ?"

आगंतुक ने थोड़ा मुसकुराकर कहा—"हाँ।"

तब दीनानाथ ने डोंगी से नीचे उतरकर, जहाँ तक बन पड़ा, संक्षेप करके साधारण सा प्रणाम किया। आगंतुक ने उससे पूछा—"आप लोग कौन हैं ?"

"हम लोग गंधी वणिक् हैं। इन महाराज को देखते हो न; ये डेढ़ पहर से यह चिलम फूँक रहे हैं सो इसमें तो अब कुछ रहा नहीं। आज्ञा हो तो उतारकर दूसरी चढ़ाऊँ।" इतना कहकर दीनानाथ ने हुक्के को फिर मुहँ से लगाया और खाँसते खाँसते पुनः उसे नीचे रख दिया।

आंगतुक ने फटे पुराने मैले कपड़े की एक पोटली रेती पर रख दी और उसके ऊपर बैठ गया। दीनानाथ डोंगी में से तंबाकू निकाल लाया और उसी के पास बैठकर चढ़ाने लगा।

तब आगंतुक ने उससे पूछा—"साह जी, कितनी दूर जायँगे?"

दीनानाथ चारों ओर देखकर बोला—"कुछ ठीक नहीं महाराज! तुम कहाँ जा रहे हो?"

"ससुराल।"

"कहाँ है?"

"यहाँ तो कहीं नहीं है।"

"फिर जाओगे कहाँ?"

"कहा तो, ससुराल।"

"आप कुलीन ब्राह्मण जान पड़ते हैं?"

"फुलिया का मुखर्जी हूँ; विष्णु महाराज का बेटा।"

"ठीक, ठीक महाराज; बैठो।"

तंबाकू चढ़ाकर चिलम आगंतुक के हाथ पर धरकर दीनानाथ बोला—"पाओ महाराज; लेकिन देखना खबरदार! भोग लगाकर चक्रवर्ती महाराज को मत पकड़ा देना। डेढ़ पहर में उन्होंने दस चिलम फूँकी है और अभी प्रसाद की नौबत नहीं आई।"

आगंतुक ने हँसकर चिलम ले ली और पूछा—"साहजी, ठीक बताओ न, कहाँ जाओगे?"

दीनानाथ बोला—"कहा तो महाराज कि कुछ निश्चय नहीं है।"

"तब तुम भी ससुराल जाओगे क्या?"

"हमारी जाति क्या तुम लोगों की तरह है, महाराज? तुम लोग ब्याह करके पैसा पाते हो और हमें पैसा देकर ब्याह करना पड़ता है। एक बात बता सकते हो?"

"क्या ?"

"तुम आते कहाँ से हो ?"

"कटवा से ।"

"बादशाही फौज को लालबाग से कूच करते देखा है ?"

"खूब देखा । बहरामगंज से लेकर भगवानगोला तक दोनों ओर के गाँववाले गावँ छोड़कर भाग गए हैं । खेत की फसल और पेड़ों के फल उच्छिन्न कर दिए गए हैं; घरों में चावल धान के अंबार बिखरे पड़े हैं । एक मठ का महंत कल संध्या समय देखने गया था, सो कोड़े खाकर अधमरा होकर लौटा है ।"

"अच्छा महाराज, फौज अभी है कितनी दूर ?"

"फौज की खबर से तुम्हारा क्या मतलब है, साह जी ?"

"बनिए के लड़के को फौज की खबर से क्या मतलब होगा, तुम्हीं कहो ? फौज के लोग उधार खाकर भाग रहे हैं, उन्हीं से तगादा करने हमलोग निकले हैं । आज छावनी कहाँ रहेगी, बताओ तो ।"

"सूती के संगम से एक कोस पर आज लश्कर की छावनी पड़ेगी । ग्वाले सब गाँव छोड़कर भाग रहे थे, उन्होंने ही कहा है ।"

आगंतुक दीनानाथ के हाथ में चिलम पकड़ाकर उठ खड़ा हुआ । यह देख दीनानाथ ने पूछा—"आप तो चले महाराज ! आज रात टिकिएगा कहाँ ?"

आंगतुक ने हँसकर उत्तर दिया—"टिकिएगा ? अच्छा पूछा आपने साह जी । श्मशान के किनारे मैं एक बहुत बड़ा बरगद का पेड़ देख आया हूँ । सोचा है, आज वहीं टिकूँगा ।"

"राम, राम ! यह क्या कहते हो महाराज ! इस विकट रात्रि में श्मशान में भला क्या रहोगे ? चलो किसी गाँव में चलकर कोई जगह ढूँढी जाय ।"

"उसके लिये अब दिन कहाँ रहा ? तुम बाद में आना साहू जी, बिना पद्मा पार गए किसी घर में चावल के दर्शन न होंगे।"

दीनानाथ जितनी देर आगंतुक ब्राह्मण के साथ बातचीत करता रहा उतनी देर तक उसका साथी चक्रवर्ती ध्यान से दूसरी नौका के आरोहियों की गतिविधि देखता रहा। उस नौका के सामने बैठा एक गौरवर्ण दुबला पतला युवक दीनानाथ की बातें सुन रहा था। उसने दीनानाथ के पास आकर पूछा—"आप फौज की बात कर रहे थे; फौज क्या पास ही कहीं आ रही है ?"

आगंतुक ने कहा—"बादशाही फौज यहाँ से लगभग एक कोस पर छावनी डालेगी। आप लोगों की नाव में क्या स्त्रियाँ हैं ?"

"हाँ, हम लोग सपरिवार काशी जा रहे हैं।"

"तब फिर नाव लेकर शीघ्र उस पार चले जाइए।"

"यही ठीक है।"

युवक को जाते देख आगंतुक ने पूछा—"आप लोग किस श्रेणी के हैं ?"

"राढ़ी। क्यों ?"

"किस मेल के ?"

"फुलिया। आप यह क्यों पूछ रहे हैं ?"

"मैं फुलिया का मुखर्जी हूँ, विष्णु पंडित का लड़का। अगर कन्या-दान करना चाहते हों तो मैं तैयार हूँ।"

आगंतुक की बात सुनकर युवक हँस पड़ा और बोला—"नहीं महाराज, हमारे परिवार में विवाह योग्य कन्या नहीं है।"

युवक अपनी नौका में चला गया और थोड़ी ही देर बाद उसके माँझी-मल्लाह नाव उस पार ले गए।

तेरहवाँ परिच्छेद

श्मशानवासी

दो सौ वर्ष पहले सूतीगाँव के पास भागीरथी के तट पर बहुत बड़ा श्मशान था। गाँव के उत्तर ओर छोटी सी पद्मा, पश्चिम और दक्षिण ओर गंगा का दिगंत विस्तृत प्रवाह तथा पूरब ओर बाँस का बड़ा जंगल था। गाँव के दक्षिण पूर्व की ओर, बाँस के जंगल के दक्षिणी छोर पर एक बहुत बड़ा बरगद का पेड़ था। उसकी शाखा प्रशाखाएँ दूर तक फैली हुई थीं। वहीं से सूतीगाँव का श्मशान आरंभ हो जाता था। बहुत दूर दूर से लोग शव लेकर सूतीगाँव के श्मशान में आया करते थे। पद्मा के पश्चिमी तट के लोग तो आते ही थे, पद्मा और महानंदा के उत्तरी तट के लोग भी धनी लोगों के शव नाव पर लेकर इस श्मशान में आया करते थे।

श्मशान इतना विख्यात था कि गाँव के लोग दिन में भी इधर के रास्ते से नहीं निकलते थे। स्त्रियों और लड़कों में श्मशान की अपेक्षा उसकी सीमा पर स्थित वटवृक्ष की ख्याति अधिक थी। बहुत दूर से लोग शव ले आकर इसी वटवृक्ष के नीचे ठहरते थे। कभी कभी सुना जाता था कि शव लानेवाले वटवृक्ष के नीचे शव रखकर गाँव में लकड़ी लेने गए लेकिन लौटने पर शव का पता नहीं लगा। सूतीगाँव का

वटवृक्ष नाना प्रकार के भूत प्रेतों और ब्रह्मदैत्यों के क्रीड़ास्थल के रूप में प्रसिद्ध था। बहुत आवश्यक होने पर ही लोग इस श्मशान की सीमा तक आते अथवा उसकी बगल से होकर निकलते थे। बरगद के पेड़ तक तो बिना घोर विपत्ति में पड़े कोई जाता ही नहीं था। जिस दिन दीनानाथ सूतीगाँव पहुँचा उस दिन भी बरगद के पास दो तीन चिताएँ जल रही थीं। शुक्ल पक्ष का आरंभ था। चंद्रमा की क्षीण ज्योति बहुत पहले समाप्त हो चुकी थी। अँधेरे में बुझती हुई तीनों चिताओं के धुँधले प्रकाश में एक लंबा काला आदमी बरगद के नीचे भोजन बनाने की चेष्टा कर रहा था। सूखी लकड़ी के नाम पर सूतीगाँव के बनिए ने उसे जो वस्तु दी थी वह जब किसी तरह भी जलने पर राजी नहीं हुई तब उस आदमी ने बड़े इतमीनान से बुझी हुई चिता में से अधजली लकड़ियाँ इकट्ठी कीं और प्रज्वलित चिता के एक किनारे उन्हें जलाया एवं परम संतुष्ट मन से उपर्युक्त चिताभस्म के ऊपर बैठकर भोजन बनाना आरंभ किया। दूर तक फैले हुए वटवृक्ष के दूसरे किनारे पर खड़ा एक व्यक्ति उसकी गतिविधि देख रहा था। वह प्रेत नहीं था; था मनुष्य ही।

बरतन का भोजन ठंढा होने के पूर्व ही उसने खाना आरंभ कर दिया। उसी समय एक और आदमी आकर उसकी गतिविधि देखने-वाले आदमी के पास खड़ा हो गया। गरमागरम अधपका भोजन किसी प्रकार उदरस्थ करके दूसरा बरतन न रहने के कारण विस्तृत रेती पार करके उसे पानी पीने जाते देख बाद में आए व्यक्ति ने पहले से खड़े व्यक्ति से पूछा—"प्रेत है क्या?"

उसने कहा—"पहले तो यही समझा था।"

"फिर?"

"आदमी है।"

"यहाँ क्या कर रहा है ?"

"फकीर या पागल जान पड़ता है।"

"जिस अग्नि में शवदाह हुआ है उसी में इसने भोजन बनाया है ?"

"हाँ।"

"मैं उससे बातचीत करूँगा।"

दोनों पेड़ के नीचे से निकलकर भागीरथी के तट की ओर चले। श्मशानवासी उस समय जल में उतरकर अँजुली से पानी पी रहा था। दोनों आदमियों ने किनारे पर ही खड़े होकर उसे पुकारा लेकिन वह इन लोगों की ओर बिना दृष्टि फेरे नहाने लगा। आध घड़ी बाद स्नान करके जब वह गीली रेती पर आकर कपड़ा बदल रहा था तब दोनों आदमी उसके पास गए। दूसरे ने पहले आदमी से कहा—"मैं उससे बहुत सी बातें पूछना चाहता हूँ। तुम मेरे प्रश्नों को इस देश की भाषा में उसे समझा दो। पूछो, वह कौन है ?"

पहले आदमी के प्रश्न करने पर श्मशानवासी ने उत्तर दिया—"मैं ब्राह्मण हूँ।"

"यहाँ क्या करते हो ?"

"ससुराल जा रहा हूँ।"

"किस गाँव में तुम्हारी ससुराल है ?"

"कौन सी ससुराल की बात पूछते हो, खोलकर कहो; तब तो समझ सकूँगा ?"

"तुम्हारी कितनी ससुरालें हैं ?"

"अब तो दस बारह ही रह गई हैं।"

"पास में कौन सी है ?"

"बिलकुल पास नहीं हैं। लेकिन तुम्हारे यहाँ लड़की है क्या? मैं फुलिया का मुखर्जी, विष्णु पंडित का लड़का हूँ।"

"लड़की है क्यों नहीं, मगर मुसलमान है।

"राम राम! तुम लोग तब अब तक मसखरी करते थे?"

"मसखरी क्यों करूँगा? तुमने पूछा, तुम्हारे यहाँ लड़की है? मैंने कहा, है; क्योंकि दिल्ली में मेरे यहाँ अभी भी लगभग एक सौ अविवाहित लड़कियाँ हैं। मेरे यहाँ बहुतेरी लड़कियों का विवाह ही नहीं होता।"

"मुसलमानों में भी क्या कुलीन होते हैं?"

"यह तो मैं नहीं कह सकता, पर लड़कियाँ अनेक हैं। अगर विवाह करना चाहो तो प्रबंध कर सकता हूँ।"

"रुपए पैसे का बड़ा टोटा है, सो किसी लड़की का उद्धार करना परम आवश्यक हो गया है।"

"तो ठीक है; बहुत शीघ्र तुम्हारी एक अच्छी सी शादी करा दूँगा। तुमसे जो पूछता हूँ उसका ठीक ठीक उत्तर दो।"

"पूछो। लेकिन अगर पहले बता दो कि ब्याह कब कराओगे तो उत्तर देना थोड़ा सरल हो जायगा।"

"कल ही करा दूँगा।"

"कल ब्याह का लग्न नहीं है।"

"तुम क्या ज्योतिष जानते हो?"

"थोड़ा थोड़ा जानता हूँ।"

"बताओ भला, मैं कौन हूँ।"

"तुम बादशाह के पौत्र हो।"

"मैं कहाँ जा रहा हूँ?"

"वह सब न पूछो।"

"तब तुम ज्योतिष नहीं जानते।"

"सो ही सही; ब्याह जान पड़ता है नहीं करा सकोगे।"

"नहीं क्यों करा सकूँगा? जिस दिन चाहोगे उसी दिन ब्याह करा दूँगा। बताते क्यों नहीं कि मैं कहाँ जा रहा हूँ?"

"अगर सचमुच सुनना चाहते हो तो सबेरे आना।"

"अभी क्यों नहीं कहते?"

"रात्रि में गणना ठीक नहीं हो पाती।"

"अच्छी बात है; सबेरे आऊँगा। लेकिन तुम गाँव छोड़कर श्मशान में क्यों रहते हो?"

"गाँव में बहुतेरे मनुष्य रहते हैं और मनुष्य मात्र विश्वासघाती होता है। इसी से गाँव छोड़ श्मशान में रहता हूँ।"

"बहुत ठीक। लेकिन जिस आग में मुरदे जलाए गए हैं उसमें भोजन बनाते घृणा नहीं होती?"

"घृणा क्यों होगी? अग्नि कभी अशुद्ध नहीं होती। फिर, जिस शरीर के लिये भोजन बनेगा जब वही अग्नि में जल जायगा तब उसमें भोजन बनाने में हानि क्या?"

"तुम तो पागल फकीरों जैसी बातें करने लगे।"

"मैं फकीर क्यों होने लगा? बंगाल में दस बारह गाँवों में मेरे दस बारह भरे पुरे संसार बसे हैं। फकीर क्यों होऊँगा?"

इतना कहते कहते श्मशानवासी भयंकर गर्जन करने लगा और दो चार छलाँगों में रेती पार करके वटवृक्ष के घने अंधकार में गायब हो गया। दूसरे ही क्षण वटवृक्ष के नीचे से किसी मनुष्य-कंठ का आर्त्तनाद सुनाई पड़ा—

"अरे बाप रे! ब्रह्मदैत्य! अरे मैं दीनानाथ हूँ बाबा! मैं कुछ नहीं जानता; मुझे छोड़ दो बाबा! कल ही सबेरे सवा पैसे का प्रसाद

चढ़ाऊँगा। अरे मरा रे! अरे, नवद्वीप मालिक! पैसे के फेर में जान गई, मालिक! अरे बच्चू की बात पर असीम को पकड़ने में जान गई रे! अरे ब्रह्मदैत्य है रे! अब ऐसा काम कभी नहीं करूँगा······"

दोनों आगंतुक जल्दी जल्दी बरगद की ओर जाकर देखते क्या हैं कि श्मशानवासी जलती हुई चिता की बगल में एक पिंडाकार पुरुष को जोरों से पीट रहा है। उनके पेड़ तले पहुँचने के पहले ही वह स्थूलकाय मनुष्य बड़ी कठिनाई से श्मशानवासी के चंगुल से छुटकारा पा जान लेकर भागा लेकिन उसका कपड़ा श्मशानवासी के हाथों में ही रह गया। उन्होंने श्मशानवासी से पूछा—"क्या मामला है?"

उसने कहा—"चोर मेरा सर्वस्व उड़ाए लिए जा रहा था। बड़ी कठिनाई से उसे बचा पाया।"

"तुम्हारा 'सर्वस्व' क्या है?"

श्मशानवासी ने मैले कुचैले चिथड़े में लपेटी एक गुदड़ी और कीड़ों द्वारा खाई हुई एक पुस्तक दिखाकर कहा—"जो कुछ मेरे पास है, यही है; यही मेरा सर्वस्व है।"

———

चौदहवाँ परिच्छेद

ब्रह्मदैत्य

प्रातःकाल भागीरथी के विस्तृत शुष्क तीर पर एक दीर्घाकार ब्राह्मण संध्यावंदन कर रहे थे। बीच बीच में कराहने की अस्फुट आवाज से उनका चित्त विचलित हो रहा था। संध्या समाप्त करके ब्राह्मण देवता कराहने का कारण जानने के उद्देश्य से नदी तीर की ओर चले। गंगा की धारा के पास बालू के टीले पर एक मोटा सा आदमी पड़ा हुआ था। उसी का कराहना बीच बीच में उनके कानों में पड़कर संध्यापूजन में विघ्न डालता था। उसके पहनने के कपड़े खून से लथपथ थे और वह प्रायः संज्ञाशून्य था। ब्राह्मण देवता अपने दुपट्टे का एक कोना गंगाजल में भिगो लाए और उसका जल उस चेतनाहीन व्यक्ति के मुँह में निचोड़ने लगे। थोड़ी देर शुश्रूषा करने पर उसकी चेतना लौटी। उस समय धूप निकल आई थी और गंगा में दो एक नावें चलने लगी थीं लेकिन किसी किनारे किसी मनुष्य का चिह्न नहीं दिखाई पड़ता था।

होश में आने के पहले वह कुछ देर आँखें बंद किए पड़ा रहा; उसके बाद बड़ी सावधानी से आँखों को जरा सा खोलकर ब्राह्मण को देखा। इसके कुछ देर बाद उसने ब्राह्मण से धीरे धीरे पूछा—"महाराज, आप क्या ब्रह्मदैत्य हैं?"

उसका प्रश्न सुन ब्राह्मण देवता हँस पड़े। उनकी हँसी सुन उसने पुनः आँखें बंद कर लीं। उसके मन की अवस्था देख ब्राह्मण बोले—"डरो मत, मैं ब्रह्मदैत्य नहीं हूँ।"

आश्वस्त होने पर उसने फिर धीरे धीरे आँखें खोलीं तथा और धीरे धीरे पूछा—"ठीक कहते हो न?"

ब्राह्मण ने पूछा—"क्या ठीक कहता हूँ?"

"तुम ब्रह्मदैत्य नहीं हो?"

"नहीं नहीं; तुम डरो मत, मैं ब्रह्मदैत्य नहीं हूँ।"

"कैसे समझूँ कि तुम ब्रह्मदैत्य नहीं हो?"

"क्यों? कहने से विश्वास नहीं हुआ?"

"सूतीगाँव के लोगों के कहने पर जो विश्वास करे उसका सा अहमक हिंदुस्तान भर में न होगा।" यह कहकर वह व्यक्ति उठ खड़ा हुआ और ब्राह्मण से बोला—

"महाराज! मेरे इस दाहिने गाल पर जरा जोर से एक तमाचा लगाओ तो।"

ब्राह्मण बोले—"तमाचा क्यों लगाऊँ?"

"तमाचा लगने पर समझूँगा कि तुम ब्रह्मदैत्य हो या नहीं। बाईं ओर मत मारना; रात के तमाचे से दो दाँत उखड़ गए हैं।"

"फिर भी तमाचा खाने की साध मिटी नहीं?"

"तमाचा खाने की साध मुझे थोड़े ही है, महाराज! अगर जरा ऊपर पड़ता तो ये दो दाँत बचे रह जाते।"

"तुम रहते कहाँ हो?"

"कटौंजा में।"

"जाओगे कहाँ ?"

"जिधर आँखें उठें ।"

"तुम सन्यासी हो ?"

"ऐसा ही समझिए । रुपए पैसे का बड़ा सोच है ।"

"रुपए पैसे का तुम्हें क्या सोच है ?"

"बड़ी लंबी कहानी है, पंडित जी !"

"ब्रह्मदैत्य के हाथ कैसे पड़े ?"

"इसी रुपए के सोच में ।"

"सो कैसे ?"

"पंडित जी, ब्रह्मदैत्य के डर से सारी रात दाँत पर दाँत दाबे पड़ा रहा । पहले एक चिलम तंबाकू पिलाकर जान बचाइए, फिर सब बातें बताऊँगा ।"

वह व्यक्ति धीरे धीरे ब्राह्मण के साथ चला । थोड़ी दूर पर एक करारे के नीचे एक बड़ी सी नाव बँधी थी । ब्राह्मण देवता उसमें से तंबाकू, चिलम, कोयला, चकमक आदि ले आए । चिलम पर तंबाकू चढ़ा, चकमक पर लोहा रगड़कर उन्होंने आग जलाई । इस बीच उस आदमी ने पानी में उतरकर हाथ मुहँ धोया और ब्राह्मण के हाथ से चिलम लेकर कोयला सुलगाने लगा । ब्राह्मण ने तट पर बैठते हुए पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है ?"

उनके साथवाला व्यक्ति उस समय पहली फूँक मार रहा था । उसने मुहँ और नाक से ढेर का ढेर धुआँ छोड़ते हुए कहा—"मेरा नाम है श्रीदीनानाथ साह । मेरे मालिक का नाम नवद्वीपचंद्र साह था । वे अद्‌भुत पुरुष थे ।"

"अच्छा, तो ब्रह्मदैत्य के हाथ कैसे पड़े ?"

"लालबाग में बादशाह के नाती के आने पर लालच में पड़कर एक दूकान खोली थी। कुछ दिनों तक फौज के लोगों के लिये रसद जुटाकर रोजगार में चार पैसा पैदा कर लिया था कि अकस्मात् एक दिन छावनी समेत फौज ने कूच कर दिया। वे लोग मेरा कुछ पावना चुकाना भूल गए। क्या करूँ; विपत्ति का मारा फौज के पीछे पीछे सूती-गाँव तक आया। यहाँ एक पाजी ने कहा कि वह जो बादशाह के नाती का प्यारा असीम राय है उसी को पकड़ने से सब रुपए वसूल हो जायँगे। क्या करता? भरी रात में असीम राय का पता लगाने बाहर निकला। छावनी में सुना कि वह तो बादशाह के नाती के साथ श्मशान गया है। क्या बताऊँ पंडित जी; रुपए का सोच पुत्रशोक से भी अधिक होता है; सो चला श्मशान की ओर। साथ में एक दुष्ट ब्राह्मण था। वह भी बख्शी से बाकी रुपए वसूल करने आया था, लेकिन श्मशान का नाम सुनते ही चंपत हो गया। सूतीगाँव का श्मशान बड़ा भारी श्मशान है। वहाँ बरगद का एक पेड़ है। उसी बरगद पर ब्रह्मदैत्य का वास है। रात में हनुमान जी का नाम जपते जपते जैसे ही बरगद के नीचे पैर रखा है कि उछलकर ब्रह्मदैत्य ने मुझे धर दबोचा; अरे, बाप रे!"

"क्या कहा, असीम राय?"

"जी पंडित जी! उसके भाग्य का क्या कहना है। बादशाह का नाती उसके कहने पर उठता बैठता है।"

"यह असीम राय कौन है, जानते हो?"

"बंगाली है।"

"रहनेवाला कहाँ का है?"

"यह तो नहीं कह सकता पंडित जी!"

"चलो, जरा देखूँ तो सही।"

"फिर उसी बरगद के नीचे ? ना बाबा !"

"डर किस बात का है; मैं तुम्हारे संग चलूँगा।

"आप जाइए चाहे कोई जाय, दीनानाथ अब बरगद तले नहीं जाता।"

"अच्छा यह बताओ, ब्रह्मदैत्य है कैसा ?"

"यही, जली हँड़िया जैसा रँग है, ताड़ की तरह लंबा है और मुट्ठियाँ उसकी पत्थर की तरह कठोर हैं।

"अच्छा चलो तो, दूर से ही उसे दिखा देना।"

"जाना हो तो आप ही जाइए महाराज जी ! मेरा शौक पूरा हो चुका।"

"चलो न, शायद असीम राय से ही भेंट हो जाय।"

"वह, क्या नाम है उसका, चू—चूल्हे में जाय। बरगद के पास तो दीनानाथ नहीं जाने का।"

"अच्छा तो चलो, तुम्हारा घर कहाँ है ?"

"बाबा वृंदावनदास की वैष्णवी के अखाड़े में।"

"वैष्णवी क्यों ? वैष्णव कहाँ गया ?"

"वैष्णवी को वारिस बनाकर मर गया। पूजापाठ वही करती है।

दोनों गंगा किनारे से उठकर अमराइयों से घिरे सूतीगाँव की ओर चले।

———

पंद्रहवाँ परिच्छेद

भविष्यद्वाणी

सूतीगाँव की उत्तरी सीमा पर बहुत दिनों पहले एक पठान रहता था। जिस समय की बात कह रहा हूँ उससे भी प्रायः दो सौ वर्ष पहले उस पठान ने पद्मा के किनारे रमणीय उद्यान लगाया था। वाटिका के बीच में उसकी मनोहर अट्टालिका थी। गौड़ देश के पठान-राज्य के चिह्नों के साथ पद्मा ने बहुत दिनों पहले ही पठान की अट्टालिका को आत्मसात् कर लिया था किंतु प्राचीर से घिरी वाटिका का कुछ अंश उस समय भी बचा रह गया था। उसी अरक्षित वाटिका में एक प्राचीन विद्युत्ताड़ित आम्रवृक्ष खड़ा था जो वृद्ध की तरुणी भार्या की भाँति नवीना सुंदरी मालती के बाहुवेष्ठन का लोभ संवरण नहीं कर पा रहा था। उस मालती-वितान के चतुर्दिक् परिहास-रसिका सखियों की भाँति श्वेत और रक्त कनेर के असंख्य गुल्म लगे हुए थे। स्थान स्थान पर उस समय भी मर्मर-निर्मित सरोवरों तथा निर्झरों के चिह्न विद्यमान थे।

जिस समय गंगा किनारे उस ब्राह्मण की शुश्रूषा से दीनानाथ ने चैतन्य लाभ किया था उसी समय उस शुष्क आम्रवृक्ष के नीचे मालती-

वितान की स्वल्प छाया में एक संभ्रांत मुसलमान युवक दुबले पतले एक ब्राह्मण से बातचीत कर रहे थे।

ब्राह्मण ने कहा—"फारसी पढ़ी थी, लेकिन अभ्यास छूट जाने से प्रायः भूल गया हूँ।"

मुसलमान सज्जन बोले—"आपकी बात समझ नहीं पाया।"

उस दुबले पतले ब्राह्मण ने तब बड़ी लच्छेदार फारसी में बातचीत आरंभ की। मुसलमान सज्जन बड़े चकित हुए।

ब्राह्मण ने कहा—"जहाँपनाह, मतलब न होने पर आदमी कोई काम नहीं करता। जब तक उत्साह था, उच्चाकांक्षा थी, तब तक फारसी की चर्चा करता रहा; किंतु अब मुझे यश वा द्रव्य की और चाह नहीं है। सो, फारसी की चर्चा भी छूट गई है।"

"लेकिन कल रात में तो तुमने फारसी का एक शब्द भी नहीं कहा।"

"आप क्या जानें शाहजादा; मेरे दिमाग के भीतर बहुतेरे बंद दरवाजे हैं। जब कभी कोई पुराना, कमजोर दरवाजा खुल जाता या टूट जाता है तो उसमें से सुदूर अतीत की भूली हुई बहुत सी बातें नदी की धारा की तरह आकर मुझे अभिभूत कर देती हैं।"

"दरबार में तुम कोई नौकरी करते थे ?

"यह तो बहुत दिनों की बात है। खालसा की दीवानी में शुमार-नवीस था, सो भी बादशाह आलमगीर के समय में।"

"छोड़ा क्यों ?"

"लोग नौकरी करते हैं धनोपार्जन और सामर्थ्य के लिये। मैंने एक दिन विचार करके देखा कि मुझे इनमें से किसी की भी आवश्यकता नहीं है।"

"यह कैसी बात ?"

"यह बात आप कैसे समझेंगे, शाहजादा ? आप इस समय मयूर सिंहासन के रास्ते पर हैं। यौवन का आरंभ है, उच्चाकांक्षा से आपका हृदय परिपूर्ण है, आप वह बात समझेंगे कैसे ? जिस दिन स्त्री का विश्वास करके प्रताड़ित होंगे, जिस दिन आप समझेंगे कि इस संसार में अपने सिवा आपका कोई नहीं है, प्रेम, भक्ति या स्नेह कोई भी लालसा को बाँधकर नहीं रख सकता, उसी दिन आपकी अवस्था मेरी जैसी होगी। राजकुमार ! सिंहासन के रास्ते में फूल नहीं बिछे होते। मयूर-सिंहासन का रास्ता बड़ा ऊबड़खाबड़ है। आलमगीर और शाह आलम इसे समझ गए थे। मगर नीचे उतरने का मार्ग तो और भी कठिन है। बड़ी रपटीली राह है, राजकुमार ! हुमायूँ के बाद तुम्हारे वंश में और कोई उस रास्ते गया नहीं।"

"यह सब तुम क्या कहते हो काफिर ? तुम्हें मालूम है कि शाह-आलम बादशाह अभी गद्दी पर हैं। तुम जानते हो कि मेरे पिता अभी जीवित हैं और बड़े भाई भी वर्तमान हैं। तख्तताऊस की कैसी बात करते हो ? तुम जरूर पागल हो।"

"यही तो गड़बड़ है शाहजादा; जो स्पष्ट देखता है वह है पागल और दृष्टिशक्ति के रहते जो आँखें बंद किए बैठे रहते हैं वे ही इस दुनिया में दुनियादार समझे जाते हैं। राजकुमार, वृद्ध के प्राण पद्मपत्र पर पड़ी पानी की बूँद की तरह होते हैं। सिंहासन के पथ पर जीवन का मूल्य बहुत सामान्य सा होता है। कहाँ से क्या होता है, इसे कितने आदमी समझ पाते हैं ? यही देखिए न, आप मुझे पागल समझ रहे हैं और मैं दिव्य दृष्टि से देख रहा हूँ कि आप किस मार्ग पर, किधर से, कहाँ जा रहे हैं। वे सब बातें मैं आपसे खोलकर कहूँ तो आप मेरा विश्वास नहीं करेंगे। आपको कोई काम करने से रोकूँ तो उसे आप समझ न सकेंगे।"

"समझूँगा क्यों नहीं, अवश्य समझूँगा। जहाँगीरनगर में एक बार एक फकीर ने मुझसे यही बात कही थी। उसने भी कहा था कि एक दिन मुझे हिंदुस्तान का मालिक बनना पड़ेगा। तुमने भी वही बात कही। तुम बताओ, मैं जरूर समझूँगा।"

"किया क्या जाय, शाहजादा! मेरे द्वारा जो ये सब बातें कहला रहा है वह लाखों हिंदुस्तान के बादशाहों का भी बादशाह है। उसके कंठस्वर या हाथों में कभी कंप नहीं होता; उसकी आज्ञा कभी भी व्यर्थ नहीं होती। वही कह रहा है कि तुम समझोगे नहीं।"

"काफिर, मुझे भयभीत करने आए हो? जानते हो मैं कौन हूँ?"

"खूब अच्छी तरह! आपको, आपके पिता को, पितामह को, प्रपितामह को, सभी को जानता हूँ। चगताई महाशय! जानता हूँ कि आपकी क्रुद्ध दृष्टि होने पर हफ्तहजारी मनसबदारों के भी सिर सही-सलामत नहीं रह सकते। वह सब बताने की तकलीफ नहीं करनी होगी शाहजादा! मैं आलमगीरी युग का आदमी हूँ।"

"काफिर! तुम किसी समय अमीर थे, इसमें कोई संदेह नहीं। मगर आश्चर्य है; तुम्हारा सा आदमी मैंने आज तक नहीं देखा। तुम्हें क्या प्राणों का भय नहीं है?"

"राजकुमार! आप अबोध नहीं हैं; पर प्रश्न बिलकुल बच्चों का सा कर रहे हैं। जिसे जीवन की माया घेरे रहती है वही मरने से डरता है। आपने यह नहीं सोचा कि मुगल बादशाह की मनसबदारी का त्याग करके जो आदमी श्मशान में आश्रय लेता है, मुगलई खाना त्याग कर चिता की अग्नि पर भोजन बनाता है, दूध की तरह स्वच्छ, कोमल बिछौने और असंख्य गुलामों बाँदियों की परिचर्या त्याग कर अँधेरे में इस नरकंकाल भरे श्मशान मे घूमता फिरता है उसे जीवन की ममता कितनी सी होगी? शाहजादा, आप मेहरबान और कद्रदान

हैं। मुझपर मेहरबानी कीजिए। मेरी एक प्रार्थना मानिए। यह दिमाग बहुत दिनों से काम देता आ रहा है; अब इसे एक बार बद-लने की इच्छा है। आप किसी अहदी को आज्ञा दीजिए कि यह पुराना बोझा उतारता जाय।"

"आश्चर्य है काफिर। तुम्हारी मानसिक शक्ति अद्‌भुत है। तलवार की धार के नीचे किसी मनुष्य को स्वेच्छा से सिर रखते नहीं सुना।"

"नहीं सुना? पर अब तो सब कुछ सुनने लगे हैं। कितना सुनेंगे? फर्रुखसियर! सूर्यकिरणों से जगमगाते जगत्‌ में जिस दिन आपको सर्वत्र अंधकार दिखाई देगा उस दिन आप भी उच्च स्वर से प्रार्थना करेंगे कि मेरा कोई शुभेच्छु हो तो कंधों पर धरा यह पुराना बोझा तलवार की धार से उतारता जाय।"

"काफिर! तुम फिर यह सब क्या कहने लगे? मैंने कुछ नहीं समझा। मैं अजीमुश्शान का बेटा, शाहआलम बादशाह का पौत्र फर्रुखसियर हूँ। मेरी ऐसी अवस्था होगी? कब होगी, क्यों होगी?"

"यह आपके ही ऊपर निर्भर है शाहजादा! रमणी के रूप की मादकता तेज से तेज मदिरा की अपेक्षा भी प्रबल होती है। वह मदिरा जिस दिन आपको उन्मत्त करेगी उसी दिन से पतन की कंटकाकीर्ण रपटीली राह आरंभ होगी। वह रास्ता बहुत दूर है लेकिन उधर तुम बहुत वेग से बढ़ रहे हो।"

शाहजादा मालती कुंज वाले प्राचीन निर्झर के अवशेष पर बैठ गए और दोनों हाथों में ब्राह्मण के हाथों को लेकर उन्हें भी अपनी बगल में बैठा लिया।

उस ब्राह्मण ने हँसकर कहा—"आज पठान का यह उद्यान तख्त-ताऊस हो रहा है।"

"ऐसा क्यों कहते हो?"

ब्राह्मण ने मुस्कुराकर कहा—"जहाँ दीन और दुनिया के मालिक बैठें वहीं तख्त है। पठान का यह टूटा हुआ निर्झर आज पवित्र हो गया।"

"फिर पहेली बुझाने लगे।"

"शाहजादा! यह सारा जीवन ही पहेली है।"

"सो सब रहने दो। तुम किस बात के लिये मना कर रहे थे?"

"सुनकर क्या होगा? तुम समझ तो पाओगे नहीं।"

"समझ लूँगा, तुम कहो।"

"केवल दो बातें याद रखो। बहुत सी बातें तुम्हारे दिमाग में टिक न सकेंगी। स्त्री का कभी विश्वास मत करना और यह जान रखना कि अंधा कभी भी विश्वासघात नहीं करेगा।"

इसी समय दूर पर घोड़े की टाप सुनाई पड़ी। उधर दृष्टि फेरने पर शाहजादा ने देखा कि एक अहदी घोड़े पर सवार चला आ रहा है और उसके पीछे पीछे तीन और अहदी पैदल आ रहे हैं।

सोलहवाँ परिच्छेद

मालती कुंज

अहदी ने दूर से ही मुजरा किया। शाहजादा विरक्त होकर बोले—"अभी मुझे समय नहीं है।"

अहदी के पीछे से एक आदमी ने कहा—"जनाब, 'समय नहीं है' कहने से काम न चलेगा। कोई नाव भी नहीं मिल सकी।"

अप्रसन्न होकर शाहजादा ने पूछा—"फौजदार कहाँ गया?"

उस आदमी ने अहदी के आगे आकर कहा—"शायद मुरादाबाद गए हैं।"

"यह सब दीवान का षड्यंत्र जान पड़ता है?"

"यह हुजूर ने अब समझा!"

जिस दुबले पतले ब्राह्मण के साथ शाहजादा पहले बातचीत कर रहे थे वह सहसा बोला—"क्या कहा, नाव नहीं है? हवेली परगने भर में ढूँढने से कोई नाव नहीं मिली? इसी बुद्धि के भरोसे तुम लोग आलमगीर बादशाह के साम्राज्य का शासन करोगे? पागलों की बात सुनिए! सूतीगाँव के उस पार पद्मा का दह पड़ता है। उस दह में फौजदार के आदमियों ने प्रायः पचास नावें डुबा रखी हैं।"

शाहजादा बोल उठे—"शाबाश फकीर! तुमसे क्या कोई बात छिपी नहीं है?"

"बहुत कुछ छिपा है। राजकुमार, जितनी जल्दी हो सके इस देश से निकल जाओ।"

"क्यों?"

"जब तक इस देश में रहोगे तब तक तुम्हारे ग्रह सीधे नहीं होंगे।"

"किधर जाऊँ?"

"कहा तो, मयूरसिंहासन के मार्ग पर।"

"जो कह रहे हो उसे अगर साफ साफ बताओ तो कुछ समझूँ।"

"इससे अधिक स्पष्ट कहने का अधिकार मुझे नहीं है, राजकुमार।"

अहदी के साथी ने इसी समय पूछा—"यह आदमी आपसे क्या कह रहा है शाहजादा?"

शाहजादा के उत्तर देने से पहले ही ब्राह्मण बोल उठा—"क्या कह रहा हूँ असीम राय! जानते हो? इस समय मुर्शिदाबाद के दीवान-खाने में बैठा कृशकाय क्षुद्रबुद्धि हरनारायण राय कह रहा है कि मैंने पद्मा की आधी नावें छिपा दी हैं और इच्छा मात्र से शाहजादा को चींटी की तरह कुचलकर मार सकता हूँ। और क्या कह रहा हूँ, सुनोगे? कहता हूँ कि मयूरसिंहासन पर बैठने का मार्ग ऊबड़खाबड़ है लेकिन उससे नीचे उतरने का मार्ग और भी कठिन है। यह मार्ग बड़ा रपटीला है। इसपर से जिसके पैर फिसलते हैं, जो जनशून्य दीवाने आम को अपने ही पदशब्दों से प्रतिध्वनित करके सूने नक्कार-खाने में अस्त होते हुए अपने गौरव-सूर्य के क्षीण आलोक का स्मरण कर उसाँसे भरते हैं उनके जैसा हतभाग्य बादशाह दिल्ली के सिंहासन पर कभी भी नहीं बैठा।"

"ऐसी अशुभ बात क्यों कह रहे हो, महाराज!"

"सुनना न चाहो तो चले जाओ। युवक, तुम बादशाह से भी अधिक अभागे हो। बादशाह के अमंगल की बात सुनकर अप्रसन्न हो रहे हो ? अदृष्ट ने तुम्हारे लिये क्या संचित कर रखा है, सो सुना है ?"

इसी समय मालती कुंज के दूसरी ओर से एक आदमी बोला—"पंडित जी, वही है।"

शाहजादा ने और अधिक अप्रसन्न होकर पूछा—"अब कौन आया ?"

निकुंज के दूसरी ओर वाले आदमी ने उत्तर दिया—"मैं दीना-नाथ हूँ भाई ! मालिक का नाम नवद्वीपचंद्र।"

उसके बाद और एक आदमी बोला—"असीम !"

बोली सुनकर जल्दी जल्दी असीम मालती कुंज से बाहर निकल आए और उस व्यक्ति को अपनी बाहों में भर लिया। विस्मित होकर शाहजादा ने उस श्मशानवासी ब्राह्मण से पूछा—"राय साहब इस तरह किधर गए ?"

उत्तर मिला—"अदृष्ट की राह पर।"

"उस रास्ते तो सभी जाते हैं, लेकिन इतनी उतावली में वे कहाँ गए ?"

"उनका सौभाग्य उन्हें जिस रास्ते लिए जा रहा था उस रास्ते से दूर करने के लिये दुर्भाग्य ने एक ऐसी शक्ति का आवाहन किया है जिसके आकर्षण का प्रतिरोध करना असीम राय के लिये बिलकुल असं-भव है। मैं चला।"

इतना कहकर वह ब्राह्मण जल्दी जल्दी पैर बढ़ाता पद्मा के किनारे वाले बाँसों के जंगल में अदृश्य हो गया। शाहजादा फर्रुखसियर अवसन्नवदन मालती कुंज के नीचे बैठ गए।

उस समय उस प्राचीन मालती कुंज के बाहर लड़कपन के दो साथी आपस में बातें कर रहे थे और वणिक् दीनानाथ उनकी ओर आँखे फाड़कर देख रहा था। असीम ने पूछा—"अपमान का यह बोझ सिर पर रखकर अपनी इकलौती कन्या की कलंक कालिमा में लिप्त तुम्हारे पिता ने देशत्याग किया है। क्षोभ और अपमान से वे तो पागल हो ही गए थे, लेकिन तुमने उन्हें क्यों आने दिया ?"

आगंतुक ने कहा—"मालिक को भूल गए क्या ? संसार में कोई नहीं जो उन्हें अपने संकल्प से डिगा सके।"

"सो तो याद है। लेकिन इसका परिणाम क्या होगा, यह सोच लिया है ? हमलोगों के कुलीन समाज का आदमी दिन में तीन बार जातिच्युत होता है और फिर तीनों बार समाज में प्रतिष्ठित पद पाता है; मगर हिंदू स्त्री का कलंक कभी दूर नहीं होता। मेरा क्या ? मुझपर बड़ी बहू का विशेष ऋण है। उसे कभी चुका सकूँगा या नहीं, इसमें संदेह है। वह ऋणभार न होगा थोड़ा और बढ़ जायगा। लेकिन दुर्गा का क्या होगा !"

"मेरे तो कुछ भी समझ में नहीं आ रहा है भाई। सौभाग्य से तुम्हारे साथ मुलाकात हो गई। हम लोग इस समय बड़ी विपत्ति में हैं असीम ! सच्चे भाई की तरह हमलोगों का उद्धार करो।"

"कभी कभी इच्छा होती है कि पंडित जी के साथ मुलाकात करूँ, लेकिन उन्हें कैसे मुँह दिखाऊँगा ?"

"असीम, तू क्या पागल हो गया है; बाबू जी को अभी तक पहचान नहीं पाया ?"

"पहचानने में भूल नहीं की सुदर्शन ! तुम लोगों के घर से पुत्रवत् स्नेह मिला है; लेकिन......।"

"लेकिन क्या ?"

"तुम्हारा क्या विचार है कि दुर्गा के चरित्र में रत्ती भर संदेह होने पर महाराज जी उसे अपने साथ लाते ?"

"यह तो ठीक है, लेकिन कैसे उनके सामने जाऊँगा ?"

"घबड़ाओ मत भाई। घोर विपत्ति का सामना है। तुम धैर्यवान, शांत, विद्वान्, बुद्धिमान हो। तुम्हें छोड़ इस संकट में हमारी दूसरी गति नहीं।"

"सुदर्शन, तुम्हारे लिये या पंडित जी के लिये प्रसन्नतापूर्वक प्राण न्योछावर कर सकता हूँ; लेकिन बात जो बड़ी जघन्य है।"

"पाप की बातें दूर करो। देखो असीम, मैं लोक-व्यवहार से अनभिज्ञ हूँ। आरंभ से ही संगीत-चर्चा करता आ रहा हूँ, दूसरी किसी चिंता ने मन में स्थान नहीं पाया। मेरे कान में कोई जैसे कह गया हो कि मालिक के साथ तुम्हारा साक्षात् होते ही हमारा संकट कट जायगा। मेरा मन इस समय इतना प्रसन्न है कि गाने की इच्छा होती है। लांछित, अपमानित, घर से निकाले आदमी के लिये क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है ? भैरवी का समय निकल गया, तू शीघ्र चला चल।"

"चलो फिर; लेकिन तुम्हारे साथ यह कौन है ?"

सुदर्शन ने संक्षेप में दीनानाथ की कहानी सुना दी। उसे ढाढस बँधाकर असीम फिर मालती-कुंज के भीतर गए और आश्चर्य से देखा कि नीचे धूल में बैठे शाहजादा गंभीर चिंता में मग्न हैं। अपने पैरों की आहट से भी उनकी चिंताधारा टूटती न देख असीम ने पुकारा—"शाहजादा !"

ऊपर मुँह उठाकर फर्रुखसियर ने कहा—"राय साहब ! फकीर

क्या कह गया, मैंने समझा नहीं। कोई ऐसा आदमी ढूँढ़ सकते हो जो उसकी बातों का अर्थ बता सके।"

"तुरंत ढूँढ़ सकता हूँ।"

"चलो, उसके पास चलूँगा।"

शाहजादा जमीन पर से उठ खड़े हुए।

आधी घड़ी के बाद रसीद पुरजा सँभालकर दीनानाथ सूतीगाँव से चला गया।

———

सत्रहवाँ परिच्छेद

नियति

सूतीगाँव के उस पार भागीरथी के पास ही एक बड़ा सा तालाब था। भागीरथी की धारा जिस समय गाँव से बहुत दूर पर थी उस समय यह तालाब बना था लेकिन धीरे धीरे अब भागीरथी तालाब के बहुत पास आ गई इसलिये इसका कोई उपयोग नहीं रह गया। तालाब के चारों ओर चार विस्तृत घाट बने हैं जो मरम्मत न होने से जगह जगह टूट फूट गए हैं। घने कमल से तालाब परिपूर्ण है इसलिये देख-भाल न होने पर भी उसका जल स्फटिक की भाँति निर्मल है। गाँव के लोगों ने पास में गंगाजल पाकर तालाब का परित्याग अवश्य कर दिया था लेकिन बच्चे उसमें नहाने तैरने का लोभ नहीं छोड़ सके थे।

दोपहर ढल चुकी है। भागीरथी के तट पर बाँसों की छाया में एक छोटी सी नाव बँधी है लेकिन उसके मल्लाह आदि सभी आदमी सो रहे हैं। बाँसों के झुरमुट से कोई पचास हाथ हटकर तालाब का एक घाट है। किसी समय घाट पर एक मंदिर था लेकिन पीपल और बरगद की कृपा से मंदिर का चिह्न तक लुप्त हो गया है। पीपल और बरगद परस्पर लिपटे हुए थे जिससे एक भगवद्भक्त ने इनका नाम यमलार्जुन रख दिया था। मंदिर का अस्तित्व लुप्त होने के अनंतर

उसके देवगणों ने यमलार्जुन के नीचे आश्रय लिया था। गरमी की उस दोपहरी में एक तन्वंगी, श्यामवर्णी, श्वेतवसना विधवा देवता की पूजा कर रही थी।

शिव का पूजन शेष होने पर वह रमणी गले में आँचल लपेट, साष्टांग दंडवत करके उठ खड़ी हुई। खड़ी होते ही वह ठिठक गई क्योंकि पास ही घाट की टूटी ईंटों के ढेर पर बैठी एक अनिंद्य सुंदरी बालिका एकाग्र मन से उसकी ओर देख रही थी। बालिका वहाँ कब आई, इसे वह एकाग्र मन से पूजा में जुटी स्त्री नहीं जान सकी। बालिका सुंदर थी—वैसा सौंदर्य जान पड़ता है देवलोक में भी दुर्लभ है। स्त्री साँवली थी लेकिन उसके देह की कांति उज्वल थी। उसके शरीर की गढ़न में नवीन यौवन हिलोरें ले रहा था, उसकी सौंदर्यमाधुरी उन्मादकारी थी; फिर भी उस बालिका की रूपराशि के आगे उसका सौंदर्य फीका पड़ गया। यौवन के उन्मेष से पहले ही जो सौंदर्य तन्वंगी के परिपूर्ण यौवन की चित्तोन्मादक आकर्षण शक्ति को पराजित कर सकता है वह सौंदर्य देवलोक में भी दुर्लभ है, कविकल्पना से भी परे है, अतएव अवर्णनीय है।

वह स्त्री एकाग्र मन से बालिका की रूपराशि का पान कर रही थी। उसकी कांति सुधा-धवल थी; सीढ़ियों पर चलने से उसके फूल की पंखड़ी से पैर किंचित् रक्ताभ हो गए थे। फटे-पुराने मैले-कुचैले वस्त्र उसके सौंदर्य-सागर में उद्वेलित तरंग-राशि को सीमाबद्ध करने का व्यर्थ प्रयास कर रहे थे। उन वस्त्रों में वह भस्माच्छादित अंगार जैसी जान पड़ती थी। वह स्त्री जिस समय एकाग्र मन से बालिका को देख रही थी उस समय उसकी दोनों चंचल आँखें इधर से उधर घूम रही थीं। स्त्री को चुपचाप देखकर उसने पूछा—

"तुम कौन हो, कहाँ जाओगी?"

स्त्री प्रकृतिस्थ हुई। उसने कहा—"हम लोग काशी जायँगे। रात भर के लिये तुम्हारे गाँव में मेहमान हैं।"

बालिका ने बिना किसी संकोच के पूछा—"मेहमान हो! किसके यहाँ?"

स्त्री बोली—"किसी के यहाँ नहीं। तुम्हारे गाँव के घाट पर हम लोगों की नाव बँधी है, सो हम लोग तुम्हारे गाँव के मेहमान हैं।"

इतनी देर में स्त्री ने यह लक्ष्य कर लिया कि बालिका का कंठस्वर कर्कश है। उसने थोड़ा मुँह बनाकर कहा—"यह कैसे मेहमान?"

स्त्री ने कुछ उत्तर नहीं दिया। थोड़ी देर चुप रहने के उपरांत बालिका ने पुनः पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है?"

"स्त्री ने हँसकर उत्तर दिया—"मेरा नाम है दुर्गा।"

"तुम लोग क्या कायस्थ हो?"

"ना, हम लोग ब्राह्मण हैं।"

"ठीक है। ब्राह्मण ही तो अथिति होते हैं। हमारे घर बहुत से मेहमान आते हैं और सब ब्राह्मण रहते हैं। लेकिन वह लोग तो सब आदमी रहते हैं।"

"तो क्या मैं ही पहले पहल स्त्री मेहमान आई हूँ?"

"तुम मेरे घर चलोगी क्या?"

"चलूँगी; किधर है तुम्हारा घर?"

बालिका ने तालाब के एक ओर घनी अमराइयों से घिरी एक जीर्ण शीर्ण अट्टालिका का कंकाल दिखा दिया। अब उस स्त्री ने प्रश्न करना आरंभ किया—"तुम लोग कौन हो?

उत्तर मिला—"कायस्थ।"

"तुम्हारे घर में और कौन कौन हैं?"

"बाबूजी, माँ, भैया, ईशान महाराज, जगत चाचा और राम भैया। इनमें जगत चाचा और राम भैया नौकर हैं, ये लोग ड्योढ़ी पर रहते हैं। हम लोग जब खूब बड़े आदमी थे तब राम भैया की तरह बहुत से लोग ड्योढ़ी पर रहते थे। ईशान महाराज भी हमारे नौकर हैं मगर ब्राह्मण होने से घर में ही रहते हैं।"

"तुम इस समय कहाँ जाओगी ?"

"नहाने आई थी, तालाब में उतरूँगी।"

"अभी तक नहाया क्यों नहीं ?"

"तुम्हें देख रही थी। तुम क्या अभी मेरे यहाँ चलोगी ?"

"हाँ चलो।"

"तो ठहरो, मैं नहा लूँ।"

यह कहकर बालिका जल में उतर गई। कुछ देर बाद स्त्री ने पूछा—"तुम तैर लेती हो ?"

बालिका बोली—"नहीं।"

"डूब जाओ तो ?"

"मैं नहीं डूबूँगी। मुझे सब घाटों के रास्ते मालूम हैं। जहाँ खड़ी हूँ यहाँ एक बड़ा सा पत्थर है। इसके बाद अथाह जल।"

"तैरना क्यों नहीं सीखा ?"

"किसी ने सिखाया ही नहीं। तुम जानती हो क्या ?"

"जानती हूँ।"

"मुझे सिखा दोगी ?"

"सिखा दूँगी।"

"कब ?"

"आज साँझ को।"

"साँझ को नहाने से माँ मारेगी। सबेरे आऊँ? वह देखो कौन आया?"

घूमकर देखते ही स्त्री अस्फुट स्वर से चीख उठी। घाट की सीढ़ी पर दो आदमी खड़े थे। उनमें से एक ने कहा—

दुर्गा! यहाँ आओ। बाबू जी कहाँ हैं?

बहुत धीरे धीरे स्त्री ऊपर आई और कुछ देर चुपचाप खड़ी रही। उस आदमी ने पुनः पूछा—"बाबू जी कहाँ हैं?"

"गाँव में गए हैं।"

यह कह कर वह स्त्री सिर झुकाए पैर की उँगलिया से मिट्टी कुरेदने लगी। कुछ देर बाद धीरे धीरे, बिना सिर उठाए, उसने दूसरे व्यक्ति से पूछा—"भूप कहाँ है भैया? अच्छा है न?"

असीम ने कहा—"अच्छा है, बहन! मुझे मालूम न था कि तुम लोग इसी ओर हो। जानता तो उसे अवश्य साथ लाता। लौटते ही उसे भेज दूँगा। दुर्गा! हम लोग इस समय बादशाह के पौत्र के आश्रय में हैं। समय बहुत उलटा है। देखो बहन, जो कुछ हुआ है, मैंने सब सुना है। क्या किया जाय, सब प्रारब्ध की बात है। सब अनर्थों की जड़ तुम्हारे स्वामी की दी हुई मुहरें ही हैं। अगर तुम्हारे मन में दुःख न हो तो भूप के हाथ उन्हें भेजवा दूँ।"

"ना भैया! जो दे दिया उसे वापस नहीं लेना चाहती। उसे तुम भूप के इच्छानुसार व्यय करना।"

अकस्मात् तालाब की ओर देख दुर्गा देवी चीत्कार कर उठी। अस्फुट चीत्कार के साथ ही सुनाई पड़ा—"लड़की तैरना नहीं जानती···।"

दो तीन छलाँग में असीम घाट की अंतिम सीढ़ी पर पहुँच गए

और मुगलई पोशाक के कई एक कपड़े जल्दी जल्दी उतारकर पानी में धँस पड़े। घाट से थोड़ी ही दूर पर कमलवन के निकट उस समय भी बुलबुले उठ रहे थे। असीम ने वहीं डुब्बी लगाई। सुदर्शन और उनकी बहन साँस रोके वहीं खड़ी देखती रहीं।

एक बार, दो बार, तीन बार विफल होकर चौथी बार जब असीम राय उस अचेत बालिका को कंधे पर लादे घाट किनारे आए तो दुर्गा और सुदर्शन ने दौड़ कर उन्हें थाम लिया। बहुत चेष्टा और यत्न के उपरांत उसके हृदय में पुनः धड़कन आरंभ हुई। तब उसे सुदर्शन और दुर्गा के पास छोड़कर असीम उसके पिता को संवाद देने चले।

तालाब के उस पार एक सूखे इमली के पेड़ के नीचे वही दुबला पतला काला ब्राह्मण बैठा हुआ था। उन्हें आते हुए देख वह खड़ा हो गया और हँसकर बोला—"कहिए राय साहब! रस्सी लेकर आपने खुद गले में डाल ली?"

असीम ने विस्मित होकर पूछा—"सो कैसे महाराज!"

"जो कुछ किया है उसका परिणाम अगर जानते तो उसे तालाब के गर्भ में ही रहने देते।"

"मुझे भी भयभीत करने चले हो?"

"तुम्हें भयभीत करनेवाला व्यक्ति अभी उत्पन्न नहीं हुआ। पर जान रखो असीम राय कि यही लड़की तुम्हारे गले की फाँसी है। बाद में मुझे मत दोष देना। जब गले में रस्सी की जकड़ मालूम हो तो याद करना कि किसी ब्राह्मण ने मुझे बहुत पहले सावधान कर दिया था। जाने दो इसे; इस गाँव में विवाह-योग्य कुलीन कन्या है या नहीं, बता सकते हो?"

"महाराज तुम पागल हो और नहीं भी हो! तुम्हारे मन की

असली बात जान लेना भी विपत्ति है। तुम क्या सचमुच फिर इस आयु में विवाह करना चाहते हो?"

"रुपए पैसे का बड़ा टोटा है। तुम क्या जानो राय साहब। अब दो एक ब्याह किए बिना संसारयात्रा को चलाना बड़ा कठिन हो जायगा।"

"अच्छा तो फिर मेरे साथ आओ।"

ब्राह्मण ने असीम के साथ ग्राम सीमा में प्रवेश किया।

अठारहवाँ परिच्छेद

विवाह संबंध

समाचार पाकर उस बालिका के सगे संबधी तालाब किनारे दौड़ पड़े। बहुत देर तक उपचार करने पर बालिका को होश हुआ। दूसरे लोग जितनी देर बालिका को होश में लाने की चेष्टा कर रहे थे उतनी देर तक असीम घाट से थोड़ा हटकर तालाब किनारे बैठ उस ब्राह्मण के साथ बातचीत करते रहे। उन्होंने पूछा—"महाराज, क्या सचमुच ब्याह करना चाहते हो ?"

विरक्त होकर ब्राह्मण बोला—"न चाहकर भी क्या आदमी इतनी बार झूठ बोल सकता है ?"

"कितने ब्याह किए हैं ?"

"क्या साँसत है ! एक प्रश्न का उत्तर कितनी बार तुम्हें दूँ ? चालीस पचास हुए होंगे।"

"तुम्हारी दो कोड़ी पत्नियाँ क्या जीवित हैं ?"

"कितनी बची हुई हैं यह नहीं कह सकता क्योंकि विवाह के बाद एक को छोड़ और किसी से मुलाकात हुई या नहीं सो याद नहीं है।"

"बड़ी विचित्र बात है कि चालीस स्त्रियों में से एक के अतिरिक्त और किसी से तुम्हारा दूसरी बार साक्षात् नहीं हुआ ?"

"बाद में कोई जरूरत नहीं पड़ी।"

"तो ब्याह क्यों किया था?"

"रुपए के लिये।"

"शाहजादा कहते थे कि तुम किसी समय दूसरे उपाय से प्रभूत अर्थोपाजन किया करते थे। वह मार्ग छोड़कर तुम क्यों इस निष्ठुर, घृणित मार्ग से अर्थोपार्जन करना पसंद करते हो।"

"निष्ठुर, घृणित? असीम राय! तुम बच्चे हो। तुम इस सनातन कुलीन प्रथा की मर्यादा क्या समझोगे? समझा था बल्लाल ने, जो जान पड़ता है राजा होकर भी जीवन पर्यंत नारी चरित्र का ही अध्ययन करता रहा, अन्यथा विष दूर करने की इस अपूर्व प्रथा का आविष्कार वह नहीं कर पाता।"

"जिन लड़कियों से विवाह करते हो उन्हें देखकर तुम्हें दया नहीं आती?"

"दया! बहुत दिनों के बाद तुमने एक नई बात सुनाई असीम राय! यौवन के आरंभ में संभवतः एक बार यह बात सुनी थी, उसके बाद बहुत दिनों तक नहीं सुनी। दया! इस नाम का एक शब्द था तो सही, किंतु नारी जाति के लिये उसका प्रयोग होना चाहिए वा नहीं यह स्मरण नहीं। दीन, दुखी, अंधे, उतावले और पंगु को देखने पर अब भी दया होती है, लेकिन फन काढ़कर काटने को तैयार सर्प को देख जितनी दया होती है, नारी को देखने से उतनी सी भी दया नहीं होती असीम राय?"

"क्या कह रहे हो महाराज, दया और ममता ने ही इस संसार में नारी की मूर्ति धारण की है। कठोर संसार यात्रा में नारी का स्नेह, प्रीति और भक्ति ही मानव जीवन का एकमात्र अवलंब है...।"

"लड़कपन में मैंने भी यही पढ़ा था। तुम संभवतः वही पाठ दुहरा रहे हो ? भाई मेरे ! एक दिन था जब विक्रमपुर में मेरे समान उच्चपदस्थ संभ्रांत मनुष्य दूसरा नहीं था। मैं बादशाह का मनसबदार और प्रांत का प्रमुख व्यक्ति था; विद्वत्समाज और ब्राह्मण-समाज में अग्रगण्य था। संसार की जो कुछ सुख-संपदा है, मुझे किसी का भी अभाव नहीं था; लेकिन आज मैं कौन हूँ ? श्मशानवासी, चिता पर भोजन बनानेवाला, पास में तीसरा वस्त्र नहीं। क्यों, बता सकते हो ? असीम, दया ! असीम राय ! करुणा, दया और स्नेह की प्रतिमूर्ति, मानव-समाज की एकमात्र अवलंब नारी की कृपा से !"

"तुम पागल हो।"

"यह बात तुम्हारे पहले ही बहुत से लोग कह चुके हैं।"

"तुम क्या कहते थे, कहो।"

"तुम्हें विशेष कुछ कहने का कोई परिणाम न होगा; कारण, तुम रमणी के रूप पर मुग्ध हो। मोहक सौंदर्य के नीरव अंतराल में जो राक्षसी मूर्ति छिपी रहती है उसे तुमने देखा नहीं। भाई मेरे ! वे दिन भी थे जब मैं भी तुम्हारी तरह लंबे, काले बालों में सुगंधित तेल डाले, सुगंधित पुष्पों की माला पहने, मोहिनी के कृपाकटाक्ष की भीख माँगता था। उस समय मैं भी सोचता था कि जगत् में रमणी-रूप के समान रमणीय और कुछ नहीं हैं; रमणी की कमनीय माधुरी के समक्ष जगत् की सब शोभा पराजित है। मैंने भी विश्वास किया था असीम राय ! रमणी-रूप पर मुग्ध होकर जिसके साथ पहले पहल विवाह किया था उसके विष से मेरे संसार की ऐश्वर्य-संपदा जर्जर हो गई, मेरी भोगेच्छा परितृप्त हो गई। अब मोह दूर हो गया है। तुम्हें मना करता हूँ भाई ! रत्नहार के धोखे से गले में विषधर मत डालो। मगर तुम्हें समझाना वृथा है। इतने दिनों तक संसार में जिस किसी से मिला उसी को समझाया, लेकिन किसी ने कान नहीं दिया।"

ब्राह्मण की बात शेष होने पर असीम कुछ देर तक स्तंभित रहे। फिर धीरे धीरे पूछा—"क्या कहा महाराज, पहले जिसके साथ विवाह किया था•••?"

"हाँ, मेरी अर्द्धांगिनी, सहधर्मिणी और कवि कल्पना उसे जो कुछ कहती है वह सब! बादशाही वृत्ति छोड़कर जीविका निर्वाह के लिये यह हीन वृत्ति क्यों अपनाई है, जानते हो? हिंसा! हिंसा वृत्ति को परितृप्त करने के लिये विवाह करके फिर कभी उस स्त्री का मुँह नहीं देखता। इससे होता क्या है, जानते हो? तुम्हारी तरह अब भी जो लोग रमणी-रूप पर मुग्ध अथवा दया और ममता के मोह द्वारा प्रतारित हैं उनके सर्वनाश का मार्ग बंद करता हूँ। जिसके साथ विवाह कर लिया है वह तो अब दुबारा ब्याह कर नहीं पाएगी। तुम्हारे जैसे अथवा मेरे जैसे किसी और की प्रतारणा नहीं कर सकेगी। कोई भी उसे अर्द्धांगिनी के रूप में ग्रहण करके नवयौवन का अपरिसीम प्रेम कुपात्र में स्थापित नहीं कर पाएगा। यही मेरा आनंद है। इसी आनंद का उपभोग करने के लिये जीविका निर्वाह की इस वृत्ति का अवलंबन किया है। ब्याह करता हूँ, कुछ द्रव्य प्राप्त करता हूँ, उसके बाद जितनी जल्दी हो सकता है जान छोड़कर उस स्थान से भागता हूँ—जीवन भर फिर कभी उस रास्ते पर पैर नहीं रखता।"

इसी समय बालिका के पिता ने आकर असीम का हाथ पकड़ लिया। असीम और वह ब्राह्मण परस्पर बातचीत में इतने डूब गए थे कि किसी को उनके आने की आहट नहीं सुनाई पड़ी। बालिका के पिता को देखते ही ब्राह्मण उठकर खड़ा हो गया और अपने अट्टहास से उस स्थान को प्रतिध्वनित करके बोला—"भैया, तुम्हारी फाँसी का फंदा तैयार है, प्राणांत का निमंत्रण आया है। अब विलंब नहीं।"

लड़की के पिता बोले—"बाबू जी, शैल मेरी एकमात्र संतान है।

आपने उसके प्राण बचाए हैं। मेरे पास आपके लिये अदेय कुछ भी नहीं। मैं नितांत दरिद्र, सामर्थ्यहीन हूँ। यदि अनुग्रह करके मेरी कुटिया में पदार्पण कीजिए तो कृतार्थ हो जाऊँ।"

ब्राह्मण बोल उठा—"जायगा ही; अवश्य जायगा। नियति का आकर्षण कौन रोक सकता है? एक बार, दो बार, बीस बार जायगा। जिस घड़ी वह तुम्हारे घर में पदार्पण करेगा वह घड़ी इसके हृदय पर चिरकाल के लिये अंकित हो जायगी।"

"पागल महाराज! यह सब क्या कह रहे हो? देखिए बाबू जी, यह पागल ब्राह्मण मूर्ख नहीं है; आदमी भी भला है। बीमारी से माथा खराब हो गया है। महाराज, दो चार अच्छी अच्छी बातें भी सुनाओ। ज्यादा संस्कृत मत बोलना, नहीं तो समझ न सकूँगा। आज बाबू जी की कृपा से शैल रानी का बड़ा भारी ग्रह कट गया।"

"बड़ी अच्छी बात है। आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारी कन्या चिरजीविनी हो जन्म भर लंकादहन करती रहे।"

"अरे! फिर कैसी बातें, महाराज जी! दहन माने तो जलाना होता है; यह क्या अच्छी बात हुई?"

"हमेशा खराब नहीं होती।"

"बाबू जी इस पागल ब्राह्मण से बातों में पार पाना संभव नहीं। भट्टाचार्य महाराज आदि उठ गए हैं। आप एक बार चलिए। ये पगले महाराज क्या मेरे यहाँ एक बार चरणों की धूलि देंगे?"

"मूल्य अगर मिले तो कायस्थ के यहाँ धूलि देने में कोई हानि नहीं है।"

"दूँगा महाराज! आज बड़े आनंद का दिन है। नकद एक रुपया प्रणामी दूँगा।"

"तुम्हारे पास प्रणामी लायक धन नहीं है।"

"और कहाँ क्या पाऊँगा, महाराज ? अब क्या मेरा वह समय रह गया है ?"

"और एक काम कर सकते हो ? गाँव में क्या किसी कुलीन ब्राह्मण के यहाँ कन्या नहीं है ?"

"है क्यों नहीं । बहुतेरी हैं महाराज, जितनी चाहिए उतनी । आप क्या कुलीन हैं ?"

"फुलिया का मुखर्जी हूँ, विष्णु पंडित का बेटा ।"

"ठीक । यज्ञेश्वर चट्टोपाध्याय कल संध्या समय मेरे चंडीमंडप में बैठे बड़े दुखी हो रहे थे । देखिए, अगर आपकी कृपा से कन्यादान से उनका उद्धार हो जाय !"

मारे आनंद के उछलकर ब्राह्मण बोला—"चलो, चलो; अब विलंब नहीं ।"

———

उन्नीसवाँ परिच्छेद

राजमित्र

बहुत तड़के एक हरकारा आकर गंगा किनारे के एक छोटे से खेमे में प्रविष्ट हुआ। छावनी उस समय नीरव थी। दो एक को छोड़ सभी सोए हुए थे। उस खेमे में सिर से पैर तक चादर ताने तीन आदमी सो रहे थे। हरकारे ने उनमें से एक आदमी को धीरे से जगाया और संकेत से ही खेमे के बाहर चलने का अनुरोध किया। बड़ी सावधानी से वह आदमी बाहर आया और पूछने लगा—"मामला क्या है?"

अभिवादन करके हरकारे ने कहा—"शाहजादा ने तलब किया है।"

"इतनी जल्दी नींद खुल गई?"

"आज वे बड़े तड़के उठ बैठे और गुसलखाने में आपकी राह देख रहे हैं।"

"वहाँ और कौन कौन हैं?"

"और कोई नहीं है।"

"तो क्या शाहजादा ने अकेले मुझे ही तलब किया है?"

"जी जनाब! और उन्होंने यह भी कहा है कि आप अकेले गुसलखाने में जा रहे हैं, यह बात किसी को मालूम न हो।"

छावनी से बाहर हो, सूतीगाँव का चक्कर काटकर दोनों ने सम्राट्-पौत्र के पट्टावास में प्रवेश किया। गुसलखाने के तंबू के बाहर फर्रुखसियर एक छोटी सी चौकी पर बैठे थे। आगंतुक को देखकर वे खेमे के भीतर चले गए। आगंतुक के भीतर चले जाने पर हरकारे ने खेमे का द्वार बंद कर दिया। गुसलखाने के तंबू में छोटी बड़ी बहुत सी काठ की चौकियाँ पड़ी हुई थीं। शाहजादा एक चौकी पर बैठ गए और आगंतुक को भी बैठने की आज्ञा दी। उनके बैठ जाने पर फर्रुखसियर ने पूछा—"तुम्हें क्यों बुलाया है, जानते हो ?"

आगंतुक ने कहा—"जी नहीं।"

"समाचार अच्छे नहीं हैं। बादशाह का अंतकाल आ पहुँचा है। पिता जी ने मुझे लाहौर जाने की आज्ञा दी है।"

"बड़ी अच्छी बात है। आपके पिता सिंहासन के उत्तराधिकारी हैं, इस विषय में हिंदुस्तान भर में किसी को संदेह नहीं है। फिर क्यों समाचार अच्छे नहीं हैं ?"

"देखो राय जी ! हिंदुस्तान के सिंहासन पर कब कौन बैठेगा इसे जो समस्त सिंहासनों के स्वामी हैं उनके अतिरिक्त और कोई नहीं बता सकता।"

"क्यों ? सुना है, आपके पिता जी बादशाह के प्रिय पुत्र हैं।"

"दाराशिकोह का नाम सुना है ? दारा की अपेक्षा शाहजहाँ को कौन अधिक प्रिय था ? मगर देखो भाग्यचक्र के फेर से मयूरसिंहासन के पैरों तले दारा का छिन्न मस्तक ही लुढ़कता फिरा। वृद्धावस्था में औरंगजेब को उदयपुरी बेगम का पुत्र कामबख्श ही सबसे अधिक प्रिय था, किंतु वही कामबख्श मयूरसिंहासन की छाया के पास भी नहीं फटकने पाया। और शाहआलम बादशाह के प्रिय पुत्र उनकी मृत्यु के उपरांत सिंहासन लाभ करेंगे, यह कौन कह सकता है ?"

"ठीक बात है शाहजादा !"

"देखो राय जी, विपत्ति में पड़, रास्ता भूलकर तुम लोगों का ही आश्रय पाया था; इसलिये इस नई विपत्ति का समाचार पाकर तुम लोगों को बुलाया है।"

"आपके ऊपर विपत्ति कैसी, शाहजादा ? आपके पिता के समान लोकबल, अर्थबल वा बुद्धिबल बादशाह के दूसरे किसी पुत्र में नहीं। मैं तो आपके अमंगल की कोई आशंका नहीं देखता !"

"राय जी, शाहजहाँ बादशाह के प्यारे बेटे दाराशिकोह के पास अर्थबल, लोकबल, बुद्धिबल—किसी बल का भी अभाव नहीं था, तब क्यों उसका छिन्न मस्तक छोटे भाई के पैरों तले रौंदा गया ?"

"सो तो नहीं कह सकता।"

"क्यों, जानते हो ? इस विशाल संसार में उसका कोई भी सच्चा मित्र नहीं था।"

"यह कैसी बात ?"

"देखो राय जी, राजवंश में जो जन्म ग्रहण करते हैं उनके समान हतभाग्य इस पृथ्वी में दूसरा नहीं। भ्रातृस्नेह, पुत्रस्नेह, पत्नी-प्रीति, वात्सल्य या भक्ति उन्हें कभी नहीं मिलती। आत्मीय-स्वजन, बंधु-बांधव सभी स्वार्थ के लिये उसे घेरे रहते हैं। जब तक भाग्यलक्ष्मी उसके अनुकूल रहती हैं तब तक उसे आत्मीय-स्वजनों, बंधुबांधवों का अभाव नहीं होता, लेकिन जब लक्ष्मी चंचला हो जाती हैं तब सभी डाल के सूखे हुए पत्ते की तरह झड़ जाते हैं।"

"यह सब अदृष्ट है, शाहजादा ! हम हिंदू लोग घोर अदृष्टवादी होते हैं। हमारे धर्मशास्त्र में कहा है कि कोई भी घटना मनुष्य के वश की नहीं। मैं जो यहाँ बैठा आपसे बातें कर रहा हूँ, यह भी विधि का ही लेख है।"

"राय जी, मुसलमान होते हुए हम लोग इस देश में आकर अधिकांश तुम लोगों की तरह हो गए हैं। हम लोग भी इसपर विश्वास करते हैं। इसीलिये चगताई वंश का कोई भी व्यक्ति ज्योतिषी के परामर्श के बिना कोई काम नहीं करता। लेकिन देखो, जहाज डूब जाने पर जो आदमी समुद्र में पड़ जाता है वह यह जानता है कि अब निस्तार नहीं, लेकिन फिर भी वह यथासंभव आत्मरक्षा की चेष्टा करता है और जब तक चेतना रहती है तब तक जल के ऊपर रहने का प्रयत्न करता है। मैंने भी आत्मरक्षा की चेष्टा के लिये ही तुम्हारा आह्वान किया है।"

"आज्ञा दीजिए।"

"देखो राय जी! तुम दोनों भाइयों के साथ पहले पहल जिस दिन साक्षात्कार हुआ था उस दिन तुम लोगों को यह पता नहीं था कि मैं कौन हूँ; तुम लोगों ने द्रव्य या संमान के लोभ से मेरी सहायता नहीं की थी। इसीलिये मुझे आशा होती है कि मेरे दुर्दिन में द्रव्य वा संमान के लोभ में पड़कर कम से कम तुम दोनों आदमी विश्वासघात नहीं करोगे। देखो, समझ आने के साथ ही चगताई वंश के पुरुष आदमी पहचानने की शिक्षा पाने लगते हैं। तुम लोगों को मैं देखते ही पहचान गया था। मेरा परिचय पाने पर भी तुम लोगों ने मेरे साथ रहना स्वीकार नहीं किया। आज तक एक बनिए के रुपए को छोड़कर तुममें से किसी ने मुझसे कुछ माँगा नहीं। अहमदबेग से मैंने सुना है कि अपना खर्च तुम लोग स्वयं चलाते हो। राय जी! इस उर्दू[1] भर में तुम लोगों की तरह निःस्वार्थ, निर्लोभ मित्र मेरा और कोई नहीं है। तुम्हें मित्र कहकर इसलिये संभाषण करता हूँ कि

---

१ फौज की छावनी।

अभी तक तुम लोग बादशाह अथवा सूबेदार के नौकर नहीं हुए हो। मित्रता की मेरी भेंट तुम ग्रहण करोगे ?"

"यह कैसी आज्ञा दे रहे हैं शाहजादा ? आप शाहजादा अजीमुश्शान के पुत्र और बादशाह के पौत्र हैं। बादशाह के देहांत के बाद आपके पिता ही मयूरसिंहासन पर बैठेंगे, यह सबको ज्ञात है। हिंदुस्तान के बड़े से बड़े अमीर उमरा आपकी कृपादृष्टि के लिये लालायित रहते हैं, आपकी मित्रता•••?"

"रायजी, सो मैं जानता हूँ। इसी कारण तुमसे कहता था कि वह मित्रता मेरे पद, मेरे सौभाग्य के साथ है, अजीमुश्शान के पुत्र के साथ है, बादशाह के पौत्र के साथ है; लेकिन एक सिर, दो हाथ, दो पैर वाले फर्रुखसियर के साथ नहीं। अगर ऐसा हो कि भाग्य के फेर से अजीमुश्शान राज्य न पाएँ तो मेरे इन हजारों मित्रों में से कितने सच्चे मित्र बच रहेंगे, यह मैं नहीं कह सकता। देखो राय जी, मेरे पिता बादशाह के ज्येष्ठ पुत्र नहीं हैं। मैं भी अपने पिता का ज्येष्ठ पुत्र नहीं। चगताई वंश में छोटे लड़के की क्या दशा होती है यह किसी से छिपा नहीं है। इसीलिये भविष्य का विचार कर बड़ी आशा से मित्रता की भीख माँग रहा हूँ। मेरी प्रार्थना पूरी करोगे ?"

"शाहजादा ! मैं दरिद्र, अनाथ और गृहहीन हूँ। संसार में हम दोनों के लिये आपसे बढ़कर और कोई नहीं है। फिर भला हमारे पास ऐसा क्या हो सकता है जो आपके लिये अदेय हो। आपको शाहजादा या सम्राट् का पौत्र समझकर नहीं कहता। जो व्यक्ति राह के भिखारी को भिखारी जानते हुए भी उठाकर छाती से लगा लेता है, भिखारी के पास उसके लिये अदेय क्या होगा ? ऐसा भिखारी यदि अपने आश्रय-दाता का कोई अनुरोध नहीं मानता तो उसका सा अकृतज्ञ कालसर्प के अतिरिक्त संसार में दूसरा नहीं।"

"राय जी, संसार में मनुष्यमात्र कालसर्प है; कृतज्ञ तो कोई विरला ही होता है। देखो, मैं भी स्वार्थी हूँ। तुम्हारी तरह निःस्वार्थ वा उदाराशय नहीं हूँ। स्वार्थ के लिये ही तुमसे मित्रता की प्रार्थना कर रहा हूँ। आशा करता हूँ कि तुम्हारा सा मित्र पाकर अपने दुर्दिन में विश्वासघातियों के हाथ पड़ने से बचा रहूँगा।"

"शाहजादा, मैं दरिद्र और सामर्थ्यहीन अवश्य हूँ लेकिन सच्चे हृदय से कह सकता हूँ कि मेरे वंश में अब तक कोई विश्वासघातक नहीं हुआ; और मेरे शरीर में जब तक शक्ति रहेगी, आपके पैरों में काँटे तक चुभने न दूँगा।"

———

बीसवाँ परिच्छेद

विवाह

भागीरथी के किनारे उस तालाब से थोड़ी दूर पर एक संपन्न गृहस्थ के यहाँ आज बड़ा समारोह है। गृहस्थ ब्राह्मण हैं। उनकी एकमात्र कन्या का आज विवाह है। दो सौ वर्ष पहले पल्लीगाँव में संपन्न गृहस्थ के लिये जो कुछ आवश्यक था, ब्राह्मण के पास वह सब कुछ विद्यमान था। उनका नाम है विश्वनाथ चक्रवर्त्ती। उनके पिता रामनाथ राज-दरबार के विश्वस्त कर्मचारी थे और उन्होंने बहुत द्रव्य कमाया था। कुलीन विश्वनाथ ने कुलीन कन्या का पाणिग्रहण किया था, इसीलिये संपत्ति और सामर्थ्य का अभाव न होने पर भी वे अपनी एकमात्र कन्या सती का विवाह करने में सफल नहीं हो सके थे। जिस वंश में वे कन्या-दान कर सकते थे उस वंश के पात्र पश्चिमी बंगाल में तो थे ही नहीं, पूर्वी बंगाल में भी बहुत कम थे। इसीलिये बहुत खोज ढूँढ़ करने पर भी विश्वनाथ को कन्या के लिये कोई योग्य वर नहीं मिला।

भाग्यलिपि का रहस्य भेद करना मनुष्य के लिये संभव नहीं। विश्वनाथ दस वर्ष तक जिस वंश के लड़के की खोज करते रहे आज उसी वंश का एक कुलीन लड़का विवाहार्थी होकर उनके द्वार पर आया है। भगवान जब प्रसन्न होते हैं तब आदमी जो चाहता है वह स्वयं उसके पास तक चला आता है। जिस दिन लड़के से साक्षात् हुआ उस

दिन मुहूर्त्त अच्छा था और उसके दूसरे दिन का मुहूर्त्त भी विवाह के लिये बहुत शुभ था। अविलंब विश्वनाथ ने कन्या के विवाह का आयोजन किया। चंचला लक्ष्मी कुछ दिनों के लिये उनके यहाँ प्रतिष्ठापित हो गई थीं अतएव उन्हें धन का अभाव नहीं था। वर ने जितना धन माँगा था उसका दसगुना देने का वादा करके उन्होंने दूसरे ही दिन कन्यादान करने की व्यवस्था कर ली। आज विश्वनाथ की कन्या का विवाह है।

दिन भर वह छोटा सा गाँव मंगल वाद्य से मुखरित होता रहा। सायंकाल जगमगाते हुए सभामंडप में गाँव के विशिष्ट लोग एकत्र हुए। बड़े भारी ब्राह्मण भोजन का आयोजन था। वर सभामंडप में गद्दी पर आसीन था। वैवाहिक मुहूर्त्त संनिकट था। घर के भीतर से कुछ स्त्रियाँ खिड़कियों में से वर को झाँक रही थीं। वे सभी वृद्धा और विश्वनाथ की आत्मीया थीं। उनमें से एक ने कहा—"किसने कहा कि वर बूढ़ा है?"

दूसरी बोली—"बूढ़ा कहाँ है? हरेश्वर चक्रवर्ती की बुआ का ब्याह अलबत एक पैर चिता पर रखे मुरदे के साथ हुआ था। वर को आसन पर पकड़कर बैठना पड़ा था और शुभदृष्टि[1] के समय तो वर को तीन तीन आदमी पकड़े हुए थे। ब्याह के बाद एक मास भी नहीं बीता।"

तीसरी ने कहा—"अब जो कहो दीदी, वर जब पहले आया था तब बूढ़ा दिखाई पड़ता था। अब तो सज बजकर आदमी जैसा दिखाई देता है। हमारी सती जैसी रूपवती है वैसी ही गुणवती भी। तुम लोग चाहे जो कहो, लड़की के योग्य वर है नहीं।"

१—बंगाल का वैवाहिक कृत्य विशेष जिसमें वर कन्या एक दूसरे का दर्शन करते हैं। —अनु०

पहलेवाली स्त्री बिगड़ पड़ी—"तुम लोग कैसी हो जी! कुलीन घर की लड़की को इससे अच्छा वर मिलता कहाँ है? कुलीन वर क्या रूप देखकर पसंद किया जाता है? तुम लोग कैसी उलटी बातें कर रही हो? हमारी सती कुलीन घर की है। कुलीन कन्या को सनातन से जैसा वर मिलता आया है उसकी तुलना में हमारी लड़की का वर बहुत अच्छा है।"

दूसरी स्त्री ने बहुत धीरे धीरे कहा—"देखो दीदी, जदु नाई कहता था कि उस पार सूतीगावँ में मेरी ससुराल है। कल मैं ससुराल गया था और सुन आया हूँ कि वर सूतीगावँ में तीन दिन तक रहा। यह किसी के घर नहीं ठहरा; रास्ते में भीख माँगता था और श्मशान में पेड़ तले सो रहता था।"

पहले वाली स्त्री बोली—"तो उससे क्या हुआ? वर कुलीन है। ब्याह करना कुलीनों का कर्त्तव्य है। विश्वनाथ भैया कहते थे कि वर तिलक में सवा सौ रुपए माँगता था। उन्होंने उसका दसगुना देना स्वीकार करके विवाह पक्का कर लिया। फकीर संन्यासी ही भिक्षा माँगते और श्मशान में सोते हैं न? जो वर तिलक के रुपए की बात नहीं भूला वह संन्यासी कैसा? यह बातें हैं। ब्याह में न जाने कितनी बातें उठती हैं।"

यथासमय गाँव के बड़े बूढ़ों की आज्ञा लेकर विश्वनाथ चक्रवर्ती ने कन्यादान किया। ब्राह्मण मंडली भोजनादि से परितृप्त हो अपने अपने घर गई। घर की स्त्रियाँ वर वधू को भीतर ले जाकर उत्सव मनाने लगीं। रात का तीसरा पहर बीतने पर हँसी ठिठोली से निवृत्त होकर अनेक स्त्रियाँ भी अलसाई आँखें लिए अपने अपने घर लौट गईं। जो रह गईं वे भी एक एक कर के सो गईं। सबको सोता देखकर वर ने कन्या का अंगस्पर्श किया। स्पर्श मात्र से सती सजग हो गई। वर ने उससे कहा—"उठकर मेरे साथ चलो।"

बिना कुछ कहे वधू ने वर का अनुगमन किया। घर के आँगन में आकर वर ने पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है?"

काँपते कंठ से नववधू बोली—"मेरा नाम सती है।"

सुनते ही अत्यंत क्रुद्ध होकर वर ने कहा—"झूठी बात है कि स्त्रियाँ सती होती हैं। असंभव। तू अवश्य असती है।"

क्षीण कंठ से वधू बोली—"नहीं।"

उसका उत्तर सुनकर वर अट्टहास कर उठा। वधू के रोंगटे खड़े हो गए। वर ने कहा—"तुझसे क्यों ब्याह किया है, जानती है?"

वधू ने और क्षीण कंठ से कहा—"नहीं, कैसे जानूँगी?"

वर फिर हँसा; बोला—"प्रतिहिंसा के लिये।"

भीत चकित वधू ने कातर कंठ से जिज्ञासा की—"किसकी प्रतिहिंसा?"

"प्रतिहिंसा मेरे सर्वनाश की! यौवन के आरंभ में एक दिन तेरी तरह एक असती को देख मोहित हो गया था। तब मेरे पास सब कुछ था—रूप था, वैभव था, आत्मीय स्वजन थे; देश के दस आदमियों में मैं भी एक आदमी था। यौवन के आरंभ की समस्त आकुलता देकर उसे हृदय में प्रतिष्ठित किया था। तब उसे देवी समझता था; देवी समझकर सब कुछ उसपर निछावर कर दिया था। उसकी कुहक में मुग्ध होकर कुछ दिन बड़े सुख से रहा। सोचा था, सारा जीवन शायद इसी तरह कट जायगा; जीवन शायद सुख की सेज है—काँटों-भरा ऊबड़खाबड़ रास्ता नहीं। वह डाकिनी, कालसर्पिणी है, यह समझ नहीं सका। अब समझा है। मेरे सब कुछ की, मेरे हृदय की समस्त पूजा की उपेक्षा करके उसने

क्या किया, जानती है ? उसने अपना सब कुछ एक दूसरे आदमी को समर्पित कर दिया। वह जब हँस हँसकर मुझसे बातें करती थी तब मन ही मन मेरी मृत्यु की कामना किया करती थी। अपने उभड़ते यौवन के परिपूर्ण हृदय का सारा प्रेम देकर जब मैं उसका ध्यान करता था तब वह दूसरे का चिंतन करती होती। पहले मैं अंधा था। जिस दिन आँखों की ज्योति लौट आई उसी दिन समझ गया कि स्त्री मात्र द्विचारिणी होती हैं। उसी दिन से मैं भिखारी हूँ—रूपहीन, गुणहीन, द्रव्यहीन, मित्रहीन। उसी दिन से मैं श्मशान-वासी, चिताग्नि पर भोजन बनानेवाला, प्रतिहिंसाकांक्षी हूँ। प्रतिहिंसा ही मेरे जीवन का एकमात्र व्रत है। तेरे साथ विवाह किया है, लेकिन जीवन में फिर कभी तेरा मुँह न देखूँगा। तू जीवन भर तुषानल में जलती रहेगी—यही मेरी प्रतिहिंसा है।"

नववधू पत्ते की तरह काँपने लगी। साहस करके उसने कातर कंठ से पूछा—"मेरा अपराध क्या है?"

"स्त्री होना ही तेरा अपराध है। स्त्रीमात्र असती, विश्वासघातिनी होती हैं।"

वधू ने और क्षीण कंठ से पूछा—"सभी स्त्रियाँ क्या एक ही तरह की होती हैं?"

वर गरज उठा—"साँप साँप में अंतर कैसा? स्त्रियाँ भी वैसी ही हैं। तुझसे पहले बहुत सा विवाह किया है। क्यों, जानती है? इसलिये कि कोई दूसरा तुम लोगों का विश्वास करके विष की यंत्रणा में मेरी तरह श्मशानवासी बना घूमता न फिरे। तेरे साथ ब्याह कर लिया है; अब और तो कोई तेरे साथ ब्याह करेगा नहीं। सब समझेंगे कि तू कुलटा है।"

तत्काल व्यथित किंतु दृढ़ कंठ से नववधू ने कहा—"ना, मैं सती हूँ।"

क्रुद्ध और विक्षिप्त वर वधू को लात मारकर घर से बाहर हो गया। वधू मूर्छित होकर गिर पड़ी।

दूसरे दिन प्रातःकाल घर के आँगन में वर का दुपट्टा और मूर्छिता वधू को देखकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। बहुत खोज ढूँढ़ हुई पर वर का पता नहीं चला। वधू से मूर्छित होने का कारण पूछने पर किसी का कोई उत्तर नहीं मिला।

———

इक्कीसवाँ परिच्छेद

नर्त्तकी

पटना शहर के एक भाग में गृहस्थों की बस्ती के बीच एक वृद्धा वेश्या रहती थी। उसका नाम मोतिया था। वेश्या होने पर भी लोग उससे संतुष्ट थे क्योंकि उसके घर पर कभी अनाचार होते नहीं देखा गया। यौवन शेष होने के पहले ही मोतिया ने वेश्यावृत्ति छोड़ दी थी किंतु फिर भी गाने बजाने का कार्य करती थी। प्रौढ़ा नर्त्तकियों का समादर आजकल नहीं होता--उस समय भी नहीं होता था। महफिल न जुटने पर मोतिया वेश्याओं को नाचने गाने की शिक्षा देने लगी। पटना निवासी मोतिया बाई को भूल गए थे किंतु मोतिया उस्तानी को सभी जानते थे। उसका यौवन पूर्णतः समाप्त होने के पहले ही एक पठान अहदी ने उसके प्रेम में पड़कर उसी के घर आश्रय ले लिया था। मोतिया को एक कन्या हुई थी। लोगों से मोतिया कहा करती थी कि पठान ने मेरे साथ निकाह किया है लेकिन पठान से कोई पूछता तो वह थूक देता और बड़ी अवज्ञा से कहता—"कसबी से निकाह ? तोबा, तोबा !" फिर भी बुड्ढा पठान मोतिया को छोड़कर अन्यत्र जा नहीं पाता था।

मोतिया की लड़की का नाम मुन्नी था। मुन्नी को देखकर विश्वास नहीं होता था कि यह वेश्या की लड़की है। सभी कहते—"गोबर में कहीं कमल खिला है!" मोतिया संगीत शास्त्र में पारंगत थी और बड़े परिश्रम से उसने अपनी लड़की को नाचना गाना सिखाया था। उठती जवानी की रूपसी कलावती मुन्नी समस्त पटनावासियों की अत्यंत प्रिय वेश्या थी। जिस समय की बात कहता हूँ उस समय मुन्नी ने अठारहवें वर्ष में प्रवेश किया था और मोजरा करते उसे केवल एक वर्ष हुआ था।

जिस दिन फर्रुखसियर पटना पहुँचे उसके दूसरे दिन अपराह्न में वृद्ध पठान मोतिया के दरवाजे पर बैठा तंबाकू पी रहा था। मोतिया घर के कामों में लगी थी और मुन्नी एक सारंगी लेकर गुनगुनाती हुई कुछ गा रही थी। इसी समय एक संभ्रांत मुसज्जित मुसलमान ने इक्के से उतरकर पठान से पूछा—"मुन्नी बाई का मकान क्या यही है?"

पठान चिढ़ गया, बोला—"यह मकान मोतिया बाई का है; लेकिन मुन्नी यहाँ रहती जरूर है।"

आगंतुक ने बिना किसी संकोच के कहा—"मैं मुन्नी बाई से मिलने आया हूँ।"

पठान और भी विरक्त हो गंभीर कंठ से बोला—"मुन्नी तवायफ जरूर है; लेकिन रईस की लड़की है, पेशा नहीं करती। तुम्हें अगर खूबरू नाजनी चाहिए तो चौक में बहुतेरी मिलेंगी।"

आगंतुक हतप्रभ नहीं हुआ; बोला—"कसूर माफ कीजिएगा। शाहजादा के दरबार में मोजरा करने के लिये मुन्नी बाई को बयाना देने आया हूँ।"

पठान थोड़ा दबा, लेकिन उसी अप्रसन्न भाव से बोला—"बयाना देने आए हो तो रुपए दो और चले जाओ।"

"बाई जी का चेहरा देखे बिना कैसे बयाना दूँ ?"

"चेहरे से मोजरे का क्या ताल्लुक ?"

"बहुत ज्यादा ताल्लुक है ! मोजरा खाली गाने का ही नहीं है न !"

आगंतुक को सहज में पिंड छोड़ता न देख पठान ने मुँह फेरकर पुकारा—"अरे मोतिया, ए मोतिया ! इधर आ।"

उस समय मोतिया झाड़ू लेकर बैठक साफ कर रही थी। पठान की पुकार सुन उसी तरह बाहर चली आई। उसे देखकर आगंतुक को थोड़ी हँसी आ गई लेकिन मोतिया ने बिना रत्ती भर झिझके उससे परिचय पूछा। यह सुनकर कि वह आदमी शाहजादा के यहाँ से आ रहा है, उसने बड़े आदर से उसे बैठाया। आगंतुक प्रसन्न हो गया। उसने मुन्नी को देखने की इच्छा प्रकट की। मुन्नी आई और नमूने के तौर पर उसने एक चीज सुनाई। आगंतुक बहुत संतुष्ट हुआ और दो अशर्फी बयाना देकर चला गया।

पटना शहर के बाहर एक बड़ी सी अमराई में शाहजादा फर्रुख-सियर का उर्दू पड़ा था। उसके बीच में एक लंबे चौड़े शामियाने में नृत्य का आयोजन किया गया था। उस समय मुन्नी बाई का जमाना था। शाहजादा के साथ के लोग तो आए ही थे, आधा पटना शहर भी उस अमराई में इकट्ठा हो गया था। संध्या हुई; छावनी में असंख्य मशालें जल गईं। शामियाने में भी काँच के रंग बिरंगे सुगंधित दीप जला दिए गए। मुन्नी, उसकी माँ मोतिया, तबलची और सारंगी-वालों को साथ लेकर बैलगाड़ी से पहुँच गईं। शाहजादा फर्रुखसियर के आने पर मुन्नी पेशवाज पहनकर महफिल में आई। एक पहर तक छावनी के और शहर के आदमी मुन्नी के नृत्य गीत से आँखों और कानों की प्यास बुझाते रहे। दो पहर रात गए फर्रुखसियर अर्थाभाव रहते हुए भी मुट्ठी मुट्ठी भर अशर्फियों के पुरस्कार से मुन्नी

की माँ को संतुष्ट कर महफिल से उठे। मजलिस भंग हुई। शहर के लोग छावनी छोड़ शहर की ओर लौट चले और छावनी वाले छावनी छोड़ अपने अपने तंबू में पहुँचे। मुन्नी एक तंबू में से कपड़े बदलकर बाहर आ रही थी कि एक हट्टा कट्टा मुसलमान उसका रास्ता रोककर खड़ा हो गया। मुन्नी की माँ उसके पीछे खड़ी थी। वह आगंतुक को देखकर चीख पड़ी लेकिन आगंतुक का संकेत पाकर एक सिपाही उसे पकड़ ले गया। चकपकाई हुई भयभीत मुन्नी किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो वहीं खड़ी रही।

आगंतुक उसकी ओर अग्रसर होकर बोला—"मुन्नी बाई, तुम पटना शहर की गुलाब हो। हमलोगों के उर्दू में आकर तुम यों ही चली जाओगी, इसे क्या मेरा जी बर्दाश्त करेगा? मैं मामूली आदमी हूँ, पर जहाँ तक मेरी ताकत है, तुम्हारी खिदमत के लिये इंतजाम कर रखा है। तुम्हारे इस गुलाबी बदन के लिये गुलाब का ही बिस्तर लगा रखा है। तुम्हारे गुलाबी जिस्म में ये दोनों नीली नीली आँखें ठीक फब नहीं रही हैं; इन्हें भी गुलाबी बनाने के लिये ईरानी अर्क मँगा रखा है। सुंदरी! तुम्हारी खातिर जो तंबू सजा हुआ है उसमें एक बार चलकर मेरी इच्छा पूरी करो।"

मुन्नी अगर गणिका होती तो इस सनातन प्रेम संभाषण को हँसकर उड़ा देती; लेकिन गणिका की कन्या होने पर भी उसका सुंदर शरीर उस समय तक कलुषित नहीं हुआ था। इस कारण हँसने के बजाय भय से उसके रोएँ खड़े हो गए। दोनों आखें डबडबा आईं। वह आदमी उसकी रूपराशि की मादकता से उन्मत्त हो रहा था; उसकी दशा समझ नहीं सका। आगे बढ़कर उसने उसका हाथ पकड़ लिया। मुन्नी आर्त्तनाद कर उठी।

वह आदमी बोला—"मुन्नी, तुम स्वर्ग की परी हो; इस दुनियाँ में तुम क्यों आई हो। यहाँ की कड़ी ठोकरों

से तुम्हारे मुलायम पैरों में बड़ी चोट लगेगी। इस कड़ी जमीन पर तुम पैर न रखना, मैं तुम्हें गोद में उठा ले चलता हूँ।"

इतना कहकर आगंतुक मुन्नी को गोद में उठाने के लिये तैयार हुआ लेकिन वह चिल्लाकर दो कदम पीछे हट गई। यह देख आगंतुक ने निराश भावसे कहा—"जानी, तुम डर रही हो जानी ? मैं तो तुम्हारा गुलाम हूँ जानी ! तुम जब अपनी लासानी खूबसूरती लिए शामियाने में नाचती हुई अपनी अजीब अदा दिखा रही थीं—जब तुम्हारी गुलाब की पंखड़ियों की तरह मुलायम उँगलियाँ कालीन पर बिजली की तरह खेल रही थीं—तब मेरा मन भौंरा बना उनके चारों ओर घूम रहा था। जानी, मेरा कलेजा तलवार की चोटें खाते खाते पत्थर हो गया है इसीलिये शायद तुम इस छाती से सटने में डर रही हो। डर कैसा जानी ? मैं रास्ते भर गुलाब के फूल बिछा दूँगा।"

मुन्नी अब तक दूर खड़ी थी। अब उसने हिम्मत करके कहा—"मुझे जाने दीजिए। आप मेहरबान हैं, अल्लाह आपका भला करेगा। मैं कसबी नहीं हूँ, मुझे छोड़ दीजिए।"

शराब के नशे में चूर वह आदमी बोला—"तुम कसबी हो ! कौन शैतान ऐसा कहता है ? तुम परी हो। जानी, तुम मेरा कलेजा हो। जान रहते कैसे तुम्हें छोड़ दूँ जानी ? ऐसी बात मत कहो जानी ! चलो, मैं तुम्हें ले चलूँ।"

इतना कह वह मुन्नी की ओर अग्रसर हुआ और दोनों हाथों से उसने उसे दाब लिया। मुन्नी चिल्लाकर रो पड़ी। इसी समय पीछे से किसी ने वज्र के समान दृढ़ मुट्ठी से आगंतुक का गला धर दबाया। आत्मरक्षा के लिये उसने मुन्नी को छोड़ दिया। वह मूर्छित होकर गिर पड़ी। नवागत व्यक्ति ने ज्योंही उस मुसलमान का गला छोड़ा, उसने नंगी तलवार से उनपर आक्रमण कर दिया। नवागत व्यक्ति ने अनायास उसकी तलवार छीन ली और कहा—"अफरसियर खाँ, तुम्हारे

अत्याचार से शाहजादा बड़े क्रुद्ध हैं। तुम एक हफ्ते तक मजलिस में नहीं आने पाओगे।"

शाहजादा का नाम सुनते ही अफरसियर खाँ का नशा हिरन हो गया। कुत्ते की तरह दुम दबाए वह वहाँ से खिसक गया। नवागत सज्जन मूर्छिता मुन्नी को उठाकर छावनी के भीतर ले गए।

———

बाईसवाँ परिच्छेद

डाकिनी

बड़े सवेरे पटने के किले के नीचे गंगा किनारे रेत में बैठे सुदर्शन भैरवी अलाप रहे थे कि दूर से किसी ने उनका नाम लेकर पुकारा। बहुत विरक्त होकर उन्होंने उस ओर मुँह घुमाया लेकिन उत्तर नहीं दिया। पुकारनेवाला अंधा था, पर सुर को लक्ष्य करके उनकी ओर चला आ रहा था। आलाप बंद हो जाने से वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो खड़ा हो गया और पुकारने लगा—"भैया !...ओ बड़े भैया !···यहीं तो थे, कहाँ चले गए ?"

ब्राह्मण देवता बहुत बिगड़कर बोले—"जमराज के यहाँ। तेरे मारे नरक में भी पिंड नहीं छूटता। रात बीते जान बचाकर जरा आलाप ठीक कर रहा था कि लगा आकर जलाने ! अच्छा बोल, किसने बताया तुझे कि मैं गंगा किनारे आया हूँ ? चांडाल, बंदर कहीं का !"

अंधा हँसते हुए बोला—"मैं तो तुम्हारे सुर के सहारे ही इतनी दूर चला आया। तुम जब आलाप लेते हो तो क्या यह समझना बाकी रह जाता है कि तुम कहाँ हो ?"

"अबे छोकड़े, इस पटना शहर में हजारों आदमी यह भैरवी अलाप सकते हैं। तूने कैसे जाना कि इस किले के पास गंगा के किनारे सुदर्शन भट्टाचार्य भैरवी अलाप रहा है?"

अंधा और जोर से हँस पड़ा; बोला—"यह कौन बड़ी कठिन बात है सुदर्शन भैया? पटना शहर में चाहे जितने कलावंत हों, मेरे सुदर्शन भैया जैसा गला किसी का भी नहीं है।"

प्रशंसा सुनकर ब्राह्मण देवता हँस पड़े और अंधे की ओर बढ़कर बोले—"क्या बात कही है भाई! इधर के लोगों की आवाज मीठी नहीं है। देख भूपेन, बहुत दिनों से तूने संगत नहीं की। जरा बैठेगा?"

"अभी बैठने का समय नहीं है भैया! तुम जल्दी चलो।"

"क्यों रे! तू पूरा गदहा ही है?"

"गदहा हूँ या जो भी हूँ, तुम जल्दी चले चलो। मँझले भैया न जाने कहाँ से एक स्त्री को ले आए हैं और उसे लाकर तुम्हारे बिना अब तक छटपटा रहे हैं।"

"यह क्या रे? असीम ब्याह कर लाया है क्या? स्त्री लाया कहाँ से?"

"ना—ना, ब्याह कैसे करेंगे? यह बाई जी हैं। शायद कल शाहजादा की महफिल में जो मोजरा करने आई थीं वही हैं। लेकिन मैं तो देख नहीं सकता और उनका भी जबसे आई हैं, मुहँ नहीं खुला।"

"है कहाँ वह स्त्री?"

"हमारे तंबू में।"

"और असीम?"

"हमारे तंबू के बाहर।"

"अच्छा चल, चलता हूँ। हाँ रे भूपेन, असीम बाई जी को ले क्यों आया?"

"मुझे क्या मालूम भैया?"

"अरे, कुछ फुसफुस, फिसफिस होते नहीं सुना ?"

"यह कैसे होता है ?"

"तू तो पूरा गदहा है। अरे, प्रेम होने पर स्त्री पुरुष धीरे धीरे जो बातें करते हैं—लगातार बात ही बात करते हैं, सो कुछ सुना है ?"

"अच्छा, प्रेम होने पर शायद स्त्री पुरुष धीरे धीरे बातें करते हैं। मुझे कैसे मालूम हों ये सब बातें ? तो तुम बहू जी से प्रेम नहीं करते ?"

"बड़ी आफत है। इसमें बहू जी को घसीटने की क्या जरूरत ?"

"तुम तो बहू जी से फिस फिस बातें नहीं करते। दोनों आदमी जब बातचीत करते हो तब सारे गावँ को मालूम हो जाता है कि अब सुदर्शन भैया बहू जी से बातचीत कर रहे हैं।"

"अरे बैलचंद, आदमी जब पहले पहल प्रेम में पड़ता है तब फिस फिस करके बातें करता है। वह बात तुझे कैसे समझाऊँ ?"

"सो कहाँ; तुम्हें तो मैंने बहू जी से कभी भी फिस फिस करके बातें करते नहीं सुना ?"

"अबे गधे, इस बीस बरस के बीच मैं प्रेम में पड़ा हूँ केवल एक बार !"

"कब ?"

"जिस दिन तेरी बहू जी ने अपने हाथ से भोजन बनाकर खिलाया था।"

"ओह हो, ऐसी बात ! मैं आज ही बहू जी से कहूँगा।"

ब्राह्मण देवता एकदम सूख गए। अत्यंत गिड़गिड़ाकर बोले—"अरे, ना। ना !! तू बड़ा राजा भैया है; ऐसा काम मत करना ! वैसे ही उसकी आवाज सुनकर चील कौवे तक उड़ जाते हैं, उसपर से

अगर वह यह बात सुन लेगी तो चिल्ला चिल्लाकर आसमान फाड़ डालेगी। मेरे राजा बेटे, कहना मत! तुम जो कहोगे, वही करूँगा।"

"अच्छी बात है; लेकिन फिर गड़बड़ मत करना। अब जल्दी चले चलो, तुम्हारे बिना भैया बहुत घबड़ा रहे हैं।"

दोनों ने गंगातट को पीछे छोड़ शहर में प्रवेश किया और पैर बढ़ाते हुए शाहजादा की छावनी की ओर अग्रसर हुए। छावनी के दो भाग थे। एक में शाहजादा का सुविस्तृत भव्य खेमा लगा हुआ था जिसके चारों ओर मुसलमान सेना-पति और सिपाहियों के तंबू थे। दूसरा भाग उससे विस्तृत और हिंदू सिपाहियों से परिपूर्ण था। दूसरे भाग के एक किनारे गंगातट की ओर बड़े बड़े दो तंबू पड़े थे। उनमें से एक के बाहर छोटी सी चौकी पर बैठा एक आदमी हुक्का पी रहा था। भूपेन ने दूर से ही उसे पुकार कर कहा—"नवकृष्ण, बड़े भैया आए हैं?"

नवकृष्ण बहुत लज्जित होकर हुक्के की नाल फेंक उठ खड़ा हुआ और सुदर्शन से बोला—"भट्टाचार्य महाशय हैं क्या? पधारिए। अभी अभी एक खवास हुजूर को बुला ले गया है।"

सुदर्शन ने व्यग्र होकर पूछा—"अरे नवकृष्ण, वह लड़की कहाँ गई?"

नवकृष्ण ने हँसी का वेग बड़ी कठिनाई से रोकते हुए कहा—"कौन सी लड़की भट्टाचार्य महाशय?"

सुदर्शन बिगड़ पड़े, बोले—"हिस्सा मिला है, क्यों?"

नवकृष्ण ने दाँत पर दाँत दाबकर दुबारा हँसी रोकी और बहुत धीमे तथा विनीत भाव से पूछा—"भट्टाचार्य महाशय, आप क्या परगना रुकनपुर के बंदोबस्त की बात कहते हैं?"

भूपेन अबतक चुपचाप खड़ा था। वह बोला—"अंबरी तंबाकू की महँक कहाँ से आ रही है?"

सुदर्शन बाद को भूपेन से बता न दें कि नवकृष्ण चंदन की चौकी पर बैठकर सोने के हुक्के पर ढाके की सटक से तंबाकू पीता था, इसलिये वह बहुत कातर हो विनयपूर्वक सुदर्शन को प्रसन्न कर रहा था। लेकिन सुदर्शन सहज में प्रसन्न होनेवाले जोव नहीं थे। उन्होंने आँख के इशारे से ही बता दिया कि मेरे प्रश्न का ठीक ठीक उत्तर न मिलने पर सोने की मुहँनाल से धुआँ निकालने का भंडा फूट जायगा। दूसरा उपाय न देख नवकृष्ण ने इशारे से बता दिया कि तंबू के भीतर से महँक आ रही है। भूपेन ने उत्तर न सुन विरक्त होकर सुदर्शन से कहा—"बड़े भैया, देखो न, अंबरी तंबाकू कहाँ महँक रही है।"

नवकृष्ण संकट में पड़ गया। सुदर्शन से भी जवाब देते नहीं बना और वे अपने बड़े बड़े रूखे बालों में उँगली फेरने लगे। इसी समय भगवान् ने नवकृष्ण की रक्षा की।

पास के खेमे का बहुमूल्य रेशमी पर्दा हटा। पायल की झनकार से अमराई गूँज उठी। युवती कोमलांगी के वस्त्रों की रगड़ से जैसा शब्द होता है उससे मालूम हो गया कि किसी बहुमूल्य पेशवाज में जोर का झटका दिया गया है। उसके साथ ही वीणा विनिंदित स्वर से प्रश्न हुआ—"बाबू साहब ?"

प्रश्न करनेवाली को देख और उसका कंठस्वर सुन सुदर्शन भट्टाचार्य स्तब्ध हो गए। उनकी दाहिने हाथ की उँगलियाँ लंबे रूखे बालों में जहाँ की तहाँ अँटक गईं। नवकृष्ण ने जमीन तक झुककर एक लंबा सलाम किया।

कुछ देख न सकने के कारण भूपेन ने पूछा—"कौन ?"

लेकिन उस स्त्री ने उसकी ओर देखा तक नहीं। थोड़ा और ऊँचे स्वर से उसने पूछा—"साहब कहाँ गए ?"

नवकृष्ण हड़बड़ाकर बोला—"जी हुजूर,—तोबा, तोबा, राधेकृष्ण। बीबी साहब, क्या हुक्म है, फरमाइए?"

भूपेंद्र ने स्त्री को लक्ष्य करके पूछा—"आपको किसी चीज की जरूरत है, बाई जी?"

"नहीं साहब, केवल पूछ रही हूँ कि वह साहब किधर गए?"

'साहब' संबोधन सुनकर भूपेन के रोएँ खड़े हो गए। नवकृष्ण कुछ कहने जा रहा था, पर उसे रोककर उसने कहा–"दरबार में भैया तलब किए गए हैं। लौटने में शायद देर होगी। आप कहिए, किस चीज की जरूरत है?"

स्त्री के चेहरे पर बिजली की क्षीण रेखा की भाँति हलकी सी मुसकुराहट आई पर वह तत्काल उसके गुलाबी ओठों में घुलमिल गई। फिर आत्मगौरव से उसके दोनों होठ किंचित् हिले। उसने कहा—"नहीं साहब, आप लोगों का बहुत शुक्रिया अदा करती हूँ, मुझे कुछ भी जरूरत नहीं है।"

खेमे का बड़ा सा परदा गिर पड़ा। कोमल शरीर के स्पर्श से बहुमूल्य वस्त्रों की पेशवाज ने बड़ी मीठी ध्वनि की। गंगाजल से सिंची मंद मंद वायु हिना की झीनी झीनी सुगंध को बहुत दूर तक बहा ले गई। सुदर्शन भट्टाचार्य सहसा पृथ्वी पर बैठ गए और हाथों से सिर पीटकर बोले—"सर्वनाश!"

भूपेंद्र बड़ा क्रुद्ध हुआ। स्त्री ने उससे जो कुछ पूछा था उसपर उसे बड़ी विरक्ति हुई थी। सुदर्शन का शोकोद्‌गार सुन उसने कहा—"बड़े भैया, यह क्या कर रहे हो, मँझले भैया वैसे आदमी नहीं हैं।"

नवकृष्ण अवसर देख सटक और हुक्का लेकर दूसरे खेमे में चला गया।

धीरे धीरे धूप चढ़ी। सुदर्शन ने भूपेन को बुलाकर गीली गीली घास पर अपने पास ही बैठा लिया और उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए

बोले—"भूप भाई, यह बात मुझे सीधी सादी नहीं दिखाई देती। छोटे राय निर्बोध तो नहीं हैं, लेकिन जानते हो—क्या नाम है उसका, यौवन काल—उन्नति की पहली सीढ़ी होती है। पर लोग यही कहते हैं कि कच्ची उमर और फालतू पैसा होने से···"

भूपेंद्र और भी क्रुद्ध हुआ, उनके मुँह की बात छीनकर बोला-"बड़े भैया, तुम पागल हो गए हो क्या! असीम राय वेश्या की लड़की के रूप पर मुग्ध होंगे? जिस दिन ऐसा होगा उस दिन इन दोनों फूटी आँखों को भी उखाड़ बाहर कर दूँगा।"

सुदर्शन ने दो तीन ᐧᐧᐧ सूखे गले से ऊपर नीचे साँस लेकर बहुत धीरे धीरे कहा—"नहीं भाई, जानते हो-वह बात नहीं कहता—उसका क्या नाम है, जानते हो रमणी का रूप; उद्दाम यौवन और वेगवती नदी लगभग एक ही तरह की होती है। तुम तो देख सकते नहीं भाई···"

सुदर्शन के मुहँ की बात मुँह में ही रह गई; खेमे का गाढ़े नीले रंग का परदा दूसरी बार ऊपर उठा। दूसरी बार कुसुम-कोमल अंगों के स्पर्श से आंदोलित पेशवाज की बड़ी मोहक आवाज हुई। वायु के झोंके के साथ हिना की क्षीण सुगंध से मिली हुई सुवासित केशतैल की महँक आई; कंकणों, चूड़ियों और नूपुरों के शिंजन से अमराई मुखरित हो उठी! पास ही डाल पर बैठा जो कौवा अपने कर्कश स्वर से सुषुप्त संसार की निद्रा भंग रहा था वह मानों भयभीत होकर चुप हो गया। वीणा विनिंदित स्वर से दूसरी बार प्रश्न हुआ—"साहब?"

भूपेंद्र के प्रज्वलित क्रोधानल में घृताहुति पड़ गई। कठोर कंठ से उसने कहा—"नर्त्तकी! तुम्हारे साहब अभी लौटे नहीं। उतावली क्यों होती हो? राजकाज में लगे रहने से नायक बीच बीच में नायिका को भूल जाया करता है।"

सहसा गाढ़ा नीला परदा गिर पड़ा।

———

तेईसवाँ परिच्छेद

अफीम की महिमा

अजीमुश्शान के सिंहासनारूढ़ होने का समाचार जिस दिन पटना पहुँचा उसके दो दिन बाद नगर के पूरबी भाग के राजपथ पर दो वृद्ध मुसलमान धीरे धीरे बातें कर रहे थे। उनमें से एक बहुत ही वृद्ध था और लंबी लाठी के सहारे सारे शरीर का भार टिकाए खड़ा था। दूसरा व्यक्ति वृद्ध होने पर भी पंगु नहीं था। उसके लंबे चौड़े शरीर और अंगभंगी से ज्ञात होता था कि उसने अपने जीवन का अधिकांश भाग युद्ध व्यवसाय में व्यतीत किया है। पहला वृद्ध दूसरे से कह रहा था—"तुमसे तो बहुत दिनों से कहता आ रहा हूँ दोस्त कि अब अफीम का सहारा लेने की उमर आ गई है। देखो, अफीम अमीरों का नशा है, फिर भी खर्च बहुत कम बैठता है। एक नारियल की गुड़गुड़ी, दो हाथ की बाँस की नली और जरा सा अफीम से ही काम बन जाता है,..."

दूसरे ने बीच में ही कहा—"रुस्तमदिल खाँ, भूल गए कि तुम पठान हो? अफीम तुम्हें बिलकुल चट कर गई है!"

पहले व्यक्ति ने क्रुद्ध होकर लाठी के सहारे सीधे खड़े होने की चेष्टा की और दूसरे व्यक्ति की नाक के पास तर्जनी ले जाकर बोला—

"अरे गुलशेर खाँ, तुम भी भूल गए कि पठान हो। कसबी की मुहब्बत में पड़कर तुम्हारा दिमाग एकदम खराब हो गया है वरना खुल्लमखुल्ला एक कसबी की लड़की को ढूँढ़ निकालने का उपाय पूछते ? अफीम खाया करो, अफीम ! पक्की न मिले, कच्ची ही सही ।"

"गुस्सा मत करो रुस्तमदिल खाँ, मैं बड़ी मुसीबत में पड़ा हूँ—बाई जी ने कल रात से कुछ खाया नहीं।"

"अरे छिः, गुलशेर खाँ, हजार बार छिः ! कसबी की जात, उसके साथ पैसे का नाता है;—उसने खाया नहीं तो तुम्हारे सर पर आसमान क्यों फट पड़ा ?"

"गुस्सा क्यों करते हो भाई ! औरत की जात स्वभाव से ही कमजोर होती है,—बहुत दिनों से उसका नमक खा रहा हूँ ।"

"तुम बिलकुल जहन्नुम में पहुँच गए हो ! कसबी की लड़की कसबी ठहरी—जिसका पेशा ही आशनाई करना है उसके लिये आँसू बहाकर क्या होगा ? कोई आशिक मिल गया होगा, दो चार दिन के लिये कहीं सरक गई होगी ।"

"ऊँ हुँक् रुस्तमदिल खाँ, मुनिया मेरी वैसी नहीं है ।"

"रहने दो, कसबी की लड़की सती है ! तुम्हारे जैसे बहुत से अहमक देखे हैं, तुम नए नहीं हो ।"

"इस समय क्या करूँ, कुछ तो बताओ ।"

"अफीम खाओ बाबू, अफीम। कहो तो गुड़गुड़ी, नली और एक छींटा अफीम दूँ। देखो, अफीम से ही सब शोक, दुख तकलीफ दूर होती है..."

"तुम समझते ही नहीं कि मेरी मुन्नी वैसी लड़की नहीं है। अफरसियर खाँ ने उसे जबरदस्ती रोक रखा है ।"

"अरे भाई ! रुस्तमदिल खाँ अस्सी बरस का बुड्ढा नहीं पैदा हुआ था; उसकी भी कभी जवानी थी। पेशावर से लेकर पटने तक दो हजार माशूकें इस खूबसूरत आशिक को चाहती थीं। औरत को जबर-दस्ती रखनेवाला आदमी अभी पैदा नहीं हुआ। कसबी की बेटी कसबी ही होगी—जरूर किसी से आशनाई करके चार पैसा पैदा करने की कोशिश कर रही होगी।"

इसी समय रूखे बाल वाले एक ब्राह्मण आ गए और पहलेवाले बृद्ध को अभिवादन करके बोले—"खाँ बाबा, इस शहर की मुन्नी बाई कहाँ रहती हैं, जानते हैं ?"

वृद्ध ने थोड़ा हँसकर कहा—"जानता हूँ, क्यों, क्या बात है ?"

"उसने मेरा सर्वनाश किया है !"

दूसरे वृद्ध ने पूछा—"क्यों, उसने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ?'

ब्राह्मण बोले—"उस राक्षसी ने मेरे भाई पर जादू कर दिया है।'

रुस्तमदिल खाँ ने अपना पोपला मुँह फैलाकर कहा—"अरे गुलशेर, तुझे जन्म से जानता हूँ, तू आशनाई की बातें क्या जाने ? अब बोल ? कहा था न कि तेरी बेटी आशनाई के फेर में पड़ गई है। देख, रुस्तमदिल खाँ की बात ठीक निकली न ? मेरे वालिद ने नाम रखने में भूल कर दी। 'रुस्तमदिल' की जगह 'आशनाईदिल' नाम रखना चाहिए था क्योंकि किनारा खींच लेने के बाद अब फिर प्रेम में पड़ रहा हूँ। जहाँ कहीं खूबसूरत औरत होगी वहीं आशनाई, वहीं फरेबबाजी, वहीं खूनखराबी होगी।"

लज्जा और अपमान से गुलशेर खाँ का सिर नीचा हो गया। उसने बहुत धीरे धीरे आगंतुक ब्राह्मण से कहा—"बाबू साहब, मुनिया मेरी पाली हुई लड़की है। उसने अगर कोई कसूर कर डाला है तो अनजाने

किया होगा। आपलोग उसे माफ कर दें। मुझे देख लेगी तो फिर कुछ न कहेगी।"

उसकी बातें सुन ब्राह्मण ने बड़े वेग से माथा हिलाया। उनके लंबे रूखे बाल प्रशस्त मस्तक पर बिखर गए। वे बोले—"हूँ, हूँ, हूँ! खाँ साहब, मुनिया बाई वैसी चीज नहीं है! उसके पेशवाज की सरसराहट अगर सुनते तो तुम्हारा माथा घूम जाता।"

वृद्ध गुलशेर खाँ अप्रतिभ हो गया; बोला—"सो सब नखरे मेरे आगे नहीं चलेंगे बाबू साहब! वह जहाँ है वह जगह आप मुझे दिखा भर दीजिए।"

रुस्तमदिल खाँ अब तक एक हाथ से लाठी पर शरीर का भार टिकाए दूसरे हाथ से दाढ़ी सहला रहा था। उसने कहा—"अरे अहमक! वह तेरे लिये बैठी है क्या? अपने आशिक के गले में हाथ डाल चिड़िया की तरह फुर्र से उड़ गई होगी। तू घर जा; बुड्ढी कसबी को लेकर पक्की अफीम चढ़ा।"

गुलशेर खाँ ने सुनी अनसुनी कर दी और ब्राह्मण से बोला—"बाबू साहब आप मुझे रास्ता दिखा दें। मैं अभी आपके भाई को मुन्नी बाई के जादू से छुड़ाता हूँ।"

उसका हट्टा कट्टा शरीर देखकर ब्राह्मण के मन में संभवतः थोड़ी आशा का संचार हुआ। उसने सोचा कि यह वृद्ध पठान शायद अपने विशाल बाहुओं के बल से मोहिनी की माया में आबद्ध मेरे भाई को मुक्त कर देगा। मग्न होकर वह उसके साथ चला। पहलेवाला वृद्ध राजपथ के बीच खड़ा, दोनों हाथों से लाठी पर शरीर का बोझ टिकाए बार बार थू थू करता कह रहा था—"गिर पड़ो कुएँ में; जाओ जहन्नुम में।"

देखते देखते वृद्ध पठान और आगंतुक ब्राह्मण शहर के पूरबी भाग में स्थित जफर खाँ के उद्यान में प्रविष्ट हुए और बहुत से खेमों को पार

करके असीम और भूपेंद्र के खेमे के सामने पहुँचे। तब तक भूपेंद्र वहीं बैठा था। उन लोगों की आहट पाकर उसने जिज्ञासा की—

"कौन ?"

ब्राह्मण बोले—"मैं हूँ; सुदर्शन।"

उसकी बोली सुनकर भूपेंद्र की सिकुड़ी हुई भौहें बराबर हुईं और उसने आग्रहसहित पूछा—"क्या कर आए भैया ?"

सुदर्शन उत्साहपूर्वक बोले—"कोई चिंता की बात नहीं, लड़की के पिता को पकड़ लाया हूँ। बेचारा बुड्ढा सड़क पर बैठा अपनी बेटी को ढूँढ़ रहा था। इस लड़की को इस बार यहाँ से खदेड़ो और बस।"

"वह लड़की तो फिर बाहर निकली ही नहीं। डाँट सुनकर अभी तक चुपचाप पड़ी है।"

"ठीक है। छोटे राय लौटे ?"

"अभी नहीं; हरकारा कह गया है कि दूसरे पहर के बाद लौटेंगे।"

वृद्ध पठान ने इसी समय पूछा—"बाबू साहब, मुन्नी कहाँ है ?"

भूपेंद्र ने उँगली के इशारे से खेमा दिखा दिया। वृद्ध पठान ने और कुछ पूछे बिना खेमे के पास जाकर पुकारा—"मुन्नी, मुन्नी !"

पहले किसी ने उत्तर नहीं दिया। थोड़ी देर में नीला रेशमी परदा हट गया और वीणा विनिंदित कंठस्वर ने प्रश्न किया—"कौन, बाबू साहब ?"

वृद्ध पठान ने खेमे के द्वार पर जा कर्कश स्वर से पूछा—"मुन्नी, यह बाबू साहब तेरे कौन हैं ?"

उसे देखकर मुन्नी पहले रोमांचित हो गई। उसके चेहरे पर भय के चिह्न स्पष्ट दिखाई पड़े किंतु क्षण मात्र में उसने आत्म संवरण कर

लिया और पठान से हँसते हुए पूछा—"अब्बा! आप यहाँ क्यों आए?"

क्रुद्ध होकर वृद्ध ने कहा—"मैं यहाँ क्यों आया, यह फिर बताऊँगा; पहले तू बोल कि तू यहाँ क्या कर रही है?"

वृद्ध का प्रश्न सुन उसकी दोनों आँखें मारे क्रोध के लाल हो गईं। उसने कहा—"अब्बा, मैं कसबी की बेटी कसबी हूँ, कसब ही मेरा पेशा है। लड़कपन से माँ बाप ने जो सिखलाया है वही करने यहाँ आई हूँ।"

उत्तर सुन पठान ठक हो गया। उसका गुस्सा उतर गया और वह बिलकुल पानी हो गया। अपराधी की भाँति उसने धीरे धीरे कहा—"आज पहले पहल सुन रहा हूँ बेटा कि तुम कसबी हो। दुनिया जाने चाहे न जाने, मैं तुम्हारा पिता हूँ। कभी भी मैंने तुम्हें कसब करना सिखलाया है? तुम कसबी की लड़की जरूर हो, लेकिन हमेशा मैंने तुम्हें इज्जतदार गृहस्थ की तरह रखने की कोशिश की है। तवायफ होने से ही क्या कसबी होना पड़ता है बेटा?"

वृद्ध का नम्र भाव देखकर मुन्नी का आवेश कम हो गया, उसकी आँखें झुक गईं। शांत भाव से वह बोली—"अब्बा, मेरी गुस्ताखी माफ कीजिए। एकबारगी मेरा दिमाग घूम गया था।"

उसका उत्तर सुनकर वृद्ध ने पूर्ववत् शांत भाव से कहा—"तुम घर चलो बेटी, महफिल से लौटने के बाद तुम्हारी अम्मा ने अब तक मुहँ में एक दाना भी नहीं डाला।"

घर चलने की बात सुनकर मुनिया पुनः रोमांचित हुई। उसके सुंदर मुखमंडल पर लज्जा की किंचित् लाली छा गई। उसने काँपते कंठ से बहुत धीरे धीरे कहा—"ना ना, अभी मैं घर नहीं जा सकूँगी।"

बात पूरी करते ही उसने सिर झुका लिया लेकिन वृद्ध मारे क्रोध के

जल भुन गया और चिल्लाकर बोला—"घर नहीं जा सकोगी ? क्यों नहीं जा सकोगी ?"

युवती ने आँखें नीची किए किए ही अस्फुट स्वर से कहा—"ना, मैं नहीं जाऊँगी।"

इसी समय पीछे से किसी ने पूछा—"कौन हो तुम ? क्या चाहिए ?"

———

चौबीसवाँ परिच्छेद

नई राह

वृद्ध चौंककर पीछे फिरा। स्त्री की लज्जा घनीभूत हो गई जिससे उसने सिर के स्वच्छ बहुमूल्य आवरण को घूँघट की तरह खींच लेने की चेष्टा की किंतु वह स्थान स्थान पर टँके चाँदी के सलमे सितारों में उलझकर रह गया। उसका सलज्ज भाव देख वृद्ध को और भी क्रोध हुआ। उस सलज्ज चेहरे की शोभा देख आगंतुक भी किंचित् लज्जित हो गया।

तब तक वृद्ध मुसलमान असीम की ओर बढ़ आया और कहने लगा—"यह नर्तकी मेरी लड़की है। कल रात से यह घर नहीं गई इसलिये इसकी माँ उपवास कर रही है। मैं इसे लेने आया हूँ।"

असीम प्रसन्नतापूर्वक बोले—"जान बची खाँ साहब! कल रात से आपकी लड़की को लेकर जिस विपत्ति में पड़ा हूँ उसे क्या बताऊँ। दोनों भाइयों ने रात भर खेमे के बाहर पहरा दिया है—क्षण मात्र विश्राम नहीं कर पाया। इसको किस तरह आश्रय दिया जाय, सो निश्चय नहीं कर पा रहा था। आप आ गए, अब चिंता मिटी; मेरे कंधे पर से बोझ उतर गया।"

इतना कहकर असीम खेमे की ओर अग्रसर हुए। एक हाथ से खेमे का गहरा नीले रंग का परदा पकड़े हुए वह युवती खेमे के द्वार

पर स्थिर खड़ी थी। असीम को अग्रसर होते देख उसके ओठ किंचित् हिले। असीम ने उससे कहा—"बीबी साहब, आपके पिता आपको लेने आए हैं।"

युवती ने बनावटी आश्चर्य प्रकट कर कहा—"बाबू साहब, मेरे पिता! मेरे पिता तो जीवित नहीं हैं।"

उसकी बात सुन सरल हृदय सुदर्शन ने मन के आवेग में भूपेंद्र का हाथ खींच कर कहा—"अरे! लड़की डाइन है! बुड्ढे को एकदम निगल गई।"

भूपेंद्र हँस पड़ा और अस्फुट स्वर से बोला—"कैसे मालूम बड़े भैया कि वह डाइन है?"

सुदर्शन ने कहा—अभी थोड़ी देर पहले बुड्ढे को अब्बा अब्बा पुकार रही थी, अब कह रही है कि मेरे पिता जीवित नहीं हैं।"

भूपेंद्र पुनः हँसकर बोला—"यह बात तो ठीक भी हो सकती है। कसबी की लड़की कसबी ठहरी; बनावटी बाप भी आ सकता है।"

सुदर्शन ने जो कुछ कहा उसे असीम ने सुना नहीं। मुन्नी की बातें सुनकर उन्हें इतना अधिक विस्मय हुआ कि किसी दूसरी ओर उनका ध्यान ही नहीं जा सका। उनके मन की यह अवस्था देख युवती ने कहा—"मालूम नहीं ये कौन हैं। मैंने इन्हें कभी देखा तक नहीं। बाबू साहब! आपने मिहरबानी करके मुझे पनाह दी है—आप ही के कारण कल रात मेरी जान बची। खुदा आपकी तरक्की करे—आप मुझे एक बार और पनाह दीजिए। मुझे शक होता है कि यह सब मुझे दूसरी जगह ले जाने की चाल है।"

वृद्ध पठान किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो पास ही खड़ा था। धीरे धीरे उसके पास जाकर असीम ने पूछा—"क्यों भाई, बाई जी तो कहती हैं कि मैंने इन्हें कभी देखा तक नहीं?"

वृद्ध सिर झुकाए पैर के अँगूठे से जमीन कुरेद रहा था। खिन्न

भाव से वह बोला—"सो तो सुन लिया बाबू साहब। लेकिन मैं खुदा ताला की कसम खाकर कहता हूँ कि यह औरत मेरी लड़की है।"

"मैंने शाहजादा से इसकी चर्चा की थी। उन्होंने हुक्म दिया है कि इसकी इच्छा के बिना इसे कोई कहीं नहीं ले जा सकता। इसलिये यह चाहे तो इसकी जहाँ खुशी हो, जा सकती है।"

असीम की बातों से वृद्ध हताश हो गया और दीर्घ निःश्वास लेकर बोला—"तब क्या किया जाय बाबू साहब? उससे एक बार और पूछ देखूँ—होश ठिकाने हुए तो वह मेरे साथ चलेगी नहीं तो मैं घर लौट जाऊँगा।"

इतना कहकर वृद्ध खेमे की ओर अग्रसर हुआ और दृढ़ स्वर से उसने युवती को पुकारा—"मुन्नी?"

युवती ने भी वैसे ही दृढ़ स्वर से कहा—"क्या है?"

"तूने मुझे कभी नहीं देखा है?"

"नहीं।"

"मैं तेरा बाप हूँ या नहीं?"

"मैं क्या जानूँ? मुझे नहीं मालूम, मेरे बाप कौन हैं।"

"तू मेरे साथ घर चलेगी या नहीं?"

"नहीं।"

"कम्बख्त, हरामजादी; जो जी में आए कर।" यह कहकर वृद्ध काँपते पैरों से वापस चला गया।

असीम ने युवती से पूछा—"बीबी साहब, तुम अब क्या करोगी?"

सलज्ज भाव से उसने कहा—"आप जो कहेंगे, वही करूँगी।"

"अब तो काफी दिन निकल आया है, डरने की कोई बात नहीं है। तुम घर क्यों नहीं चली जातीं?"

"घर जाने की हिम्मत नहीं होती।"

"क्यों?"

"लश्कर के लोग वहाँ से मुझे फिर पकड़ लाएँगे।"

"तब क्या करोगी तुम ? कहाँ रहोगी ?"

"मैं आपका सहारा नहीं छोड़ूँगी।"

यह सुनते ही सुदर्शन बोल उठे—"भूप ! सर्वनाश हुआ।"

असीम ने शायद सुन लिया, क्योंकि धीरे धीरे सुदर्शन के पास आकर उन्होंने पूछा—"तुम कब आए भैया ?"

सुदर्शन ने बहुत जोर से सिर हिलाते हुए कहा—"बड़ी विपत्ति है भाई ! विपत्ति पर विपत्ति ! औरत को कैसे खदेड़ा जाय ?"

"मैं तो कल रात से ही उपाय ढूँढ़ रहा हूँ। कोई उपाय सुझाई न पड़ने पर अंत में तुम्हें बुलाने के लिये आदमी भेजा। सारी रात जगते बीती, फिर सुन रहा हूँ कि शीघ्र दिल्ली जाना होगा।"

"यह औरत कैसे तुम्हारे गले पड़ी ?"

"उस कष्ट की कहानी क्या बताऊँ ? कल रात महफिल में बड़ी देर हो गई थी। अहमदबेग और अफरसियर खाँ इसे मोजरे के लिये बयाना दे आए थे। उनमें से एक की नीयत अच्छी नहीं थी क्योंकि महफिल समाप्त होने पर अफरसियर खाँ ने उसके साथ के आदमियों को मार पीट कर भगा दिया और उसे रोक रखा। उसकी सी स्त्रियाँ रोक लिए जाने पर विशेष आपत्ति नहीं करतीं लेकिन यह औरत किसी अज्ञात कारण से रात को चिल्ला पड़ी। शाहजादा उस समय भीतर के खेमे में थे। चीत्कार सुन वे बाहर निकल आए तो आदमियों से मालूम हुआ कि अफरसियर ने किसी औरत को रोक रखा है। उनके आदेशानुसार मैंने उसे छुड़ाकर रात तीसरे पहर से अपने खेमे में रखा है और सारी रात दोनों भाइयों ने साधारण सिपाही की तरह खेमे के चारों ओर पहरा दिया है। शाहजादा से इतना ही कहा था कि वह औरत अभी तक वापस नहीं लौटी। उन्होंने कहा है कि वह अपने इच्छानुसार जा सकती है लेकिन जबर्दस्ती उसे कोई न ले जाने पावे। और वह कहीं जाना ही नहीं चाहती।"

सुदर्शन पुनः बहुत जोर से सिर हिलाकर बोले—"यही तो गड़बड़ है! लड़की तुम्हें छोड़कर जाना क्यों नहीं चाहती? देखो भैया, भगवान ने तुम्हारी उन्नति की है, तुम्हें उच्च पद दिया है। आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारी और अधिक उन्नति हो लेकिन मैं पहले जिस भाव से तुम्हें देखता था अब भी उसी भाव से देखता हूँ। तुम्हारी उठती जवानी है; अतुलनीय सुंदरता है। शायद लड़की उसी पर लुभा गई है।"

सुदर्शन की बातों पर असीम बड़े जोर से हँस पड़े; बोले—"तुम पागल तो नहीं हो गए भैया; वह वेश्या जो है?"

सुदर्शन ने उत्तर दिया—"भैया मेरे, मैं पागल नहीं हूँ। वेश्या भी तो स्त्री ही होती है। स्त्री मात्र का कोई विश्वास नहीं।"

"भैया, अगर बहू जी से यह कह दूँ तो?"

"तो भैया का कष्ट बढ़ जायगा, और क्या? सबेरे मछली खरीद कर जल्दी वापस आने के लिये उसने कहा था लेकिन तुम्हारे पल्ले पड़ जाने से दो पहर दिन निकल आया। अब इस समय रंगरेलियाँ छोड़ो और यह बताओ कि इस स्त्री को कैसे दूर किया जाय? शाहजादा के महल में भेजने से काम नहीं चलेगा?"

"पागल हुए हो? बेगम साहब अभी उसे चाँटे मार मारकर बिदा कर देंगी।"

"लेकिन मालिक क्या सोचेंगे?"

"विपत्ति में पड़ी हुई स्त्री का मामला सुनेंगे तो वे निश्चय उसे शरण देंगे, मगर बहू जी क्या करेंगी सो नहीं कह सकता।"

"अरे, अब उसका वह समय नहीं रहा!..."

इसी समय खेमे का परदा उठाकर मुन्नी ने पुकारा—"बाबू साहब!"

———

पचीसवाँ परिच्छेद

यवनी का स्पर्श

खेमे के द्वार पर खड़े होकर असीम ने पूछा—"क्या करना होगा, बाई जी ?"

युवती ने मुस्कुराते हुए कहा—"आप मुझे इस तरह क्यों पुकारते हैं ?"

विस्मित होकर असीम ने जिज्ञासा की—"फिर आपको क्या कहकर पुकारूँ ?"

"मेरा नाम लेकर, मुन्नी कहकर ।"

उसका उत्तर सुन सुदर्शन ने भूपेंद्र का हाथ जोर से दबाया । दर्द के कारण वह चिल्ला उठा । सुदर्शन बोले—"भूप, अरे गया रे ! गया ! अब नहीं बचेगा । जब नाम लेकर पुकारने के लिये कहती है तब कहाँ बचेगा ?"

भूपेंद्र ने कहा—"भैया, तुमने तो ऐसा हाथ दबाया कि मैं भी जाना चाहता हूँ ।"

मुन्नी की बातें सुनकर मारे लज्जा के असीम का चेहरा लाल हो गया था । वह भी अपनी प्रगल्भता का विचार कर लज्जित हो रही थी । इसी तरह थोड़ा समय व्यतीत हो गया और किसी ने कोई बात

नहीं की। युवती ने ही आत्म संवरण करके पहले कहा—"आप दोनों आदमी रात से ही जो बाहर बैठे हुए हैं वह शायद मेरे आने की वजह से ही! मैं रहूँगी तो आप लोग क्या भीतर नहीं आएँगे?"

असीम लज्जित होकर बोले—"आएँगे क्यों नहीं; लेकिन इस ख्याल से कि आपको असुविधा होती और आपकी सुरक्षा के विचार से हम दोनों भाई खेमे के बाहर ही रह गए। ए भूपेन! ओ बड़े भैया! बाहर रहने से क्या लाभ, भीतर आ जाओ।"

पुकार सुनकर सुदर्शन ने भूपेंद्र से कहा—"अरे रे! यह तो खेमे के भीतर आने के लिये कह रहा है।"

भूपेंद्र हँस पड़ा। उसने पूछा—"डर किस बात का है भैया, वह राक्षसी है तो नहीं। चलो भीतर ही चलें।"

लंबी साँस लेकर हताश भाव से सुदर्शन ने कहा—"चलो फिर। तुम्हें क्या मालूम भाई; बड़ी बहू ने कहीं सुना तो?"

भूपेंद्र खिलखिला कर हँस पड़ा; बोला—"बहू जी जरूर सुनेंगी—मैं स्वयं उनसे कहूँगा।"

ब्राह्मण देवता घबरा गए; उन्होंने दोनों हाथों से उसे कसकर पकड़ लिया और बोले—"ऐसा काम मत करना भैया! सुनते ही ब्राह्मणी के प्राण निकल जायँगे।"

भूपेंद्र पुनः जोर से हँस पड़ा। उसकी हँसी सुनकर असीम ने पूछा—"क्या हुआ भूप?"

हँसते ही हँसते भूपेंद्र बोला—"बड़े भैया...मुसलमानी...छू लेंगे...बहू जी...प्राण...निकल जायँगे..."—मारे हँसी के उसकी बात पूरी नहीं हो सकी।

सुदर्शन ने जिस भाव से खेमे में प्रवेश किया उसे देखकर असीम भी अपनी हँसी नहीं रोक सके। खेमे के भीतर एक ओर गलीचा

बिछा हुआ था। उसकी ओर इंगित करके मुन्नी ने सबसे बैठने का अनुरोध किया। असीम और भूपेंद्र बैठ गए लेकिन सुदर्शन तब भी एक कोने में लकड़ी के कुंदे की तरह अचल खड़े रहे। उन्हें देखकर दोनों भाइयों को हँसी आ गई।

मुन्नी ने विस्मित होकर पूछा—"आप क्या नहीं आएँगे ?"

ब्राह्मण देवता ने प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। यह देख असीम ने पूछा—"क्यों बड़े भैया, आएँगे नहीं क्या ?"

अस्फुट स्वर से ब्राह्मण बोले—"एक तो मुसलमानिन, दूसरे वेश्या ! तुम लोगों ने आचार विचार बिलकुल धो बहाया।"

मुन्नी ने समझा कि संभवतः यथोचित अभ्यर्थना न होने से ब्राह्मण क्रुद्ध हो गए हैं। खड़ी होकर उसने ब्राह्मण देवता का हाथ पकड़ लिया और बोली—"मुझसे गलती हुई हो तो माफ कीजिएगा। आप बैठिए न।"

मुन्नी के हाथ पकड़ते ही ब्राह्मण देवता छलाँग मारकर दूर जा खड़े हुए और कहने लगे—"हैं, हैं, तू करती क्या है ! मुसलमानिन, पाखंडी, छोड़, छोड़; हाय हाय ! आज मुसलमानिन के हाथों धर्म नष्ट हो गया। अरे छोटे राय, तू हँसता क्या है; कहता क्यों नहीं कि यह मुझे छोड़ दे।"

हँसी का प्रबल वेग सँभाल न सकने के कारण असीम और भूपेन गलीचे पर लोट पोट हो रहे थे। यह देख ब्राह्मण बेचारे रो पड़े।

मुन्नी किंकर्तव्यविमूढ़ खड़ी रही। रोते रोते सुदर्शन ने कहा—"मेरी रानी माँ हो तुम; दया करके मुझे छोड़ दो। हाय हाय ! मेरी बड़ी बहू का और कोई सहारा नहीं है।"

मुन्नी ने पूछा—"बड़ी बहू आपकी कौन हैं ?"

उसका प्रश्न सुनकर असीम और भूपेंद्र की हँसी का वेग और अधिक हो गया। तब तक मुन्नी ने सुदर्शन का हाथ छोड़ा नहीं था। अत्यंत कातर होकर सुदर्शन ने मुन्नी से कहा—"आई जी, तुम इस लुच्चे छोटे राय को लेकर जो खुशी हो करो, मैं कुछ नहीं बोलूँगा। तुम कृपा करके मेरा हाथ छोड़ दो। देखो, बड़ी बहू अगर सुन लेंगी तो गले में फाँसी लगाने के पहले तमाचे मार मार कर मुझे पटरा कर देंगी।"

मुन्नी ने सुदर्शन की पूरी बात नहीं समझी। उसने दुबारा पूछा—"बड़ी बहू आपकी कौन होती हैं?"

हँसी का वेग प्रयत्न करके थोड़ा रोककर भूपेंद्र ने कहा—"बड़ी बहू बड़े भैया की गुरु हैं, इष्ट देवी—जिन्हें तुम लोग मुर्शिद कहती हो।" बात समाप्त करते ही भूपेंद्र पुनः खिलखिला पड़ा।

विस्मित होकर मुन्नी ने पूछा—"आपकी मुर्शिद नाराज क्यों होंगी, आप क्यों रोते हैं, बैठें न!"

मुन्नी की बातों से सुदर्शन का दुःख और बढ़ गया। असीम और भूपेंद्र उन्हें देखकर पुनः गलीचे पर लोट पोट करने लगे। सुदर्शन को शांत करने के विचार से मुन्नी ने उनकी आँखें अपने रेशमी रूमाल से पोंछ दीं। सुदर्शन के रोंगटे खड़े हो गए। उन्होंने दोनों हाथों से अपनी आँखें बंद कर लीं। उनका मनोभाव न समझने के कारण मुनिया उनके बदन पर हाथ फेरने लगी। सुदर्शन चौकड़ी भर कर उठ खड़े हुए और बोले—"राम राम! छिः! यह क्या करती है? हरे कृष्ण! गोविंद गोविंद! दूर हो, भूत झाड़ने की तरह शरीर पर हाथ क्यों फेरती है! अरे बाप रे! यह तो प्याज की बदबू है! अरे असीम! ओ भूपेन! मुझे छुड़ा दो न भाई।"

असीम और भूपेंद्र का मारे हँसी के दम निकला जा रहा था। किसी को सहायता के लिये आगे बढ़ते न देख सुदर्शन ने अंत में मुन्नी की प्रार्थना करना आरंभ किया—"बाई जी! तुम मेरी धर्म की माँ हो। छोड़ दो मुझे। समझ गया मैं कि छोटे राय को तुमसे छुड़ाने आया था इसलिये तुम मुझसे रुष्ट हो। तुम्हारी जहाँ इच्छा हो छोटे राय को ले जाओ, उसका सिर चबाकर खा जाओ, मैं कुछ भी नहीं कहूँगा। माँ किरीटेश्वरी की सौगंध, सुदर्शन भट्टाचार्य अगर अब तुम्हारी परछाहीं के पास भी फटके तो चांडाल है चांडाल!!"

अब जाकर मुन्नी ने कुछ कुछ समझा। उसने हँसकर कहा—"ठीक तो है, मैं आपको तो कुछ नहीं करती; आप बैठें न।"

सुदर्शन ने लंबी साँस लेकर कहा—"करने को अब बाकी क्या रहा? तुम्हारे स्पर्श से ही मेरा धर्म नष्ट हुआ। ओफ; बड़ी बहू ने सवेरे सवेरे ही मुझसे मछली लेकर जल्दी लौटने के लिये कहा था। हाय हाय!"

हँसते हँसते मुन्नी बोली—"आपका धर्म क्यों नष्ट होगा?"

मुनिया ने उस समय भी हाथ नहीं छोड़ा था और न छोड़ने का उसका विचार था। यह देख सुदर्शन ने पुनः रोना शुरू कर दिया।

मुन्नी ने पूछा—"बाबू साहब, आप रोते क्यों हैं?"

रोते ही रोते सुदर्शन ने कहा—"बाई जी, तुम समझती नहीं हो। मेरी जो दशा हुई है, वह दुश्मन की भी न हो। मेरी जात-पाँत सब गई।"

मुन्नी ने पूछा—"आपकी जात क्यों गई! ये दो साहब बैठे हुए हैं, ये भी तो हिंदू हैं। ये तो नहीं रोते?"

"बाई जी, तुम समझतीं नहीं, उनको बड़ी बहू नहीं हैं।"

सुदर्शन की बात सुन असीम और भूपेंद्र पुनः गलीचे पर गिर पड़े। उन्हें देख ब्राह्मण को मर्मांतक पीड़ा हुई। वे बोले—"अरे लुच्चो! ब्राह्मण का धर्म गया, जात पाँत गई, बड़ी बहू अनाथ हो गईं, और तुम्हें हँसी सूझी है। मेरी तो यह हालत और तुम्हें रंग सूझता है।"

असीम ने गलीचे पर से सिर उठाकर कहा—"बड़े दादा, रंग सूझता तो जरूर है, पर तुम्हीं न दिखा रहे हो।"

"अरे अभागे, मैं सुदर्शन भट्टाचार्य हूँ। मैं रंग दिखाऊँगा! नवाब के बेटे का साथी होने से तुझे इतना घमंड हो गया है? मेरी तो जात गई, पाँत गई, धर्म गया। इस पाखंडी मुसलमानिन ने प्याज की दुर्गंध से भरा रूमाल लेकर मेरा मुँह पोंछा और तुम दोनों संड मुसंडे बैठे देखते और हँसते रहे। ऊपर से तू कहता है कि मैं रंग दिखा रहा हूँ? हे भगवान्, मधुसूदन···"

ब्राह्मण देवता का क्रोध देखकर मुन्नी ने उनका हाथ छोड़ दिया।

तुरंत सुदर्शन साँस रोके भाग चले लेकिन खेमे के दरवाजे तक पहुँचते न पहुँचते असीम ने उनके दोनों पैर पकड़ लिए। ब्राह्मण देवता गिर पड़े। मुन्नी हड़बड़ाकर उठी और सुदर्शन का सिर अपनी गोद में रखकर सहलाने लगी। ब्राह्मण देवता दोनों हाथों से अपनी शिखा ढाँके झटके से उठ खड़े हुए। धक्का खाकर भूपेंद्र गिर पड़ा। मुन्नी हतबुद्धि हो बैठी रही। असीम भी खेमे के दरवाजे के पास गलीचे पर गिरे पड़े थे। खेमे के एक कोने में खड़े होकर, दोनों हाथ अपनी शिखा पर रखे सुदर्शन बोले—"मुहँ का धर्म गया, पीठ का धर्म गया। अब यह दुष्टा शिखा पर हाथ रखना चाहती है! क्या कहूँ छोटे राय, केवल बड़ी बहू का मुहँ देखकर अब तक प्राण बचाए हुए हूँ नहीं तो जान दे देता।"

भूपेंद्र ने इसी समय कातर कंठ से कहा—"बड़े भैया, अब अपना राग रंग थोड़ा बंद करो। हँसते हँसते मेरे पेट में बल पड़ गए।"

उसकी बातें सुनकर ब्राह्मण देवता क्रोध के मारे गरज पड़े—"अबे गधे, मैं निष्ठावान् ब्राह्मण ठहरा। बड़ी बहू को छोड़ किसी दिन मैं पर स्त्री का मुहँ दुबारा नहीं देखता। मैं राग रंग करता हूँ? तुम दोनों पाखंडी सारी रात मुसलमानिन वेश्या के साथ विहार करते रहे और राग रंग करता हूँ मैं?"

इसी समय मुन्नी ने अपना अमोघ अस्त्र चलाया। अपने दोनों हाथ ब्राह्मण के गले में डालकर वह बोली—"प्यारे, मेरे माशूक, मेरे जान! तुम गुस्सा क्यों होते हो?"

सुदर्शन बिना एक शब्द बोले तुरंत गलीचे पर फैल गए और अस्फुट स्वर से कहने लगे—"ॐ गंगा नारायण ब्रह्म। बड़ी बहू, अब देखना बदा नहीं है।"

सुदर्शन की अवस्था देखकर असीम डर गए। उन्होंने मुन्नी से कहा—"बाई जी, उन्हें छोड़ दो। उनकी जो दशा हुई है, थोड़ी देर और वैसी ही होने से शायद स्वयं साँस ऊपर चढ़ाकर आत्महत्या कर लेंगे।"

मुन्नी सुदर्शन को आलिंगन मुक्त करके हटकर एक ओर खड़ी हो गई और असीम से उसने पूछा—"इन्हें हुआ क्या है, ये ऐसा क्यों करते हैं?

बड़े कष्ट से हँसी रोक कर असीम ने कहा—"तुम नहीं समझोगी बाई जी—बड़े भैया ने पर स्त्री का स्पर्श कभी भी नहीं किया।"

मुन्नी ने हँस कर कहा—"लेकिन मैं तो किसी की स्त्री नहीं हूँ।"

सुदर्शन अब तक गलीचे पर लेटे हुए थे। उन्होंने मुन्नी की बात समझ ली। तीर की तरह वे उठ बैठे और बोले—"तू किसी की

स्त्री नहीं है ? जानती है, वेश्या का अर्थ होता है वार वनिता ? तेरे एक दर्जन से ऊपर पति हैं।"

मुन्नी अकचका गई; उसने असीम से पूछा—"बाबू साहब ने क्या कहा ?"

असीम ने हँसते हँसते कहा—"उसे मैं तुम्हें समझा नहीं सकूँगा बाई जी ?"

इसी समय सुदर्शन हाथ जोड़े मुन्नी के सामने आ खड़े हुए और डबडबाई आँखों तथा कातर कंठ से कहने लगे—"बाई जी ! जब तुम्हें धर्म की माँ कह दिया है तो वेश्या होने पर भी तुम मेरी पूजनीय हो और इसीलिये बड़ी बहू की भी पूजनीय हो। तुम अपनी धर्म की बेटी का मुहँ देखकर मुझे छोड़ दो। मेरे सिवा उसका और कोई नहीं है। बाई जी ! तुम मेनका, रंभा, उर्वशी की तरह स्वच्छंद होकर कई पीढ़ी तक, यानी बहुत काल पर्यंत, इस अभागे असीम राय का माथा 'गजभुक्तकपित्थवत्' खाया करो—मुझे कोई आपत्ति नहीं। मैं अत्यंत दीन हूँ, तुम्हारा दासानुदास हूँ—तुम जो कुछ कहोगी, मैं वही करूँगा।"

असीम ने मुन्नी को सुदर्शन की बातें समझा दीं।

मुन्नी बोली—"ठीक है, छोड़ दूँगी; लेकिन तीन शर्तें हैं। पहली शर्त, मेरा एक गाना सुनना पड़ेगा; दूसरी शर्त, मेरे हाथ से एक पान खाना पड़ेगा; और तीसरी शर्त, मुझे साथ लेकर बड़ी बहू के यहाँ चलना पड़ेगा।"

शर्तें सुनते ही सुदर्शन गलीचे के ऊपर फैल गए। लेकिन मुन्नी छोड़नेवाली नहीं थी। उसने अपनी बाँकी तिरछी आँखों से दो एक कटाक्ष वाण मारकर सुदर्शन के शरीर पर ढल पड़ने का उपक्रम करते

हुए कहा—"यह क्या ? मेरे जिगर, मैं क्या तुम्हें खाली बातों में ही छोड़ दूँगी। तुम मेरे माशूक हो; मैं तुम्हारे प्रेम में पागल हूँ। अपने कलेजे में तुम्हारे लिये सोने का तख्त बिछा रखा है। जान मेरे, तुम्हें क्या यों ही छोड़ दूँगी ? तुम्हें छोड़कर मुन्नी की जान क्या बचेगी प्यारे ? ओफ्-हो ! ऐसी बातें न कहो दिलवर।"

इसी समय खेमे के दरवाजे पर आकर नवकृष्ण ने कहा—"हुजूर, दरबार से तलब आया है, क्या कहूँ ?"

असीम व्यस्त भाव से बोले—"हरकारे को लौटाना मत, मैं आ रहा हूँ।"

छब्बीसवाँ परिच्छेद

कला

असीम जब खेमे से चले तब सुदर्शन ने एक बार उन्हें लपककर पकड़ने की चेष्टा की और लगे चिल्लाने—"अरे छोटे राय ! मेरे लिये तूने क्या व्यवस्था की ?"

असीम एक ही छलाँग में दरवाजे के बाहर हो गए—सुदर्शन की पकड़ में नहीं आए।

हँसते हँसते भूपेंद्र ने कहा—"बड़े भैया, क्या तुम मँझले भैया की अनाथा विधवा हो जो वह तुम्हारी व्यवस्था कर जायँगे ?"

इस बीच मुन्नी उठकर खेमे के दरवाजे पर जा खड़ी हुई थी। उसने गंभीरतापूर्वक कहा—"देखो बाबू साहब, अब मैं जो कुछ कहती हूँ उसे अगर नहीं करोगे तो तुम्हारी जान ले लूँगी। मैं मुसलमानिन हूँ, अपने मुँह का खाना तुम्हें खिला दूँगी और फिर तुम्हारे साथ निकाह करूँगी। अब तुम अपनी मुर्शिद बड़ी बहू की उम्मीद छोड़ो।"

सुदर्शन काँपते काँपते उठकर खड़े हुए और हाथ जोड़, गले में दुपट्टा लपेट[1] बोले—"बाई जी, तुम जो कुछ भी कहोगी, मैं वही

१—देवताओं और गुरुजनों को प्रणाम करते समय बंगाली लोग गले में आँचल या दुपट्टा लपेट लेते हैं। यह अत्यंत भक्ति और दैन्य का सूचक समझा जाता है। —अनु०।

करूँगा, केवल इस बड़ी बहू की—क्या नाम है उसका--बात मत कहना।" ब्राह्मण देवता यह कहकर रोने लगे।

कृत्रिम क्रोध से आँख तरेरती हुई मुन्नी बोली—"बेअदब, बेतमीज, बदबख्त, सारंगी का सुर मिला।"

दुपट्टे के कोने से आँसू पोंछते पोंछते सुदर्शन ने पूछा--"वह— वह, मिला रहा हूँ, बाबा, लेकिन पहलेवाली बात क्या थी—क्या है—उसका नाम क्या—बड़ी बहू की बात ?"

"तेरी बड़ी बहू की ऐसी तैसी ! अबे कमबख्त, हुक्म तामील कर।"

ब्राह्मण देवता और कुछ न कहकर सारंगी का सुर ठीक करने बैठ गए।

भूपेंद्र, जो अब तक पागलों की तरह गलीचे पर लोट पोट कर रहा था, उठ बैठा और उसने तबला सँभाला।

मुन्नी के सुर छेड़ते ही सुदर्शन दुःख, शोक और बड़ी बहू सबको भूल गए। मुन्नी ने गाना आरंभ किया। गाना छोड़ आलाप लेने लगी। आलाप शेष होने पर पुनः गाने लगी। गाना समाप्त होने पर ब्राह्मण देवता ने जी भरकर मुन्नी को आशीर्वाद देते हुए कहा— "आशीर्वाद देता हूँ, तुम चिरंजीवी हो; पति पुत्र के साथ संसार में सुख से फलो फूलो। लेकिन एक बार तुम बेताल हो गई थीं।"

अत्यंत उत्सुकतापूर्वक मुन्नी ने पूछा—"किस जगह बाबू साहब ?"

इसी समय नवकृष्ण ने खेमे का पर्दा हटाकर पूछा--"पंडित जी, एक फूँक तंबाकू लीजिएगा ?"

सुदर्शन ने अन्यमनस्क हो उससे कहा—"ठहरो, गाकर बताता हूँ।" और मुन्नी से बोले--"नई चिलम चढ़ा।"

मुन्नी ने समझा नहीं; उसने पूछा—"आप क्या कहते हैं ?"

भूपेंद्र बायाँ तबला फेंककर फिर गलीचे पर लुढ़क पड़ा।

विस्मित हो सुदर्शन ने पूछा—"अब क्या हुआ रे ?"

भूपेंद्र बोला—"तुम तो बाई जी से चिलम चढ़ाने के लिये कहकर नवकृष्ण को ताल बता रहे हो ?"

सुनते ही सुदर्शन हड़बड़ा कर कहने लगे—"सचमुच बाई जी ? तुम गुस्सा न करना रानी ! मेरा माथा ठीक नहीं है।"

उन्होंने सारंगी छेड़ी। उनके तीव्र सतेज कंठ की मधुर ध्वनि सुनकर मुन्नी मुग्ध हो गई। गाना समाप्त होने पर उसने खड़े होकर तीन बार कोर्निश की और बोली—"बाबू साहब, मेरी गुस्ताखी माफ कीजिएगा। मुझे मालूम नहीं था कि आप गुणी हैं, और गुणी भी ऐसे वैसे नहीं। आपके गले की आवाज बड़ी सुंदर है और गाने का कायदा भी नए ढंग का है। बहुत दिनों से ऐसा गाना नहीं सुना था।"

प्रशंसा से देवता भी संतुष्ट होते हैं, सुदर्शन तो मनुष्य थे। वे संतुष्ट हो गए, इसमें कोई विचित्रता नहीं थी। धर्मनाश, जातिनाश, कुलनाश, सबकी चिंता छोड़ ब्राह्मण देवता गलीचे पर बैठ गए और नवकृष्ण के द्वारा अद्भुत् ढंग से तैयार किए गए केले के पत्ते के हुक्के पर तंबाकू पीते पीते उन्होंने मुन्नी से संगीत चर्चा छेड़ दी।

दिन का तीसरा पहर ढलते देख भूपेंद्र ने कहा—"बड़े भैया, आज तुम्हें भूख प्यास नहीं लग रही है ? मेरा तो भूख के मारे दम निकला जा रहा है।"

सुदर्शन मानों आकाश से गिरे। वे बोले—"हाँ रे, मैं तो बिलकुल भूल गया था। छोटे राय कब लौटेंगे ? वह भी खाएँगे न ?"

"उनकी बात छोड़ो। शाहजादा का मुँह देखने के बाद उनको फिर भूख प्यास नहीं लगती।"

नवकृष्ण पीछे खड़ा दोनों गाल फुलाए नई चिलिम पर फूँक मार रहा था। वह बोल उठा—"भैया, आपको सारंगी छेड़ते देखकर ही मैंने आपके भोग का प्रबंध कर रखा है—एक पका कटहल, दो कोड़ी आम, और करीब पाँच सेर पेड़ा और बरफी है।"

सुदर्शन अत्यंत प्रसन्नतापूर्वक नवकृष्ण को आशीर्वाद देते हुए बोले—"जीता रह नवकृष्ण, तेरा कल्याण हो; लेकिन मैं अकेला क्या इतना खा सकूँगा?"

नवकृष्ण भक्ति-गद्गद कंठ से बोला—"भैया, घड़ी भर और सारंगी पर पिड़िङ् पिड़िङ् करने के बाद एक समूचे कटहल और दो कोड़ी आमों के साथ नवकृष्णदास का भी स्वच्छंद होकर भोग लगा सकते हैं।"

कृत्रिम रोष के साथ सुदर्शन बोले—"मसखरी करता है?..."

नवकृष्ण ने चट हाथ जोड़कर कहा—"पंडित जी, आप साक्षात् देवता हैं। चेहरा हूबहू किरीटेश्वरी की माँ काली जैसा लगता है!"

भूपेंद्र उसकी बात पर हँस पड़ा और बोला—"बड़े भैया, तुम इस नवा से बातों में पार नहीं पाओगे। यह दक्षिणी है, मीठी मीठी दस बातों के साथ तुम्हें दो चार वेढब कड़ी बातें सुना देगा। देख लो, इतने में ही उसने तुम्हें पेटू राक्षस और तुम्हारे रंग को कालिख बना डाला।"

लेकिन सुदर्शन ने बिना क्रोध किए नवकृष्ण से पूछा—"नवा, हम लोग तो भोजन कर लेंगे, लेकिन बाई जी का क्या होगा?"

नवकृष्ण ने लंबी दंडवत करके कहा—"देवता की जो आज्ञा! नवकृष्णदास के रहते हुजूर सरकार की बदनामी नहीं होने पाएगी।

जितना पोलाव, कलिया, कोफ्ता, कोरमा मौजूद है उतना खाने पर फिर शायद बीबी साहब की रुचि कुछ और खाने की न रहेगी।"

भूपेंद्र ने पूछा—"बीबी साहब और क्या खाएँगी?"

नवकृष्ण ने दूसरी बार दंडवत करके कहा—"जी हुजूर, बीबी साहब सदा से जो पसंद करती हैं—बड़े आदमियों की कच्ची खोपड़ी!"

सुदर्शन प्रसन्न होकर बोले—"वाह वा नवकृष्ण! तूने भी क्या तबीयत पाई है!"

हँसकर नवकृष्ण ने कहा—"सब देवता का आशीर्वाद है।"

असीम इसी समय वापस आ गए और सुदर्शन को भोजन करा कर उन्होंने स्वयं भोजन किया। मुन्नी दूसरे खेमे में भोजन करने चली गई। असीम ने तब सुदर्शन से पूछा—"भैया, कुछ दिन तक तुम बाई जी को आश्रय दे सकोगे?"

सुदर्शन ने आनंद से कहा—"क्यों नहीं! बाबू जी को कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।"

"तब इतनी देर से क्या चिल्ला रहे थे कि धर्म गया, जाति गई?"

"तुम क्या जानो। एक तो ठहरीं बाई जी, दूसरे रूपवती युवती, और ऊपर से मुसलमान। मैं ठहरा ब्राह्मण। चिल्लाऊँ नहीं तो फिर क्या करूँ? एक डर धर्म का था, दूसरा बड़ी बहू का। पर अब वह सब गड़बड़ी जाती रही, बाई जी का प्रकृत परिचय मिल गया है। वह बहुत साध्वी और समझदार स्त्री है। गुणियों की जाति का विचार नहीं किया जाता। कलावंतों में हिंदू मुसलमान का भेद नहीं चलता। गुणों के ही बल से यवन हरिदास परम वैष्णव हो गए थे।"

"बड़े भैया, तुम जादूगर हो। अभी दोनों हाथों से चुटिया सँभाले, धर्म नष्ट होने के डर के मारे रो रहे थे। इतने ही में अपनी छाती तुमने कैसे इतनी कठोर कर ली?"

"समस्त कलावंतों में एक भाईचारा होता है। दूसरे लोग उसे नहीं समझ सकते। जब तक उसके गुणों का परिचय नहीं पाया था तब तक उसे चरित्रहीन यवन कन्या समझता था। देखो भाई, तुम सब लोग जानते हो कि सुदर्शन भट्टाचार्य ने कभी भी बड़ी बहू को छोड़ और किसी स्त्री का स्पर्श नहीं किया; सो तब मैं एकदम पागल हो गया था; और क्या कहूँ। लेकिन अब मन में कोई द्विविधा नहीं रही। जो तुम हो, जो भूपेन है, वही मुन्नी भी है।"

सायंकाल मुन्नी को साथ लेकर असीम, सुदर्शन और भूपेंद्र हरिनारायण विद्यालंकार के आवास की ओर चल पड़े।

सत्ताईसवाँ परिच्छेद

सरस्वती वैष्णवी

यौवनकाल शेष होने पर सरस्वती वैष्णवी ने भिक्षावृत्ति का अवलंबन किया था। वह खानदानी वैष्णव की कन्या थी इसलिये भिक्षा माँगने में उसने कभी लज्जा का अनुभव नहीं किया। इस नवीन वृत्ति में उसका सुरीला गला सदा उसकी सहायता करता था। इसका कारण यह था कि यौवन और यौवन के साथ वैष्णव के प्रेम ने उसका परित्याग कर दिया था लेकिन उसके सुरीले गले ने उसका साथ नहीं छोड़ा था। सबेरे उठकर वह अपनी खँजड़ी और भिक्षा की झोली लिए बाहर निकल जाती और जहाँ जैसी आवश्यकता होती, जिस गाँव के लोगों की जैसी अभिरुचि होती, वैसे ही गाने सुनाकर उन्हें तृप्त करती। इसलिये बंग भूमि के उस मुक्त-स्वच्छंदतापूर्ण युग में विगतयौवना सरस्वती वैष्णवी को किसी दिन भी अन्न का अभाव नहीं हुआ। कभी कभी बीते बसंत के कोकिल की तरह कोई गतयौवन वैष्णव प्रेमी सरस्वती के संसार की स्वच्छंदता देख प्रेम का जाल डालने की चेष्टा करता तो सरस्वती की अवज्ञापूर्ण दृष्टि उसे बता देती कि पुरुष जाति ने यौवनकाल में जो शिक्षा दी है उसे वह इस स्निग्ध प्रौढ़ावस्था में भूली नहीं है।

सावन का महीना है; पानी दिन भर बरसता है। गाँव की राह सन्नाटी पड़ी है। उस दिन सरस्वती भिक्षा माँगने बाहर नहीं जा

सकी। दिन भर से एकांत घर में अकेले बैठे बैठे उसका कठोर मन भी विरक्त हो उठा था। वह अपने मन ही मन खँजड़ी लिए घर के दरवाजे पर बैठी कोई गीत गुनगुना रही थी--

सहसा कीचड़ भरी गाँव की राह में मनुष्य के पैरों का शब्द सुनाई पड़ा। सरस्वती ने गीत बंद करके खँजड़ी रख दी। उसकी छोटी सी कुटिया गाँव के किनारे पर थी और नितांत आवश्यक न होने पर कोई उधर आता जाता नहीं था, इसलिये पैरों की आहट मिलते ही सरस्वती समझ गई कि किसी का कोई बहुत बड़ा काम अँटका है। ऐसा न होता तो वह इस दुर्दिन में उसके यहाँ क्यों आता? धीरे धीरे उसकी कुटिया की चारदीवारी के उस पार एक आदमी का सिर और टोपी दिखाई पड़ी। चारदीवारी के दरवाजे तक पहुँचने के पहले ही उस व्यक्ति ने पूछा--"अरे सरस्वती बहन! घर में हो क्या?"

उसका कंठस्वर सुन सरस्वतो विरक्त हो गई। प्रसन्न होने का कोई कारण नहीं था, क्योंकि आगंतुक जीवन भर उससे शत्रुता ही करता आया था। किंतु सरस्वती ने मन का भाव प्रकट नहीं किया। भिक्षावृत्ति का अवलंबन करके उसने बहुत सी नई बातें सीखी थीं-- अपनी इच्छा से नहीं, बाध्य होकर। मनोभाव का गोपन उसमें मुख्य गुण था। उसने अपने मन का वास्तविक भाव छिपाकर सूखे चेहरे पर और भी सूखी हँसी लाकर कहा—"कौन, नवीन भैया? इस दुर्दिन में किधर चले?"

नवीन दरवाजे की टट्टी हटाकर आँगन में प्रविष्ट हुआ और सरस्वती को देख लंबी साँस लेकर बोला—"ओह! जान बची, सरस्वती बहन! तो तुम घर पर ही हो। मैंने सोचा था कि शायद भिक्षा लेने बाहर निकल गई होगी। अपने मन से क्यों इतना कष्ट उठाती हो

बहन ! और एक मालाचंदन[1] कर डालो, आराम से रहोगी। तुम्हारे लिये क्या वैष्णव की कमी है। तुम्हारी उमर ही कितनी है ! और फिर तुम तो गुणवती स्त्री हो।"

सूखी हँसी छोड़ सरस्वती सचमुच किंचित् मुसकुरा पड़ी क्योंकि उसने समझ लिया कि मेरा चिरशत्रु नवीन बहुत विपन्न होकर मेरी शरण में आया है। उसने कहा—"उमर मेरी पैंतालीस बरस की हो गई। और भैया, गुण में क्या जवानी को बाँधकर रखा जा सकता है ? तुम मर्द लोग ठहरे भौंरे की जात। जब तक रस रहता है तभी तक तुम लोग भी दिखाई पड़ते हो। मेरे यौवन का रस शेष हो गया है, सो अब तुम लोग क्यों आने लगे ?"

नापित-कुल-भूषण नवीन ने समझा कि उसका चलाया हुआ तीर लक्ष्य तक नहीं पहुँचा। उसने अपने तरकस से शब्दवेधी बाण निकाला —"दीदी, अगर सभी भौंरे वास्तविक रस पहचानते तो यह प्यारी दुनियाँ क्या इस तरह धूल में मिलती ? रूप रहता कितने दिन है ? भौंरे का पैर पड़ते ही फूल की पँखड़ियों की तरह झड़ पड़ता है। गुण में ही सच्चा रस होता है, जिसकी मिठास स्थायी होती है और जिसे प्राप्त करने के लिये परिश्रम करना पड़ता है। लेकिन सच्चे गुण का आदर करना कितने आदमी जानते हैं दीदी !"

भ्रमर-चरित्र से अभिज्ञ सरस्वती समझ गई कि नवीन नापित बहुत दिनों के बाद आज प्रीति स्थापित करने आया है। उसने तत्काल रणकुशल योद्धा की भाँति बातचीत को मोड़कर पूछा—"भैया, तंबाकू चढ़ाऊँ ?"

१—ब्याह। —अनु०।

नवीन ने हँसते हुए जिज्ञासा की—"तो पीतांबर हुक्का छोड़ गया है क्या ?"

बहुत तेजी से थूककर विकृत कंठ से सरस्वती बोली—"उसके मुहँ में आग ! कलमुहाँ अब हुक्का रख जायगा ? वह जिस दिन अपनी नई नवेली प्राणेश्वरी के यहाँ गया उसी दिन अपना हुक्का, चिलम, मेरू सब कुछ लेता गया। तुम लोग चार भले आदमी कभी कभी आ जाते हो इसीलिये एक चिलम और थोड़ी सी तंबाकू रख छोड़ी है।"

पीतांबर का जूठा हुक्का मिलने की आशा से वंचित होकर नवीन ने कहा—"तो चढ़ाओ दीदी, चढ़ाओ।"

सरस्वती ने पीतल के एक टूटे हुए लोटे में पानी उड़ेल दिया। नवीन ने अपनी टोपी दालान के पीछे टाँग दी और हाथ पैर धो लिए। चटाई बिछाकर सरस्वती चकमक और रुई लेकर लकड़ी के कोयले में आग सुलगाने लगी। अवसर देखकर नापित-कुल-तिलक ने असली बात छेड़ी।

"दीदी, तुम इतनी जगह जाती हो, कोई गहरा दावँ भी लगा सकती हो ?"

"मामला क्या है ?"

"अगर राजी होओ तो खोलकर बताऊँ !"

"सौदा नगद है न ?"

"नगद पूछती हो; सोलह गंडे नगद सौदा है ! और काम भी बड़ा मजेदार है; बिलकुल पका पकाया तैयार।"

"रूपक रहने दो, नगद कितने का सौदा है, सो कहो ?"

"महीने दो महीने का काम है। तुम जो कुछ वाजिब कहोगी उसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी।"

"देखो नवीन भैया, तुम भी मुझे पहचानते हो और मैं भी तुम्हें पहचानती हूँ। कारोबार में हिसाब किताब खुलासा रखना ही ठीक होता है। दो महीना लगेगा—और परदेश का वास्ता ठहरा। लेकिन देखना भैया, किसी की बहू-बेटी…"।

"अरे राम राम! क्या कहती हो सरस्वती बहन! हरे कृष्ण, गोविंद माधव!"

"गोपीनाथ, हृषीकेश, श्यामसुंदर, और सबके बाद वह राजकिशोरी! नखरे छोड़ो, जो बात हो उसे साफ साफ कहो।"

सरस्वती के हाथ से चिलम लेकर, दो एक फूँक मारकर, नवीन बोला—"काम कोई कठिन नहीं है, खासकर तुम्हारी-सी दुनियादार स्त्री के लिये। और यह जो तुमने कहा, सो जवानी के दिनों में जो हो गया उसमें अब चारा ही क्या? अब केवल…।"

"जो कुछ करती हैं, घोष के घर की राजकिशोरी करती हैं, क्यों?"

"अब क्या बताऊँ सरस्वती बहन! नवीन का अब वह जमाना नहीं रहा। छोड़ो उन बातों को। रायगृहिणी के पास से आ रहा हूँ। विद्यालंकार की लड़की की करतूत सुनी है न? सुना है, छोटे राय से उसकी आँखें लग गई हैं।"

"दुर्गा वैसी लड़की नहीं है। दो-बीस की मेरी उमर हुई, औरत का चेहरा देखते ही बता सकती हूँ कि वह कैसी है।"

"बड़े घर की बात ठहरी। हम लोग 'अदरख के व्यापारी' हैं, मतलब क्या है हमें 'जहाज की खबर' से बहन!"

"रायगृहिणी जानना चाहती हैं कि छोटे राय और दुर्गा कहाँ पर किस तरह हैं। अब खरच-बरच के अलावा क्या चाहिए सो बताओ।"

"तुम्हारा कितना हिस्सा है, जरा सुनूँ?"

"मेरा हिस्सा—वह तो बहन, नवीन तुम्हीं को खिलानेवाला आदमी है; तुम हाथ उठाकर जो कुछ दे दोगी उसे मैं सिर-माथे लगाऊँगा। और नवीन अगर तुम्हारे साथ छल करे तो उसके सात पुरखे…हरेकृष्ण, राधेमाधव, गोविंद, गोपीनाथ।"

"अरे कृष्ण की राधा[1] हैं न ?"

"अब जब तुम्हीं ने कह दिया तो मैं क्या कह सकता हूँ ? मुझे तो चंद्रावली[2] ही बहुत थी; मगर जब तुमने अपने मुँह से कह दिया है…जय राधेकृष्ण श्री राधेकृष्ण।"

चिलम नीचे रखकर नवीनचंद्र बोला—"बयाने के लिये कुछ ले आया था।"

"दे जाओ।"

नवीन ने धोती की गाँठ खोलकर चालीस रुपए निकाले और सरस्वती के हाथ पर रखकर जिज्ञासा की—"कितना खर्च लगेगा ?"

"कम से कम पाँच बीस। शायद काशी तक जाना पड़ेगा।"

"रुपए कल सबेरे ला दूँगा। कब जाओगी ?"

"कल तीसरे पहर।"

अपना हिस्सा पक्का करके नवीन घर की ओर चला।

---

१ आधे-आध हिस्सा।

२ चौथाई। —अनु०।

अट्ठाईसवाँ परिच्छेद

प्रेम के प्रकाश में

उस उद्यान के हरित दूर्वादल पर ओस की सहस्र सहस्र बूँदें मोती की तरह छाई हुई थीं। वृक्षों की चोटी पर हलके कुहासे का शुभ्र आवरण पड़ा हुआ था। पक्षी अपने नीड़ों से निकल निकलकर दिगंत को मुखरित करने लगे थे। पीपल के प्राचीन वृक्ष के नीचे हरित वर्ण का एक मुलायम ईरानी गलीचा घास पर अस्त व्यस्त पड़ा हुआ था। उसी समय अरुणवर्ण बालसूर्य की किरणों से स्निग्ध, शांत उषा के धुँधले आलोक में गुलाब की अधखिली कली की भाँति सुंदर एक स्त्री निःशब्द गति से ओस-बिंदु-शोभित जीर्ण पीपल के नीचे पड़े हुए हरिताभ ईरानी गलीचे के पास आई।

स्त्री युवती थी। जिस यौवन के आरंभ में शूकरी भी अप्सरा प्रतीत होती है, उसकी सीमा का स्पर्श मात्र उस रूपसी ने किया था। उसकी गति में उसके सुगठित अंग प्रत्यंग से एक अवर्णनीय विद्युत्-वत तरंग निकलती दिखाई देती थी—ऐसी तरंग जो केवल गतिमती, सद्यःस्नाता अनिर्वचनीय सुंदरियों में ही दिखाई देती है। हरिताभ ईरानी गलीचे के पास आने पर युवती सहसा उसके एक किनारे लेट गई और उस कोने का बारंबार चुंबन करने लगी; उसे सिर से लगाया, हृदय पर रखा और अंत में फिर उसका चुंबन आरंभ किया।

कुछ देर बाद युवती प्रकृतिस्थ हुई और उस जीर्ण पीपल की एक उभड़ी हुई जड़ पर बैठकर अस्पष्ट स्वर में एक गीत गुनगुनाने लगी। अस्फुट स्वर क्रमशः स्पष्ट हुआ—

"ओ मेरे प्यारे।
कभी नहिं मिटी नयन की प्यास,
तजी नहिं तेरे दरस की आस।
बीत गए कितने दिन रजनी,
बीत गए ये साल।
बीत गया है रूप औ जोबन,
बीत गया खुश हाल।
गुजरे मालिक, गुजरे जमाने,
गुजरे दौलत माल।
गुजर गए मेरे सुख औ दुख,
गुजर गया मेरा काल।
सब सुख चला गया मेरे प्यारे,
दिल तब भी न निरास।"

गीत समाप्त हो गया। युवती ने उसे फिर गाया। इसी समय उसके पीछे से शुभ्र वस्त्र पहने गौरवर्ण एक सुंदर युवक आए किंतु वह युवती अपने मनोभावों में इतनी तन्मय थी कि उसने उनके आने की आहट नहीं सुनी। वे युवा पुरुष जब गलीचे के पास आकर ठिठके तब युवती ने चौंककर उनकी ओर मुहँ घुमाया।

उसके चेहरे पर लज्जा की लाली दौड़ गई। वह बोल उठी—"आप···तुम ?"

उसका संबोधन सुनकर युवक रोमांचित हो गए।

युवती ने पुनः कहा—"तुम हो प्यारे! दिलवर, तुम?"

युवक दो डग पीछे हट गए; बोले—"मुन्नी बाई, क्या कहती हो?"

"क्या कहती हूँ जानेमन, समझते हो? कहती हूँ कि अपने इस सीने के अंदर तुम्हारे लिये तख्तताऊस सजा रखा है। मेरे दिलवर, दीन दुनिया के मालिक, मेरे बादशाह···।"

"मुन्नी···मुन्नी बाई! क्या कह रही हो? पागल हो गई हो क्या? मैं तो तुम्हें एक काम की बात कहने आया हूँ।"

"काम की बात? मेरे साथ तुम्हारा और क्या काम हो सकता है मेरे दिलेर? देखो, महुए की गंध से मक्खियाँ पागल होकर निकल पड़ी हैं। खिले हुए फूलों ने बकुल की छाया में व्याकुलता भर दी है। सारी रात फूल चुन चुनकर तुम्हारे लिये सेज रच आई हूँ, दिलवर! चलकर एक बार बैठोगे?"

"छिः मुन्नी; यह क्या बकती हो! अभी कोई आ पड़ेगा या देख लेगा तो क्या समझेगा?"

"समझेगा? मैं उसके सामने ही तुम्हें छाती से लगा लूँगी।"

"राम राम मुन्नी बाई, तुम क्या सचमुच पागल हो गई हो?"

"तो यह बात तुम्हें इतने दिनों बाद समझ में आई प्यारे! तुम्हें पता नहीं कि जिस दिन अफरसियर खाँ के खेमे के बाहर तुम्हारा अतुलित सौंदर्य दिखाई पड़ा था उसी दिन से मुन्नी तुम्हारे लिये पागल है? इतने दिनों तक तुम्हारी आँखों पर पर्दा पड़ा था? जानेमन! पटना शहर की प्रसिद्ध मुन्नी बाई क्यों क्षण मात्र में पिता, माता, नाम, यश, उठती उम्र का रोजगार छोड़कर तुम्हारे दरवाजे पर कुतिया की तरह पड़ी हुई है, सो नहीं समझ सके? औरत केवल एक ही वजह से

सब कुछ छोड़ सकती है और मुन्नी ने उसी वजह से सबका त्याग किया है।"

कुछ देर स्तब्ध रहने के उपरांत असीम ने दृढ़तापूर्वक कहा—"मुन्नी, यह तो सचमुच मैंने नहीं समझा था। मेरा ख्याल था कि अफरसियर खाँ के भय से तुमने मेरे यहाँ आश्रय लिया है। तुम जानती हो कि मैं हिंदू हूँ, तुम जानती हो कि यह आचारवान् हिंदू ब्राह्मण का घर है, तुम जानती हो कि अनाथ और आश्रयहीन समझकर तुम्हें घर में स्थान दिया गया है, तुम जानती हो कि तुम मुसलमान हो, मेरे लिये अस्पृश्य हो? रोओ मत। रोने से कोई लाभ नहीं। यह बात अगर पहले बताई होती तो मैंने कभी का तुम्हें तुम्हारे पिता के यहाँ पहुँचा दिया होता।"

मुन्नी सिसक रही थी। असीम की बात समाप्त होने पर वह चुप हो गई और आँचल से आँसू पोंछकर बोली—"जानेमन, तुम अगर मुन्नी की बोटी बोटी करके कुत्तों के आगे डाल दो तब भी उसके मुँह से रूखी बातें नहीं सुनोगे। तुम लोग—तुम मर्द लोग इसी बुद्धि के सहारे हुकूमत करते हो, और इतना नहीं समझ पाते कि जो धूल तुम्हारे पैरों से पवित्र हुई है उसे अपने शरीर में लगाने के लिये कोई व्याकुल हुआ फिरता है? मेरे दिलेर, जानती हूँ कि तुम हिंदू हो, जानती हूँ कि तुम ऊँचे कुल के हो, जानती हूँ कि तुम वेश्या की लड़की के लिये दुर्लभ देवता हो, फिर भी मेरे प्राण, मैं स्त्री हूँ। क्षण भर के लिये तुम्हारे पैरों पर अपनी हीनता, दीनता, तुच्छ रूप और यौवन समर्पित करके ही मैं परम सुखी हूँ। यह सुख कितना बड़ा है, इसे तुम लोग समझ नहीं सकते प्राणेश्वर! तुम अपने रूप, यौवन, धन, मान, धर्म, वंशगौरव के साथ लौट जाओ। मुसलमान वेश्या की लड़की को स्पर्श करके उन्हें कलंकित मत करो। अगर कभी अवसर पाओ—अपनी सुख समृद्धि,

वैभव और अतुलित ऐश्वर्य के बीच अगर कभी समय पा सको—तो एक बार स्मरण कर लेना; मेरी आत्मा उतने से ही तृप्त हो जायगी।"

मुन्नी चली; असीम भी उसके पीछे पीछे खिंचे से चल पड़े। रुँधे कंठ से मुन्नी बोली—"आप कहाँ आ रहे हैं; लौट जायँ।"

असीम ने भी भरे हुए कंठ से जिज्ञासा की—"तुम कहाँ जा रही हो?"

सहसा मुन्नी घूमकर खड़ी हो गई और बोली—"बाबू साहब, आप निश्चिंत होकर वापस चले जायँ, घड़ी भर के लिये मेरा माथा खराब हो गया था, अब ठीक हो गया है। मैं मुन्नी हूँ, पटना शहर की तवायफ; गा-बजाकर पेट पालती हूँ। अब अपनी कसबी माँ के घर फिर कसब करने लौट जाती हूँ। डरना मत बाबू साहब! मैं मरूँगी नहीं। मेरी जातिवालों को मौत कहाँ?"

सहसा आगे बढ़कर असीम ने मुन्नी का हाथ थाम लिया और बोले—"मुन्नी, प्राण हथेली पर रखकर जब तुम्हारी रक्षा करने के लिये उस पठान के सामने खड़ा हुआ था तब स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि तुम्हें इस तरह विदा करना पड़ेगा! मुन्नी बाई, तुम्हारे माता पिता पटना शहर के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक कहते फिरते हैं कि असीम राय ने मेरी लड़की को फुसला लिया है। इसीलिये तुमसे कहने आया था कि तुम अपने घर लौट जाओ। और···और···और जानती हो कि अभी तक किसी ने मेरे साथ प्रेम नहीं किया। तुमसे...तुमसे वैसी बातें सुनने को आशा नहीं थी।"

मुन्नी ने अपना हाथ छुड़ाने की कोई चेष्टा नहीं की और असीम के पैरों पर लेट गई। आँसुओं से असीम का पैर धुल गया। सिसकती हुई मुन्नी बोली—"तुमने मुझे स्पर्श क्यों किया? मेरी वेश्या माँ ने

मेरे लिये जीवन का जो पथ निर्दिष्ट कर दिया था मैं उसी पथ का अवलंबन करने जा रही थी, प्राणनाथ ! तुम्हारे पवित्र स्पर्श से यह दीन हीन वेश्या की कन्या पवित्र हो उठी ! क्यों तुमने उद्देश्य नष्ट किया ? जो शरीर तुम्हारे स्पर्श से पवित्र हो चुका प्राणेश्वर; वह अब कामुक पुरुषों के पापी हाथों के स्पर्श से कलुषित नहीं होगा—देवता पर चढ़े फूल की तरह अब यह सदा निर्मल बना रहेगा।"

असीम ने मुन्नी का हाथ छोड़ दिया। मुन्नी ने आँखें पोंछकर कहा—"मेरे दिलेर, तुम जो कहोगे, मैं वहीं करूँगी; बोलो मैं कहाँ जाऊँ ?"

असीम ने रुँधे कंठ से कहा—"तुम अपने पिता के घर लौट जाओ।"

इसी समय प्रातःकालीन सूर्यकिरणों से आलोकित उद्यान को मुख-रित करती हुई किसी स्त्रीकंठ से निकली संगीत ध्वनि गूँज उठी—

"भालो जदि बासो निरवधि
तबे केनो ओ कालबरन,
कुंजांतरे सारा निशि फिरे
उषाकाले एले गुननिधि ?"[1]

गैरिक वसन धारिणी वंगदेशीय एक वैष्णवी खँजड़ी बजाती बजाती उद्यान में प्रविष्ट हुई।

१—हे कृष्ण, यदि तुम मुझे निरवच्छिन्न भाव से चाहते हो तो सारी रात पराए कुंजों में गवाँकर सबेरा होने पर यहाँ क्यों आए गुणनिधान !" —अनु०।

उनतीसवाँ परिच्छेद

विराग

वैष्णवी आकर पीपल की उसी जड़ के पास खड़ी हो गई। उसके चेहरे की ओर देखकर असीम ने पूछा—"तुम्हारा घर कहाँ है?"

वैष्णवी ने हँसते हुए झुककर प्रणाम किया और बोली—"छोटे हुजूर, मुझे पहचान नहीं सके; मैं सरस्वती हूँ! उसी डाहापाड़ा के मंदिर के पास मेरा घर है।"

असीम अत्यंत विस्मित होकर बोले—"वही तो, तुम सरस्वती ही तो हो! इस देश में कब आईं सरस्वती?"

"कल संध्या को आई हूँ। छोटे हुजूर तो अच्छे हैं? आप दोनों भाइयों के चले आने के बाद गाँव बिलकुल सूना हो गया है। घर कब लौटना होगा हुजूर?"

"लौटना कब होगा, सो कह नहीं सकता। कभी लौटूँगा कि नहीं, इसमें भी संदेह है!"

"यह कैसी बात? ऐसी बात मुँह पर नहीं लाया करते! आपका घर है, आपकी दौलत है, आप किसके लिये सब कुछ छोड़कर राह के भिखारी बने हुए हैं?"

"बहुत-सी बातें हैं सरस्वती ! तुम कहाँ जाओगी ?"

"वैष्णव की लड़की और कहाँ जाती है हुजूर ? काफी उमर हो चली है, देश-गाँव में अपना कहनेवाला कोई नहीं, इसलिये वृंदावन जा रही हूँ। आप लोगों के आशीर्वाद से इतनी दूर आ गई हूँ। मदनमोहन ने अगर बुला लिया तो वृंदावन पहुँच जाऊँगी।"

"इतना रास्ता कैसे पार करोगी ?"

"क्यों, पैदल !"

"दिन कैसे कटता है ?"

"भक्तजनों को देखती हूँ तो प्रभु का गुणगान करती हूँ—भगवान् जिस दिन जो कुछ जुटा देते हैं उसी पर संतोष करती हूँ। जहाँ संध्या होती है वहीं रात काट देती हूँ। और उपाय क्या है ?"

"अच्छा ही है। हम लोगों की खबर कहाँ लगी ?"

"यहीं सुना कि पास में कोई बंगाली अमीर सज्जन हैं। सोचा, और कुछ हो चाहे न हो, एक समय भोजन तो मिल ही जायगा !"

"बंगाली अमीर ! यहाँ तो विद्यालंकार महाशय रहते हैं।"

"ओ हो ! तब तो आज यहीं प्रसाद पाऊँगी।"

"तुम भीतर चली जाओ। सामने पूजाघर में दुर्गा होगी।"

सरस्वती भी मन ही मन भगवान से यही प्रार्थना करती थी। अनुमति मिलते ही वह अपने उद्देश्य-पथ पर आगे बढ़ी। असीम जितनी देर सरस्वती से बातें करते रहे उतनी देर मुन्नी चुपचाप खड़ी रही। अब असीम ने उससे पूछा—"मुन्नी, तुम कब जाओगी ?"

मुन्नी बोली—"अभी।"

"चलो मैं तुम्हें पहुँचा दूँ।"

"आपको अब झूठमूठ तकलीफ न दूँगी, मैं अकेली ही जाती हूँ।"

"तुम्हारा अकेली जाना ठीक नहीं क्योंकि तुम्हें लगभग सारा शहर पार करना होगा। यह पटना है, सवेरा रहने पर भी निरापद नहीं है।"

"कोई चिंता नहीं। पटने की कोई आदमी मुन्नी की देह पर हाथ नहीं लगाएगा—लगाते हैं केवल दिल्ली और आगरे के आदमी। जाने के पहले एक बात कहती जाऊँ बाबू साहब! अगर कभी अकस्मात् तुम्हारे सामने आकर खड़ी हो जाऊँ या अगर देखो कि जहाँ मेरे होने की कोई बात नहीं, वहाँ भी मैं उपस्थित हूँ तो आश्चर्य मत करना।"

"मैंने समझा नहीं, मुन्नी!"

"बाबू साहब, सात दिनों से लगातार तुम्हें देखती आई हूँ। शायद बीच बीच में एक बार की आँखों-देखी वस्तु को बारंबार देखने की प्रबल इच्छा का दमन नहीं कर पाऊँगी। मन की सारी शक्ति, देश, काल और पात्र के विचार को डुबोकर, तुम जहाँ रहोगे मेरे दिलेर—बाबू साहब, वहीं ले जाकर मुझे खड़ी कर देगी। तुम डरना मत, तुम्हारी जाति की या वंश के गौरव की कोई हानि न होगी।"

"काँटों में मत घसीटो मुन्नी, मैं जब, जहाँ, जिस अवस्था में रहूँ, तुम मेरे पास निःसंकोच चली आना। लेकिन तुम अकेली नहीं जाने पाओगी। चलो, मैं तुम्हें पहुँचा आऊँ।"

"इसके लिये माफ कीजिए। विशेष कारण है; मुझे अकेली ही जाना पड़ेगा। दुहाई है तुम्हारी प्राणनाथ!—बीच-बीच में यह संबोधन अब भी मुँह से निकल पड़ता है, लेकिन हिंदू और मुसलमान के उस एक ईश्वर का नाम लेकर सौगंध खाती हूँ कि कल से फिर नहीं निकलेगा।"

मुन्नी बगीचे से बाहर होकर राजमार्ग पर आ गई और कुछ दूर

जाने पर उसने देखा कि तामजाम में बैठा एक मुसलमान युवक शहर से लौट रहा है। वह सामने खड़ी हो गई और तामजाम ढोनेवालों से बोली—"रोको!" अपनी ओर आरोही के देखने पर उसने घूँघट हटा-कर कहा—"फरीद, तामजाम से उतर आओ।"

उसका चेहरा देखते ही फरीद एक छलाँग में तामजाम से बाहर कूद पड़ा और मुन्नी का हाथ पकड़ते हुए बोला—"मुन्नी जान, यह सब खुदा की करामात है। मेरी जान मानों इतने दिनों तक कलेजे का आशियाना छोड़कर कहीं उड़ गई थी। रहमतुलिल्लाह! मुन्नी जान, बोलो, आज तुम मेरी मजलिस गुलजार करोगी?"

"करूँगी, लेकिन दो घड़ी से ज्यादा नहीं ठहर सकूँगी।"

"यह भी कोई बात में बात है, मेरी माशूक!"

"सुभान अल्लाह! ऐसा मत कहना, मैंने निकाह कर लिया है।"

"तोबा तोबा; झूठ मत बोलो। इस चढ़ती जवानी के मजे छोड़ तुम भला ब्याह क्यों करने लगीं मुन्नी जान? जिसके नाक न हो, कान न हो, कमर झुक गई हो और जिंदगी का आफताब ढलने लगा हो वे जाकर निकाह के दोजख में गिरें। मुन्नी जान, तुम पटना शहर के अँधेरे की रोशनी हो और सूबा बिहार की बुलबुल। इतने दिन तुम्हें न देख सकने की वजह से मैं फकीरी अख्तियार करने जा रहा था।"

"देखो फरीद, बीच रास्ते में खड़े होकर पागलपन करना अच्छा नहीं; अगर ज्यादा गोलमाल करोगे तो तुम्हारी महफिल में नहीं जाऊँगी। अपना तामजाम खाली कर दो और मुझे जरा महेंद्रु तक पहुँचा दो।"

"क्या मामला है, इश्क?"

"झाड़ू लगाऊँगी इश्क के मुँह में ! दुनिया में आकर बहुत इश्क कर लिया, अब कुछ आकबत की सोचने दो।"

मुन्नी तामजाम में सवार हो गई और सिर का घूँघट आगे सरका लिया। धनवान का बेटा फरीद अनुगत सेवक की भाँति साथ साथ चला। महेंद्रु पटना के पास ही है। उस समय इस ओर अनेक साधु-संन्यासी रहा करते थे। महेंद्रु के पास पहुँचकर मुन्नी ने फरीद से पूछा—"फरीद भाई, किसी हिंदू फकीर के साथ तुम्हारी जान-पहचान है ?"

विस्मित होकर फरीद बोला—"तोबा तोबा, हिंदू फकीर क्या करेगा मुन्नी जान ?"

"मेरा शौहर निकाह करके बिगड़ गया है, उसे अपने बस में करने की दवा माँगूँगी।"

"तुम्हारा शौहर बिगड़ गया ? मुन्नी जान, पता नहीं पटने की बाकी औरतों के शौहर कैसे रहते हैं ?"

"उन लोगों ने इलाज सीख रखा है। मुझे तो इतने दिनों तक शौहर था नहीं इसलिये इलाज की भी जरूरत नहीं पड़ी।"

"तोबा तोबा ! मुन्नी जान, तुम्हारा शौहर या तो पागल था या दीवाना।"

"हटाओ इन बातों को भाई, मुझे हिंदू फकीर के यहाँ ले चलो।"

महेंद्रु में एक पुराने तालाब के किनारे एक ओर ब्रह्मचारी और संन्यासी लोग और दूसरी ओर फकीर लोग रहते थे। संन्यासी और फकीर प्रति दिन आते जाते रहते थे, फिर भी उस प्राचीन तालाब के दोनों किनारे सदा संन्यासियों और फकीरों से भरे रहते थे। तालाब के पास ही तामजाम और फरीद खाँ को छोड़कर मुन्नी पैदल आगे

चली। तालाब के किनारे एक पुराने इमली के पेड़ के नीचे जटा जूट-धारी एक संन्यासी धुनी रमाए बैठे थे। मुन्नी ने उन्हें साष्टांग प्रणाम करके कहा—"बाबा जी, आपसे कुछ पूछना चाहती हूँ।"

उसकी वेषभूषा देखकर बाबाजी बोले—"पहले सेवा लगाओ।"

मुन्नी ने पूछा—"क्या सेवा लगाऊँ बाबा जी?"

संन्यासी ने मुसकुराते हुए उत्तर दिया—"दो चार रोज मेरा भजन भाव तो करो।"

विरक्त होकर मुन्नी वहाँ से आगे बढ़ी। पास ही दूसरे पेड़ के नीचे एक युवक ब्रह्मचारी दोनों आँखें फाड़े उसके उभड़ते यौवन की कमनीय कांति को भूखे बाघ की तरह देख रहा था। उसे प्रणाम करके मुन्नी ने पूछा—"बाबा जी, आपसे एक बात पूछ सकती हूँ?"

ब्रह्मचारी ने आग्रहपूर्वक उत्तर दिया—"एक क्यों, दस पूछो, बीस पूछो लेकिन जरा बैठो तो......"

खिन्न होकर मुन्नी आगे चली। एक एक करके सभी संन्यासियों को दूर से देखने के उपरांत वह तालाब के छोर पर वाले एक वृद्ध ब्रह्मचारी के पास पहुँची।

उन्होंने कहा—"तुम्हें अगर बहुत सी बातें पूछनी हों तो फिर किसी समय आना।"

उत्तर सुनकर मुन्नी ने समझा कि इसी जगह मेरा उद्देश्य सिद्ध होगा, इसलिये अपनी खूँट से खोलकर उसने चाँदी का एक सिक्का निकाला और ब्रह्मचारी के पावों के पास रख दिया।

सिक्के की ओर अवज्ञापूर्ण दृष्टि से देखते हुए उन्होंने कहा—"रुपए देकर अपने प्रश्नों का उत्तर नहीं पा सकोगी।"

लज्जित होकर मुन्नी ने रुपया उठा लिया और प्रणाम करके थोड़ी दूर पर बैठ गई। उसे देखकर ब्रह्मचारी बोले—"माई, कह तो दिया

कि ज्यादा बातचीत का अभी समय नहीं है, दो एक बातें अगर पूछना चाहो तो पूछ लो।"

बड़े संकोच से, हिचकती हुई मुन्नी बोली—"बाबा जी, मैं वेश्या की लड़की हूँ लेकिन मेरे पिता मुसलमान हैं।" इतना कहकर वह चुप हो गई लेकिन साधु ने कोई उत्तर नहीं दिया। तब मुन्नी ने पुनः कहना आरंभ किया—"बाबा जी मैं क्या हिंदू हो सकती हूँ?"

"अगर निरुद्देश्य भाव से होना चाहती हो तो अभी हो सकती हो।"

मुन्नी ने आग्रहपूर्वक पूछा—"कैसे?"

"शरीर, मन और वाणी से हिंदुओं का अनुकरण करना, मुसलमानों के आचार-व्यवहार छोड़कर हिंदुओं के आचार-व्यवहार ग्रहण करना। इतना अगर कर सको तो फिर मुझसे मिलना, इस समय जाओ।"

मुन्नी उठी। उसके यौवन-माधुरी-मंडित देह-लालित्य के दर्शन लाभ के लिये पचासों संसार-त्यागी संन्यासियों की लोलुप आँखें उसके पीछे दौड़ चलीं।

तीसवाँ परिच्छेद

ग्रहों का फेर

मुन्नी जिस समय घर लौटी बड़ी बहू उस समय रसोई बना रही थीं। सहसा आँगन में कोई बोल उठा—"जय राधेकृष्ण! भीख दे दीजिए, बहू जी!"

पटना शहर में मुर्शिदाबाद का देहाती उच्चारण और ठेठ बँगला बातचीत सुनकर बहू जी चौंकीं। उन्होंने घूमकर देखा, लंबा टीका लगाए, हाथ में खँजड़ी लिए, रामनामी ओढ़े गतयौवना सरस्वती वैष्णवी आँगन में खड़ी है। बड़ी बहू रसोई छोड़कर बाहर आ गईं और सरस्वती को ध्यानपूर्वक देखकर बोलीं—"ओहो! सरस्वती? तुम इधर कब आईं? आओ आओ, बैठो बैठो।"

सरस्वती ऊपर रसोई घर के दरवाजे के पास बैठ गई और बोली—"कल संध्या को आई हूँ।"

"जाओगी कहाँ सरस्वती बहन?"

"वृंदावन। वैष्णव की स्त्री बुड्ढी होने पर और कहाँ जाती है, बोलो?"

"संसार की मोह माया बिलकुल छोड़ दी तुमने?"

"मेरा है ही कौन बहू जी, जिसके लिये घर में बैठी रहूँ। गा बजाकर पेट पालती थी, सो भी बंद कर दिया है। मुर्शिदाबाद में भीख मिलनी भी कठिन है। इसलिये सोचा कि वृंदावन चलूँ, श्रीकृष्ण भगवान के दरवाजे पर पड़ी रहूँ। दुर्गा दीदी कहाँ हैं?"

अपरिचित कंठस्वर सुन दुर्गा धीरे धीरे आकर सरस्वती के पीछे खड़ी हो गई थी, इसे सरस्वती ने देखा नहीं। वह बोली—"बहुत ठीक, अब जाकर दुर्गा की सुध आई है!"

सरस्वती पीछे फिरकर और दाँत तले जीभ दाबकर साष्टांग प्रणाम करके बोली—"अरे रे! यह क्या, ऐसी क्या बात बहन! तुम्हें गोद खिलाकर इतना बड़ा किया है। तुम्हें भला भूल सकती हूँ; तुम तो मेरी आँखों की पुतली ठहरीं। कैसी हो दुर्गा बहन?"

"क्या बताऊँ कैसी हूँ बहन! भगवान ने जैसी रखा है वैसी ही हूँ।"

सरस्वती ने देखा कि डाहापाड़ा छोड़ने के अनंतर दुर्गा में परिवर्तन नहीं हुआ। वह अत्यंत बुद्धिमती थी अतएव अपने मन का भाव उसने तुरंत छिपा लिया। वह समझ गई कि डाहापाड़ा में नवीन नाई और अन्यान्य लोगों के मुँह से दुर्गा और विद्यालंकार महाशय के गाँव छोड़ने के विषय में उसने जो कुछ सुना था वह सब काल्पनिक था। अतः अब वह अत्यंत सतर्क हो गई। उसने सुना था कि हरि-नारायण विद्यालंकार की विधवा कन्या ने असीम का वियोग सहन न कर सकने के कारण पिता के साथ देशत्याग किया है, विधवा का वेश छोड़-कर पुनः सधवा जैसा श्रृंगार कर लिया है और बंगाल की सद्-गृहस्थ गृहिणियों के अलंकार—लज्जा—का परित्याग कर वेश्याओं की भाँति आचारण करना आरंभ कर दिया है। उसने देखा कि विद्यालंकार की

कन्या की शुष्क और अनशन से क्लांत देह पर विलास का कोई चिह्न तक नहीं है। बंगाल की सधवा स्त्रियों का कोई चिह्न उसके शरीर पर दिखाई नहीं देता; लज्जाविहीन प्रगल्भता का लेश मात्र उसके आचरण में नहीं है। इसलिये सरस्वती ने मौका समझकर बात पलट दी। वह बोली—"सो तो है ही दीदी; इतने दिनों बाद दर्शन मिला, ऐसे ही हालचाल पूछ रही थी बहन; और क्या कहूँ, बताओ? मुँहजले भगवान ने तुम्हें क्या आदमी रहने दिया है? पंडित जी कहाँ है?"

"वे पूजा कर रहे हैं। उनके मन का भाव जैसा है उससे मुझे आशा नहीं है कि अभी वे डाहापाड़ा के किसी आदमी से मुलाकात करेंगे। बुरा मत मानना दीदी, बाबू जी न जाने कैसे हो गए हैं।"

"होने की बात ही है बहन, मनुष्य आखिर कितना सहन करे? मुझको ही देखो, घोर कष्ट के कारण बाप दादों की देहली छोड़कर चली आई!"

इसी समय मन ही मन कोई गीत गुनगुनाते हुए एक लंबे कद के आदमी ने आँगन में प्रवेश किया। उन्हें देखकर बड़ी बहू ने सिर पर का कपड़ा थोड़ा आगे सरका लिया। सरस्वती ने उठकर साष्टांग प्रणाम किया। आगंतुक ने कहा—"नि सा सा, ग म प। वैष्णवी दीदी हो! बताओ भला, क्या गा रहा हूँ।"

प्रश्न सुनकर बड़ी बहू घूँघट के भीतर से बोल उठीं—"चाल देखकर देह जल जाती है। समय नहीं, असमय नहीं, खाली गाना, खाली गाना, खाली गाना! आदमी इतनी दूर से आया है, उसका कहाँ आदर सत्कार करना, बैठने के लिये कहना, सो नहीं—बताओ क्या गाता हूँ, बताओ क्या गाता हूँ।"

सुदर्शन ने हँसते हुए कहा—"गुस्सा क्यों करती हो? यह तो

परस्पर की प्रिय चर्चा है। जैसे तुम लोग चार औरतें इकट्ठी बैठती हो तो तरकारी के पाँच प्रकार के बघार की पचीस प्रकार की आलोचना करती हो वैसे ही अपने पेशे का आदमी मिलने पर हमारी इच्छा भी वैसी ही बातचीत करने की होती है।"

बड़ी बहू—"अच्छा, अब आना तरकारी खाने।"

दुर्गा—"नाराज क्यों होती हो भाभी, भैया ने तो ठीक ही कहा।"

बड़ी०—"ओ हो! बहन भाई की अच्छी जोड़ी है!"

दुर्गा—"तेरे मुँह में आग।"

सुदर्शन—"बड़ी आफत है। अच्छा सरस्वती दीदी, कब आई? नि, सा सा, ग म प।"

बड़ी०—"देखा न। मैं क्या शौक से कह रही हूँ? इनके ढंग देखकर सचमुच देह जल जाती है।"

सुद०—"सरस्वती दीदी, तुम इस औरत की बातों पर कान मत देना।"

सर०—"कल संध्या को आई हूँ।"

सुद०—"यात्रा किधर की है?"

सर०—"बूढ़ी होने पर वैष्णवी जिधर की यात्रा करती है—श्यामचंद्र के श्रीवृंदावन की।"

सुद०—"नि सा सा, ग म प। सुर बिलकुल ठीक उतरा है, बिगड़ा नहीं! वैष्णवी दीदी, बताओ क्या चीज है?"

बड़ी०—"ना भाई दुर्गा, तू ही बैठ; मैं उठी जा रही हूँ।"

सुद०—"अरे नाराज क्यों हो रही हो भाई? तुम लोगों की तरकारी और मछली का झोल जिस तरह ठीक उतरता है उसी तरह गीत भी ठीक उतरता है। सरस्वती दीदी, औरतों में तुम्हारी तरह गुणी मैंने बहुत कम देखा है। बोलो तो, कौन सा राग है।"

सर०—"एक बार और गाइए भाई साहब।"

सुद०—"नि सा सा, ग म प, प, प, प, प, सा, म म, म म, ग म म, ग म म, ग रे सा, रे, रे नि, सा सा, ग म प।"

सर०—"भीम पलासी।"

सुद०—"बिना तुम्हारे ऐसी चर्चा कौन करे वैष्णवी दीदी! आज सबेरे से ही यह राग दिमाग के भीतर घुसा हुआ है। मुन्नी बाई कहाँ गई दुर्गा?"

बड़ी०—"उस गुड़ में चींटे नहीं लगने के! चिड़िया फुर्र हो गई।"

दुर्गा—"भैया, मुन्नी इतना ही कह गई है कि मैं अपनी माँ के यहाँ जा रही हूँ।"

सुद०—"अकेली ही गई है?"

दुर्गा—"हाँ, कहती थी कि मैंने छोटे भैया से पूछ लिया है। बाबूजी से उसने मिलना नहीं चाहा; बोली—मैं अभी पटना छोड़कर कहीं और नहीं जाऊँगी; फिर किसी दिन आकर उनसे मिल लूँगी।"

सुद०—"आफत टली, जान बची।"

बड़ी०—"मैं तो सोचती थी कि सुनकर तुम्हारी छाती फट जायगी।"

सुद०—"इस लड़की के गले की आवाज बड़ी मीठी है, लेकिन बाकी सब दो कौड़ी का है। वह गई, प्राण बचे। इस छोटे राय के कारण मुझे रात में अच्छी तरह नींद नहीं आती थी। वह गया कहाँ अब?"

बड़ी०—"जाओ जाओ, देखो; कहीं मुन्नी अपनी खूँट में बाँध न ले गई हो।"

सुद०—"सर्वनाश हुआ! हँसी नहीं, सरस्वती दीदी। तुम तो अभी पटने में कुछ दिन रहोगी। यहीं रहना। मैं छोटे राय का पता लगाने जा रहा हूँ।"

सुदर्शन ने बड़ी घबराहट में घर छोड़ा। यह देखकर सरस्वती ने दुर्गादेवी से पूछा—"भाई साहब कहाँ जा रहे हैं?"

दुर्गा के उत्तर देने के पहले ही बड़ी बहू ने हँसकर कहा—"मेरा जला कपाल, और क्या। शायद तुम्हें पता नहीं वैष्णवी दीदी, तुम्हारे भाई साहब पटने में आकर एक बाई जी के प्रेम में एकदम उभ चुभ हो रहे हैं। छोटे राय के बहाने उसके पीछे पीछे फिरते हैं।"

दुर्गादेवी बोल पड़ीं—"मुँहजली, निर्दोष ब्राह्मण को व्यर्थ कलंक लगा रही है। जा, तुझे इसका महापाप भोगना पड़ेगा।"

बहू ने मुसकुराते हुए अपनी ननद से कहा—"भोगना पड़े, आधा तो ब्राह्मण को भी भोगना पड़ेगा?"

वास्तविक बात समझ न सकने के कारण सरस्वती कुछ बोली नहीं। उसने जिज्ञासा की—"यह मुन्नी बाई किस जाति की है?"

बड़ी बहू ने हँसते हुए कहा—"अब पड़ी हो चक्कर में वैष्णवी दीदी!"

वैष्णवी ने पूछा—"क्यों? बाई जी किस जाति की हैं?"

इकतीसवाँ परिच्छेद

मयूर सिंहासन की ओर

विक्रम की अठारहवीं शताब्दी के अंत में पटना नगर के पूरबी भाग में आम का एक प्राचीन लावारिस बगीचा था। सरकारी कागज पत्रों में उसका नाम था 'अफजल खाँ का बगीचा', लेकिन यह अफजल खाँ कौन था, कब वर्तमान था, इसका कोई पता नहीं था। बगीचे के वास्तविक मालिक थे गाँव के बालकवृंद, क्योंकि वे ही उसका फल खाते—अवश्य ही, पकने के बहुत पहले और बिना नमक के। सन् ११२४ हिजरी में अफजल खाँ का बगीचा सहसा बहुत गुलजार हो गया था, क्योंकि शाहजादा फर्रुखसियर ने मुर्शिदाबाद से कूच करके शाहजहानाबाद जाते समय इसी बगीचे में डेरा डाला था। बहुत दिनों तक एक ही जगह पड़े रहने के कारण खेमे मैले हो गए थे, दो-एक फट भी गए थे और सारी छावनी जैसे श्रीहीन हो चली थी। वैशाख मास के आरंभ में एक दिन प्रातःकाल उसी बगीचे में एक आम्रवृक्ष के नीचे एक लंबे चौड़े युवक टहल रहे थे। थोड़ी देर के बाद एक सवार ने आकर उनके सामने सिर झुकाया और कहा—"वे खेमे में नहीं हैं।"

टहलना बंद करके युवक बोले—"बाई जी का ढूँढ़ना तुम्हारे बस का नहीं, किसी हिंदू सवार को भेजो।"

सवार सलाम करके चला गया और युवक ने पुनः टहलना आरंभ किया।

सरस्वती वैष्णवी के विद्यालंकार महाशय के अंतःपुर में प्रवेश करने के उपरांत असीम शीघ्रतापूर्वक बगीचे के बाहर आए और उन्होंने देखा कि मुन्नी वहाँ नहीं है। कुछ देर तक वे उसे आस पास ढूँढ़ते रहे लेकिन उसका कुछ भी पता नहीं चला। उस समय तक रास्ता चलना आरंभ नहीं हुआ था इसलिये वे किसी से कुछ पूछ भी नहीं सके। अन्यमनस्क होकर चलते चलते वह मुन्नी की माँ के घर तक पहुँच गए। वृद्ध पठान उस समय फर्शी हाथ में लिए दरवाजे पर खड़ा तंबाकू पी रहा था। असीम ने उससे पूछा—"खाँ साहब, क्या मुन्नी घर लौट आई?"

वृद्ध ने क्रोध से काँपते हुए कहा—"बदबख्त! मसखरी करता है! अगर मेरे कोई लड़का होता तो तुझे ठीक ठीक जवाब देता।"

विस्मित होकर असीम बोले—"खाँ साहब, कसूर माफ कीजिएगा। मैं हँसी नहीं करता। मुन्नी क्या सचमुच घर नहीं लौटी?"

"कहने से इतमीनान नहीं होता तो घर में घुसकर देख लो।"

"फिर वह गई कहाँ?"

"इसका जवाब तुम्हारे सिवा और कौन दे सकता है?"

"ईश्वर की सौगंध खाँ साहब, मुन्नी हमारे यहाँ से रुखसत होकर चली आई है।"

"तो शायद उसे तुम्हारी ही तरह कोई दूसरा खरीददार मिल गया है।"

"तोबा तोबा; भगवान जानता है, मैं उसका खरीददार नहीं हूँ।" इतना कहकर असीम उसके मकान से आगे बढ़े। जब वे आँखों से

ओझल हो गए तो घर के भीतर से वृद्ध रुस्तमदिल खाँ ने हाथ में गुड़गुड़ी लिए, डगमगाते हुए, गुलशेर के पास आकर पूछा—अरे जरा बताओ गुलशेर खाँ, दामाद क्या दे गया।"

गुलशेर का जी जल गया, बोला—"यह काफिर अगर मेरा दामाद हो तो खुदा करे मैं दोजख से कभी बाहर न निकलूँ।"

कसम सुनकर दूसरा वृद्ध बोल उठा—"तोबा तोबा, यह क्या किया? तवायफ के पेट से पैदा लड़की के लिये इतनी बड़ी कसम खा ली? जैसा जमाना आया है उसमें ऐसा आदमी अपनी मुट्ठी में रहने पर बड़ा काम दे सकता है। अच्छा, कुछ सुना है तुमने?"

उदास भाव से गुलशेर खाँ ने कहा—"और क्या सुनूँगा? जान पड़ता है, मुन्नी इस हरामखोर को छोड़कर कहीं और चली गई है।"

रुस्तमदिल खाँ ने अपना पोपला मुँह फैलाकर कहा—"अरे, नहीं नहीं, वह सब नहीं। इस बुड्ढी रंडी ने तो तुम्हारे माथे पर ऐसी लकड़ी घुमाई है कि उसके भीतर और कोई बात घुसेगी ही नहीं। मैं कहता हूँ, कोई नई खबर सुनी है?"

"कैसी खबर?"

"सुभान अल्लाह! अरे, बादशाह अजीमुश्शान फौत कर गए। बादशाह जहाँदार शाह तीनों भाइयों को फतह करके दिल्ली आ रहे हैं।"

"जायँ जहन्नुम में!"

"देखो गुलशेर खाँ, तुम्हारे अंदर बूँद भर भी बुद्धि नहीं है। तुम्हारी तो किस्मत चमकनेवाली है। जानते नहीं, फरुखसियर को या तो मरना पड़ेगा, या लड़ना पड़ेगा। अगर फरुखसियर की फतह हुई...।"

"फिर; मुझसे मतलब ?"

"अरे अहमक, तेरी लड़की वजीर की बेगम होगी।"

"तोबा तोबा !"

उसी समय एक सवार तीर की तरह घोड़ा दौड़ाता उत्तर की ओर भागा जा रहा था। दोनों बुड्ढों को देखकर उसने घोड़े को रोका। सुंदर, मजबूत अरबी जानवर लगाम पर जोर पड़ने से दोनों पिछले पैरों पर खड़ा हो गया। सवार ने पूछा—"आप लोगों ने इधर से किसी लंबे तगड़े गोरे जवान को जाते देखा है ?"

गुलशेर खाँ ने मुँह फेर लिया, उसके प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया; लेकिन रुस्तमदिल खाँ ने अपना पोपला झुर्रीदार मुँह फैलाकर कहा—"हाँ देखा है; तुम नए बंगाली अमीर राय जी साहब के बारे में पूछते हो क्या ?"

उत्तर सुनकर सवार को मानों स्वर्ग मिल गया; बोला—"हाँ, वे किधर गए, बता सकते हो ?"

रुस्तम दिल खाँ ने जिधर असीम गए थे उधर उँगली उठा दी। सवार ने एक रुपया फेंका और घोड़ा भगाता हुआ उधर चल पड़ा।

वृद्ध रुपया उठाकर बजा ही रहा था कि सवार ने असीम को जा पकड़ा। घोड़े से उतरकर उसने असीम से कहा—"जनाब, बहुत जरूरी तलब है। आप मेरा घोड़ा लेते जायँ; मुझे पैदल जाना होगा।"

उसे देखकर असीम बड़े विरक्त हुए। उस समय उनके मन में मुन्नी की चिंता ही प्रबल थी। वह कहाँ गई, अपने पिता के घर क्यों नहीं लौटी, इसे वे समझ नहीं पा रहे थे। अपनी विरक्ति को दबाकर उन्होंने सवार से पूछा—"जरूरी तलब क्यों हुई है, कुछ बता सकते हो ? थोड़ी देर बाद जाने से काम नहीं चलेगा ?"

सवार ने आग्रहपूर्वक कहा—"हुजूर, दिल्ली से सवार आया है। वह शायद कोई बुरी खबर लाया है क्योंकि मैंने अपनी जिंदगी में शाहजादा को इतना घबड़ाया हुआ कभी नहीं देखा।"

बहुत विरक्त होने पर भी असीम अपना मनोभाव रोककर घोड़े पर सवार हुए और क्षण मात्र में छावनी में लौट आए। पूर्वोक्त लंबे चौड़े युवक उस समय भी उसी आम्रवृक्ष के नीचे टहल रहे थे। असीम को देखकर उन्होंने लंबी साँस लेते हुए कहा—"तुम आ गए, चलो जान बची। भाई, मैंने तो सोचा कि विपत्ति में तुम भी मुझे छोड़कर चले गए।"

असीम ने अत्यंत विस्मित होकर पूछा—"विपत्ति कैसी शाहजादा ?"

"अब रहा क्या, सब समाप्त है! सुख-स्वच्छंदता, बादशाही का सपना, सब कुछ समाप्त हो गया! दिल्ली से सवार आया है। पिता जी नहीं रहे; जहाँदार शाह ने मयूरसिंहासन पर अधिकार कर लिया है।"

थोड़ी देर तक सोच-विचार करके असीम ने कहा—"शाहजादा, यह अधीर होने का समय नहीं है। राजपथ पर खड़े खड़े खुल्लम-खुल्ला इन सब बातों की आलोचना करना उचित नहीं, आप खेमे के अंदर चलें।"

दोनों आदमी खेमे के भीतर प्रविष्ट हुए। असीम ने लाहोर के युद्ध का परिणाम सुना। समस्त घटनावली सुनाकर अंत में फर्रुखसियर ने कहा—"असीम भाई! आज सचमुच तुम्हें भाई कहकर संबोधित कर रहा हूँ; कारण, अब मैं शाहजादा नहीं रहा—हिंदुस्तान का कोई भिखारी भी मेरी अपेक्षा अधिक भाग्यवान है। अभी भी मेरे चारों ओर शाह-

जादे का टीम टाम अवश्य है, लेकिन मेरी वास्तविक स्थिति क्या है, जानते हो ? मैं शायद अफरसियर खाँ का कैदी हूँ। मुट्ठी भर सोने के लिये कोई भी मेरा कटा हुआ सिर जहाँदारशाह की नजर कर सकता है। भाई मेरे, आज सगे भाई की तरह तुम्हें एक काम करना होगा—मेरी बेटी का भार ग्रहण करो, मेरा और कोई नहीं है।"

असीम ने धीरे धीरे कहा—"शाहजादा, आप क्या करेंगे ?"

"सोचता हूँ, फकीर होकर आसाम या अराकान की ओर निकल जाऊँगा।"

"शुजा के ऊपर जो बीती थी, जानते हैं न ?"

"इसीलिये तो तुमसे अनुरोध करता हूँ कि मेरी बेटी का भार स्वीकार करो।"

"शाहजादा, आप बिना कुछ उद्योग किए, बिना किसी चेष्टा के सब कुछ छोड़कर चले जायँगे, यह क्या पुरुषोचित कार्य होगा ?"

"और क्या करूँ, बोलो। अजीमुश्शान बादशाह को बहुत प्यारे थे; धनबल, सैन्यबल, बुद्धिबल उनके पास सभी कुछ तो था। लेकिन मैं बुद्धिहीन, सैन्यहीन और धनहीन हूँ। जहाँदार सिंहासन पर आसीन है। मैं क्या लेकर दिल्लीपति के विरुद्ध खड़ा होऊँगा। सूबेदारी फौज प्रायः विद्रोही है। छावनी में अहदी हैं ही कितने ? अहमदबेग कहता था, मुर्शिदाबाद के रुपए खत्म हो चले हैं।"

फर्रुखसियर की बात समाप्त होने पर असीम थोड़ी देर तक सिर झुकाए सोचते रहे; फिर धीरे धीरे बोले—"शाहजादा, धनहीन, बुद्धिहीन, बलहीन जहाँदारशाह अगर सिंहासन पर अधिकार कर सकता है तो आप क्यों नहीं कर सकेंगे ?"

फर्रुखसयिर बोले—"राय जी, तुम जानते हो कि खुद असद खाँ और उसका बेटा जुलफिकार खाँ जहाँदार खाँ के सहायक हैं।"

"इससे कुछ आता जाता नहीं। असद खाँ और जुलफिकार खाँ से भी श्रेष्ठ आदमी मिल सकते हैं। शाहजादा, फकीरी में और मृत्यु में विशेष अंतर नहीं है। मृत्यु के बाद जो कुछ होता है वह हम लोगों की बुद्धि के बाहर की बात है और अगर मृत्यु ही शेष रह गई है तो उसे तो किसी समय भी गले लगाया जा सकता है। लेकिन उसके पहले एक बार क्या आखरी कोशिश करके देखना नहीं चाहिए?"

"क्या कोशिश करूँ, राय जी?"

"अपने पिता और बड़े भाई के न रहने पर आप सिंहासन के अधिकारी हैं। चेष्टा करके देखें। अगर कोई फल नहीं निकलता तो फकीरी तो है ही।"

"राय जी, इन्हीं पाँच सौ अहदियों के भरोसे तुम मुझे जुलफिकार खाँ से लोहा लेने के लिये कहते हो?"

"बादशाह! पाँच सौ को पाँच लाख होते देर नहीं लगती।"

फर्रुखसियर उसी जीर्णशीर्ण खेमे के भीतर बैठे बहुत देर तक सोच विचार करते रहे। लगभग आधा घंटा बीत गया। सहसा वे बाल उठे—"राय जी, तुम्हारा ही कहना ठीक है—मैं मौत के डर से घबरा गया था। या तो सिंहासन मिलेगा, या मृत्यु—फर्रुखसियर के लिये तीसरा रास्ता नहीं है। मैं भीतर जा रहा हूँ। माँ के पास अभी दो हजार अशर्फियाँ बची हैं। उनसे सूबेदारी फौज को अपने वश में रखना होगा। तुम छावनी छोड़कर ज्यादा देर के लिये बाहर मत जाना।"

तब फर्रुखसियर मयूर सिंहासन की और असीम मुन्नी की खोज में निकले।

बत्तीसवाँ परिच्छेद

दूसरे असीम

मुन्नी लौट आई। असीम के जाने के घंटे भर बाद फरीद खाँ ने अपने तामजाम में मुन्नी को उसके घर पहुँचा दिया। मुन्नी की माँ ने चकित होकर देखा कि उसकी लड़की ने पायजामा छोड़ साड़ी पहन ली है, समस्त आभूषण उतार दिए हैं, लेकिन उसने कुछ पूछा नहीं। उसकी उपार्जनशीला कन्या घर लौट आई, यही उसके लिये बहुत था। मुन्नी ने आमिष भोजन का परित्याग कर दिया था; घर लौटकर उसने अपने हाथ से भोजन बनाकर खाया, इसपर भी उसकी माँ ने कुछ नहीं कहा। संध्या समय जब फरीद खाँ उसे लिवाने आया तब वह यथा-योग्य साज श्रृंगार कर चली गई। इसे देखकर मुन्नी की माँ अवाक् रह गई। मुहल्ले की दरगाह में जाकर वह पीर की पूजा कर आई और बहुत कुछ निश्चित हो गई।

छावनी से निकलकर असीम फिर मुन्नी की खोज में चले। वे जब तक फर्रुखसियर के साथ बातचीत कर रहे थे तब तक भूपेंद्र के आदेशानुसार नवकृष्ण छावनी के एक ओर खड़ा रहा। असीम के बाहर आने पर उसने उन्हें साष्टांग प्रणाम करके कहा—"हुजूर, भोजन तैयार है।"

बात उसने इतने विनीत ढंग से कही कि वह मुन्नी की चिंता में ग्रस्त असीम के कानों में प्रविष्ट नहीं हो सकी। यह देखकर नवकृष्ण ने अपना स्वर थोड़ा और तेज करके कहा—"हुजूर ?"

असीम के चिंतास्रोत में बाधा पड़ी, भौंहों में बल देते हुए उन्होंने पूछा—"क्या चाहिए ?"

नवकृष्ण ने साहस बटोरकर कह डाला—"हुजूर भोजन तैयार है।"

बहुत विरक्तिपूर्वक असीम बोले—"छोटे हुजूर से कह दे, भोजन कर लें; मैं अभी भोजन नहीं करूँगा।"

असीम ज्योंहीं वहाँ से आगे बढ़ने को हुए, नवकृष्ण ने पुनः कहा—"हुजूर !"

"अब क्या है ?"

"आप क्या पंडित जी के यहाँ भोजन करेंगे ?"

"पंडित जी जायँ जहन्नुम में।" इतना कहकर असीम वहाँ से चले गए।

नवकृष्ण बहुत ही चतुर नौकर था। असीम के वहाँ से चले जाने पर वह प्रायः आध घंटे तक वहीं खड़ा रहा। उसने मन में सोचा कि हुजूर की हालत ठीक नहीं है। बाई जी के आने के बाद से ही ये सब लक्षण प्रकट होने लगे हैं इसलिये शीघ्र इस रोग की दवा न करने से परिणाम और भयंकर होगा। तीन आदमियों को समाचार देना बहुत आवश्यक है। एक तो छोटे हुजूर को, दूसरे सुदर्शन महाराज को और तीसरे दुर्गादेवी को। यह सोच विचारकर वह खेमे के भीतर लौट गया और भूपेंद्र से बोला—"हुजूर कह गए हैं कि मैं भोजन नहीं करूँगा; छोटे हुजूर अकेले भोजन कर लें और पंडित जी जहन्नुम में जायँ।"

उसकी बातों का अंतिम अंश सुनते ही भूपेंद्र ने भ्रू-संकोच करके पूछा—"क्या कहा ?"

नवकृष्ण ने हाथ जोड़कर आँखें बंद किए किए कहा--"हुजूर, मैं नमक का गुलाम हूँ, हुजूर माँ बाप हैं, बड़े हुजूर के स्वयं अपने मुँह से कहे बिना मेरी मजाल है कि ऐसी बात जबान पर लाऊँ।"

उसका उत्तर सुनकर भूपेंद्र को बड़ी चिंता हुई और उसने पूछा--"भैया क्या बहुत चिंतित दिखाई पड़ते थे ?"

"हुजूर तो बिलकुल पागलों जैसे हो गए थे। आँखें दोनों लाल थीं, पगड़ी खुल गई थी, अंगा आधे के लगभग गायब था।"

"नवा, मैं भी भोजन नहीं करूँगा। तू तामजाम ले आ, मैं बाहर जाऊँगा।"

तामजाम आने पर भूपेंद्र बाहर निकला। छावनी में आने पर उसे जो समाचार मिले उनसे उसका मन और भी उद्विग्न हो गया। भय से सभी घबड़ाए हुए थे; सबके मन में किसी अज्ञात अमंगल की आशंका हलचल मचाए हुए थी। कोई किसी की बात नहीं सुनता था, और सभी अपनी अपनी कहते जाते थे। सब के मुँह पर एक ही बात थी—"भाग्य फूट गया।"

बातों बातों में भूपेंद्र को ज्ञात हुआ कि नए बादशाह अजीमुश्शान की हार हो गई; वे मार डाले गए और उनके बड़े भाई जहाँदार शाह मयूरसिंहासन पर आसीन हैं। फर्रुखसियर के अनुचरों में से बहुतेरे उन्हें छोड़कर भाग जाने के लिये तैयार हैं, सभी का कहना है कि हमारी मौत निश्चित है। केवल दो एक आदमी साहस करके उन्हें बादशाह कहकर संबोधित कर रहे हैं। घबड़ाया हुआ भूपेंद्र तामजाम में सवार होकर सुदर्शन की खोज में चला।

भूपेंद्र के चले जाने पर नवकृष्ण स्वयं तैयारी करने लगा। अपना मैला कुचैला कपड़ा उतारकर उसने असीम की एक बहुमूल्य ढाके की

धोती चुनकर पहनी। पैर धोकर जरीदार दिल्लीवाल जूता पहना। अपने रूखे बालों में तेल डालकर लकड़ी की कंघी से सँवार लिया। इसके बाद वह बड़े फेर में पड़ा। उसके पास असीम के ढाके और बनारस के कामदार जामे और अचकनें थीं लेकिन उनमें से एक भी उसके शरीर पर ठीक नहीं हुई। तब उसने बहुत दुःखी होकर भूपेंद्र की एक पुरानी मिरजई सीकर पहनी। असीम का एक बनारसी दुपट्टा कंधे पर डाल लिया और भूपेंद्र का एक नया दुपट्टा लेकर पगड़ी बाँध ली। इसके बाद उसने एक रंगीन रूमाल निकाला और उसमें इत्र लगाकर खेमे के बाहर निकला।

बाहर आने पर नवकृष्ण एक और विपत्ति में पड़ गया। खेमे के बाहर एक अहदी खड़ा था। उसने उसे असीम समझकर सलाम किया और बोला—"जनाब आपको शाहजादा ने शाम को तलब किया है।"

नवकृष्ण बड़े असमंजस में पड़ा। असीम के आज्ञानुसार उसे यह समाचार पाकर तंबू में प्रतीक्षा करनी चाहिए थी, लेकिन प्रतीक्षा करने में वेश-भूषा का परित्याग करना पड़ता अन्यथा पकड़े जाने पर मार खाने की आशंका थी। किंतु फिर कभी इस ठाट बाट के साथ पटना शहर में निकलने की आशा बहुत कम थी। इस प्रकार सज धजकर घूमने की इच्छा नवकृष्ण के मन में बहुत दिनों से दबी पड़ी थी। बहुत सोच विचार करने के बाद वह भोजन बनानेवाले ब्राह्मण को बुला लाया और उसे खेमे के दरवाजे पर बैठाकर बोला—"भाई साहब, तुम यहीं बैठे रहो। हुजूर के आने पर कहना कि आपको शाहजादा ने शाम को निमंत्रित किया है। क्या कहोगे, बताओ तो ?"

ब्राह्मण सिंहभूमि जिले का रहनेवाला था। वह असीम से बहुत डरता था और भूपेंद्र को बहुत अधिक चाहता था। उसने दो ही बातें

सीखी थीं—भोजन बनाना और गाँजा पीना। कभी कभी भूपेंद्र उसे कुछ पैसे दे दिया करता था। पटना पहुँचकर उसने गाँजे की मात्रा बढ़ा दी थी क्योंकि वहाँ गाँजे का मूल्य अत्यल्प था। गाँजे की मात्रा बढ़ जाने से ब्राह्मण का मस्तिष्क किंचित् शुष्क, मिजाज अत्यधिक रूक्ष औ मोटी बुद्धि और अधिक स्थूल हो गई थी। उसने पूछा—"तू कहाँ जाता है ?"

नवकृष्ण ने उत्तर दिया—"मेरे ससुर बड़े बीमार हैं, उन्हें देखने जा रहा हूँ।"

गाँजे के धुएँ से आच्छन्न मस्तिष्क के भीतर भी बात पहुँच गई—यह दुर्लभ सुयोग घटित हुआ। इस सुयोग में नवकृष्ण से कुछ वसूल हो सकता है। उस पाचक ब्राह्मण ने अपनी लंबी चुटिया फटकारते हुए कहा—"मैं तो सोऊँगा भाई !"

नवकृष्ण ने विरक्तिपूर्वक पूछा—"सोओगे क्यों भाई ? कौन कठिन काम है ?"

ब्राह्मण ने फिर चुटिया फटकारी और बोला—"राजा बाबू हैं, बड़ी मिहनत पड़ेगी।"

नवकृष्ण बहुत चक्कर में पड़ा—अमूल्य समय नष्ट हुआ जा रहा था। तब उसने खेमे के एक कोने में से थोड़ा-सा गाँजा बाहर निकालकर पूछा—"अब तो हो जायगा न ?"

ब्राह्मण की बत्तीसी निकल आई, बोला—"हाँ।"

नवकृष्ण चला गया।

चलते चलते रास्ते में उसे एक मुसलमान मिला। उसने भूपेंद्र से सिफारिश करके एक दिन बेंत पड़ने से उसे बचा दिया था। नवकृष्ण को देखते ही वह प्रसन्नतापूर्वक बोला—"अरे दोस्त, तुमसे खूब

मुलाकात हुई। मेरे एक मित्र के घर आज महफिल है; बड़ी खूबसूरत तवायफें आएँगी। आज तुम्हें नहीं छोड़ूँगा।"

दुर्भाग्य नवकृष्ण के सिर पर सवार था। उसी की प्रेरणा से उसने उत्तर दिया—"चलो दोस्त! बहुत दिनों से तुम कहते आ रहे हो; आज तुम्हारी बात खाली नहीं जायगी। शाहजादा के दरबार में दिन भर बैठे बैठे माथा गरम हो गया; अब आज मेरी छुट्टी रही।

वह मुसलमान शाहजादा के दरबार में नवकृष्ण की रसाई देख चुका था, इसलिये उसे नवकृष्ण की बातों पर संदेह नहीं हुआ, बल्कि उसने सरल चित्त से पूछा—"तुम दरबार में कौन सा काम करते हो भाई?"

नवकृष्ण छाती फुलाकर बोला—"मैं सबसे बड़ा खजांची हूँ।"

नवकृष्ण के साथ इधर उधर की बातें करते हुए वह मुसलमान उसे नगर के बाहरी भाग में स्थित अपने बगीचे में लिवा ले गया। वहाँ बहुत से मुसलमान युवक एकत्र होकर आमोद प्रमोद कर रहे थे। नवकृष्ण ने अपना परिचय दिया—"मेरा नाम असीम राय है। मैं शाहजादा फर्रुखसियर का अंतरंग मित्र और उनका बड़ा खजांची हूँ। राजकाज के परिश्रम से थककर आज आराम करने आ निकला।"

नवकृष्ण जी खोलकर उन लोगों में घुलमिल गया—एक आदमी के अनुरोध करने पर उसने दो बार शराब पी; दूसरे आदमी के अनुरोध पर उसने चार चिलम गाँजा पिया; तीसरे की बात न टाल सकने के कारण एक लोटा भाँग चढ़ा गया और चौथे की आंतरिक प्रार्थना पर एक प्रौढ़ा वेश्या को गले लगाकर बेहोश हो गया।

इसके आध घंटे बाद एक लंबे चौड़े मुसलमान युवक ने उस उद्यान में प्रवेश किया और वहाँ उपस्थित निमंत्रितों से पूछा—"यह आदमी कौन है?"

सब ने कहा—"राजा असीम राय !"

"आगंतुक ने दाँत-तले जीभ दबाते हुए कहा—"तोबा, तोबा, यह हरामखोर कहाँ से आया ?"

शराबियों को प्रसन्न होते देर नहीं लगती। सो, आगंतुक के निमंत्रित लोग नवकृष्ण की सरलता और व्यवहार पर मुग्ध हो चुके थे। वे एक साथ बोल उठे—"हैं, हैं, यह क्या कहते हो ? ऐसी बात जबान पर मत लाना; राजा साहब बड़े मजेदार आदमी हैं।"

भौंहें सिकोड़ते हुए आगंतुक ने कहा—"इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं, लेकिन मुन्नी जो आ रही है ?"

यह खबर सुनते ही नशे में चूर युवकों की टोली पागल हो उठी। उनमें से एक ने कहा—"मुन्नी आ रही हैं तो बड़ी अच्छी बात है। मगर इससे राजा साहब से क्या मतलब ?"

आगंतुक ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—"जानते नहीं क्या कि मुन्नी इसी के लिये दीवानी है ?"

"तुम पागल हुए हो फरीद खाँ ? हमारी मुन्नी जान इस बंदर को गले लगाएँगी ? तुम बेखटके उन्हें ले आओ।"

फरीद खाँ भी उस समय यही विचार कर रहा था कि इस असीम राय में ऐसी कौन सी आकर्षण शक्ति है जिससे मुन्नी ने अपनी उभड़ती जवानी में ही शरीर, मन, प्राण सभी कुछ उनको समर्पित कर दिया है। यही सोचते सोचते फरीद खाँ मुन्नी के घर की ओर चल पड़ा।

तेंतीसवाँ परिच्छेद

फरीद खाँ का बगीचा

छावनी से निकलकर असीम उस गरमी की दोपहरी में भूखे प्यासे पटने की सड़कों पर पागलों की तरह घूमने लगे। धीरे धीरे संध्या होने को आई। मानसिक उत्तेजना से परिश्रांत उनका शरीर और अधिक निरुद्देश्य भ्रमण सहन नहीं कर सका। भूख और प्यास से व्याकुल होकर असीम एक पीपल की छाया में बैठ गए। उसी पीपल के नीचे एक शिलाखंड पर बैठा एक पछाहीं युवक निश्चिंत होकर चबेना खा रहा था। असीम की हालत देखकर उसने जिज्ञासा की—"आपको शायद प्यास लगी है। इस कुएँ का पानी पाले की तरह ठंडा है, खींचूँ एक लोटा?"

असीम ने केवल सिर हिलाकर संमति दे दी। युवक पीतल के लोटे में पतालतोड़ कुएँ का ठंढा पानी ले आया। असीम उसे एक साँस में गट गट कर पी गए। दो लोटा पानी पीने के बाद उनके मुँह से बात निकल सकी। वे बोले—"बड़ा उपकार किया भाई, क्या नाम है तुम्हारा?"

युवक ने उत्तर दिया—"नाम सभाचंद है; मैं जालंधर का रहने हूँ। जीविका के लिये इतनी दूर निकल आया हूँ। आपका मकान?"

"मुर्शिदाबाद के पास डाहापाड़ा में। मैं कायस्थ हूँ; मेरा नाम है असीमचंद्र राय। शाहजादा के फौज के साथ मुर्शिदाबाद से आ रहा हूँ; कह नहीं सकता, कहाँ जाना होगा।"

इतनी देर में सभाचंद्र ने अपनी रूमाल का चबेना प्रायः शेष कर दिया था। तभी असीम ने कहा—"कुछ खाने को दे सकते हो भाई?"

आखिरी मुट्ठी मुँह में डालकर युवक बोला—"इतनी देर बाद कह रहे हो! पहले कहते तो आधा तुम्हें दे देता। इस तरफ भले आद-मियों के खाने लायक शायद कोई चीज नहीं मिलती। फिर भी मैं एक बार कोशिश कर देखूँ।"

युवक उठा और सड़क के उस पार जाकर ताड़ के जंगलों में घुस गया। असीम बैठे रहे। थोड़ी देर में सभाचंद ताड़ के पत्ते में थोड़ा चबेना और पका हुआ महुआ लेकर लौटा! असीम ने उसे अमृत की तरह उदरस्थ किया। खा चुकने पर उन्हें मूल्य का स्मरण हुआ। सभाचंद से उन्होंने पूछा तो उत्तर मिला—"मूल्य की कोई आवश्यकता नहीं, मैं तो एक संन्यासी से माँगकर ले आया और अब वे भिक्षा माँगते चले गए।"

असीम और सभाचंद धीरे धीरे नगर की ओर फिरे। चलते चलते असीम सहसा रुके। चाँदी के तामजाम में चढ़ी यथोचित साज श्रृंगार किए एक युवती उस रास्ते से जा रही थी। वेश भूषा से वह वेश्या प्रतीत होती थी। युवती ने वेश्याओं की तरह असीम को कोर्निश किया। देखते ही असीम खड़े हो गए।

सभाचंद ने पूछा—"खड़े क्यों हो गए?"

लेकिन असीम ने उसका प्रश्न सुना ही नहीं। उन्हें उस समय

अत्यंत जोर की हँसी छूटी और उसका वेग सम्हाल न सकने के कारण वे रास्ते में खड़े खड़े ही ठठाकर हँस पड़े। सबेरे से ही जिस दुश्चिंता ने उन्हें जकड़ रखा था वह प्रबल वायुवेग के सामने स्वल्प मेघ खंड की भाँति सहसा विलुप्त हो गई। एक धीर, शांत राही को अकस्मात् हँसते देखकर दो चार पथिक भी आश्चर्यचकित हो गए थे। सभाचंद तो इतना विस्मित हुआ कि वह गिरते गिरते बचा। उसने पूछा—"आपका जी क्या ठीक नहीं है?"

उसको जान पड़ा कि मेरा साथी सहसा पागल हो गया। दुश्चिंता के भार से मुक्त होते ही असीम प्रकृतिस्थ हो चुके थे। वे बोल उठे—"नहीं, कुछ नहीं। तुम चलो भाई, हमें बीच बीच में ऐसी ही हँसी आ जाती है।"

सभाचंद ने इसी बीच एक दूसरे पथिक से पूछा—"वह तामजाम-वाली औरत कौन है?"

पथिक ने विस्मित होकर कहा—"पटने में तुम नए नए आए हो क्या? वह मशहूर तवायफ मुन्नी बाई है।"

थोड़ी देर बाद सभाचंद ने एक प्रशस्त उद्यान की चारदीवारी के भीतर प्रवेश किया। उस उद्यान में बहुत से छोटे छोटे घर बने हुए थे। सभाचंद ने उनमें से एक के भीतर प्रवेश करके असीम को आदर सहित बैठाया और एक थाली में मेवे लेकर उनके सामने उपस्थित हुआ। उसके बिस्तर पर बैठकर असीम ने निश्चिंत मन से भोजन करना आरंभ किया।

सभाचंद के घर के पास उद्यान में ही एक बड़ा सा तालाब था। उसके पक्के घाट पर बैठे कुछ मद्यप आपस में झगड़ रहे थे। उनमें से एक बार बार कह रहा था—"जानता है, मेरा नाम राजा असीम राय है।"

दो तीन बार इसी प्रकार सुनने पर असीम कोठरी के बाहर निकल आए और मद्यपों की ओर दृष्टि करते ही पुनः हँस पड़े। सभाचंद ने इस बार कुछ नहीं पूछा। असीम ने जिज्ञासा की—"भाई, यह बगीचा है किसका ?"

सभाचंद बोला—"सूबेदारी के दीवान साहब का।"

"मैं एक बार उनसे मिलना चाहता हूँ।"

"वे बगीचे में प्रायः आते नहीं।"

"फिर, ये लोग कौन हैं ?"

"उनके लड़के फरीद खाँ के साथी हैं।"

"यह बात; अच्छा, फरीद खाँ से मुलाकात हो सकती है ?"

"बड़े मजे में। फरीद खाँ बड़ी शौकीन तबीयत का है। खबर मिलने पर शायद वह खुद यहाँ चला आएगा। आप कहें तो मैं देख आऊँ कि वह है या नहीं।"

असीम ने सिर हिलाकर हाँ कर दिया। सभाचंद चला गया।

सहसा असीम को याद आया कि मेरे परामर्श के अनुसार शाहजादा फर्रुखसियर ने दिल्ली का सिंहासन प्राप्त करने के निमित्त आज ही से उद्योग आरंभ कर दिया है और मुझे छावनी छोड़कर बहुत देर तक बाहर रहने के लिये मना किया है। साथ ही उन्हें यह भी याद हो आया कि मेरे वृद्ध शिक्षक कहा करते थे कि संसार के समस्त अनर्थों की जड़ कामिनी और कांचन हैं। जिसके लिये व्याकुल होकर वे दिन भर नगर की सड़कों पर मारे मारे फिरते रहे वह तो संध्या होते ही यथोचित साज श्रृंगार करके किसी नए नायक से मिलने के लिये निकल पड़ी है। असीम छावनी में लौट जाने के लिये अत्यंत उद्विग्न हो उठे।

इतने में सभाचंद लौट आया। उसके कुछ बोलने के पहले ही असीम पूछ बैठे—"एक घोड़े का बंदोबस्त कर सकते हो भाई ?"

सभाचंद ने विस्मित होकर पूछा—"मेरे मालिक के लड़के से मुलाकात नहीं कीजिएगा ?"

"अभी नहीं, लौटकर करूँगा। दोस्त, एक बहुत जरूरी काम याद आ गया। बात इतनी जरूरी है कि वैसे न मिलने पर मैं घोड़ा खरीदने तक के लिये प्रस्तुत हूँ।"

सभाचंद हँसते हुए बोला—"पैसा रहने पर दुनिया में ऐसा कौन सा काम है जो न हो सके ?"

असीम ने दो अशर्फियाँ निकालकर उसके हाथ पर रख दीं। उन्हें लेकर सभाचंद पुनः बाहर चला गया। इसी समय मद्यपों की टोली बाहर बड़े जोर से चिल्ला उठी। चिल्लाहट सुनकर असीम एक बार फिर बाहर निकल आए और उन्होंने देखा कि सभी हाथ उठा-उठाकर 'मुन्नी, मुन्नी' कहकर चिल्लाते और नाचते हैं।

सभाचंद लौट आया। बोला—"घोड़ा खरीद तो नहीं सका, किराए पर ले आया हूँ। लेकिन घोड़ेवाला रातो रात बड़ा आदमी बन जाना चाहता है; एक अशर्फी से कम में वह घोड़ा देने पर राजी नहीं है।"

असीम ने पूछा—"एक घोड़े का एक अशर्फी किराया कितने दिनों के लिये है ?"

"जितने दिन आप चाहें—एक ही दिन रखें, चाहे एक महीने।"

"एक अशरफी देकर घोड़ा ले जाऊँ और वापस न आऊँ तो ?"

"अरे दोस्त, जो एक घोड़े का एक दिन का किराया एक अशरफी माँगता है उसने इसका भी प्रबंध कर लिया है।"

"क्या किया है?"

"नकद तीन अशरफी जमा किए बिना घोड़ा नहीं मिलेगा।"

असीम से और दो अशरफियाँ लेकर सभाचंद ने एक अत्यंत मरियल घोड़ा ला खड़ा किया। घोड़ा देखकर हँसते हँसते असीम का बुरा हाल हो गया। घोड़े की पीठ पर सवार होकर उन्होंने सभाचंद से पूछा—"देखो भाई, अगर यह घोड़ा रास्ते में ही मर गया तो क्या मेरी तीन अशर्फियों पर भी पानी फिर जायगा?"

सभाचंद बोला—"यह तो मैंने नहीं पूछा। आप तो वापस आ ही रहे हैं, आते ही इसका भी उत्तर मिल जायगा।"

चौंतीसवाँ परिच्छेद

सरस्वती का कर्त्तव्य

संध्या के पहले घर के सामने पीपल तले कंबल बिछाकर हरिनारायण हुक्का पी रहे थे। उसी समय सरस्वती वैष्णवी वहाँ आई और पास ही बैठ गई। हरिनारायण ने हुक्का मुँह से हटाकर पूछा—"कहो सरस्वती, क्या समाचार है?"

प्रणाम करके सरस्वती बोली—"क्या बताऊँ पंडित बाबा, आप लोगों के चरणों के दर्शन करके सोचा था कि इन्हीं की शरण में बहुत-सा रास्ता कट जायगा।"

"फिर? हम लोगों का साथ छोड़कर जाने का विचार है क्या?"

"और क्या करूँ बाबा? वृंदावन अभी बहुत दूर है। जाड़ा भी आरंभ हो गया है। अधिक जाड़े में रास्ता नहीं चल पाऊँगी। आप लोग तो जैसे यहीं बैठ गए हैं!"

"अरे नहीं सरस्वती, हम लोग भी जल्दी ही काशी चलेंगे।"

"फिर बाबा, यहाँ क्यों देर लगा रहे हैं!"

प्रश्न सुनकर हरिनारायण का सहास वदन गंभीर हो गया। उत्तर की आशा से सरस्वती ने दो एक बार उनकी ओर देखा लेकिन भृकुटी को कपाल पर चढ़ी देखकर वह आँखें नीची किए बैठी रही। उस समय

हरिनारायण सोच रहे थे कि मैं पटने में बैठा बैठा क्या कर रहा हूँ। उनका मन इस प्रश्न का यथोचित उत्तर नहीं दे सका इसलिये उनकी चिंता और बढ़ गई। अत्याचार से प्रतारित होकर, घर द्वार छोड़ उन्होंने काशी की यात्रा की थी। असीम के साथ उनकी भेंट रास्ते में हो गई थी। बादशाह के पौत्र पटने में ही थे इसलिये असीम और भूपेन भी यहाँ हैं, किंतु वे स्वयं किसलिये पटने में टिके हैं इसका कुछ भी समाधान वे अपने मन में नहीं कर सके। उन्हें विरक्ति सी हुई, फिर अपने ही ऊपर क्रोध भी आया। पचास वर्षों के जीवन में कभी भी उन्होंने अपने मन को इस प्रकार बारंबार अपराधी होते नहीं देखा है। पटने आकर किराए का मकान लेकर इतने दिन रहने की क्या आवश्यकता थी? बादशाह के पौत्र के साथ असीम का परिचय था, किंतु इसी कारण उनका पटने में ठहरने का कोई प्रयोजन नहीं था। उस दिन हरिनारायण विद्यालंकार ने तीसरी बार अपने अंतःकरण से इसकी जिज्ञासा की किंतु कोई सदुत्तर नहीं मिला।

संदेह चुपचाप कह गया कि इसके भीतर कोई गंभीर रहस्य है। मन बोला—"नहीं"; किंतु यह बात ग्राह्य नहीं हुई क्योंकि तीन तीन बार पूछने पर भी मन से इसका उत्तर देते नहीं बन पड़ा था। मौका पाकर संदेह पुनः बोला—इसमें अवश्य कोई चक्र है। पटने में ठहरने की सलाह उन्हें किसने दी थी? सुदर्शन ने। सुदर्शन उनका बेटा है, किंतु साथ ही असीम का मित्र भी है। वह अबोध नहीं है, फिर भी सरलचित्त है। तो क्या उसने असीम की राय से उनसे पटने में ठहरने का अनुरोध किया था? इसमें असीम का कौन सा स्वार्थ है? दुर्गा? क्या असीम उसका जार है?

वृद्ध ब्राह्मण के मस्तिष्क में भयंकर ज्वाला होने लगी। चिलम की आग बुझ गई थी और उसके कोयले की राख उड़ उड़कर उनके शरीर

पर गिर रही थी। इसे लक्ष्य कर सरस्वती ने पूछा—"बाबा, क्या दूसरी चिलम चढ़ा लाऊँ ?"

विद्यालंकार ने बड़ी विरक्ति से कहा—"नहीं।"

मारे डर के सरस्वती बैठ गई। थोडी देर बाद उन्होंने सरस्वती से कहा—"देखो, मैंने काशी न जाकर इतने दिन क्यों व्यर्थ विलंब किया सो समझ नहीं पा रहा हूँ।"

वैष्णवी बोली—"हूँ।"

पर तदनंतर उन्हें सरस्वती की उपस्थिति का भान नहीं रहा और वे पुनः चिंतामग्न हो गए। असीम यदि दुर्गा का जार है तो वह नित्य उसके यहाँ क्यों नहीं आया करता ? दुर्गा भी कभी उसका नाम नहीं लेती। जान पड़ता है सुदर्शन या भूपेन दूत का काम करते हैं। अगर ऐसी ही बात है तो दुर्गा सहज में कभी पटने से जाना नहीं चाहेगी। उससे कहने पर इसका रहस्य अपने आप खुल जायगा।

हरिनारायण आसन त्याग कर उठे। कुएँ से जल लाकर उन्होंने हाथ मुँह धोया। बहू ने आकर सूचित किया कि संध्या पूजन की तैयारी हो गई है। वे बोले—"मैं गंगा किनारे की ओर जा रहा हूँ; संध्या पूजन से भी वहीं निवृत्त हो लूँगा। तुम जरा दुर्गा को बुला दो।"

लड़की के आने पर उन्होंने पूछा—"बेटा, मैं गंगा किनारे जा रहा हूँ, बाजार से क्या कोई चीज लानी है ?"

दुर्गा ने कहा—"कुछ नहीं बाबा; गंगा जी की जो मिट्टी आई थी, वह समाप्त हो गई है, हो सके तो थोड़ी मिट्टी उठाते आइएगा क्योंकि दो दिनों से मेरी पार्थिव पूजा नहीं हो पा रही है।"

"तुमने अच्छी याद दिला दी। हमलोग तो देखते हैं कि मुर्शिदा-

घाट की जगह पटने के निवासी हो रहे। बाबा विश्वनाथ क्या विमुख हो गए ?"

"बाबा, मेरी भी इच्छा आपसे यही कहने की होती थी, पर कह नहीं पाती थी। भय्या अगर मँझले भाई के पास रह सकते हों तो आप चलते क्यों नहीं ? बहू को यहीं छोड़कर हमलोग काशी चले चलें ?"

उत्तर सुनकर हरिनारायण स्तब्ध हो रहे। असीम यदि दुर्गा का जार है तो यह क्यों उसे छोड़कर निश्चिंत मन से जाना चाहती है ? उस दिन चौथी बार उनके मन से इसका कोई समाधान नहीं बन पड़ा। कुछ भी स्थिर न कर सकने के कारण वे चिंताकुल मन लिए घर से बाहर निकले। द्वार पर उन्हें सुदर्शन और भूपेन मिले। उन्हें देखकर सुदर्शन ने आग्रहपूर्वक पूछा—"क्यों बाबूजी, छोटे राय क्या यहाँ आए हुए हैं ?"

विद्यालंकार बोले—"नहीं।"

भूपेन ने कहा—"पंडित जी, आज सवेरे से भैया और नए खान-सामा को ढूँढा जा रहा है पर उनका पता नहीं चलता। भैया एक बार शाहजादा के दरबार में गए थे। अफरसियर खाँ कहता था कि सायंकाल के दरबार में उनके पुनः आने की बात है, लेकिन वे अभी तक दिखाई नहीं पड़ते।"

विद्यालंकार ने उसकी बात का जवाब न देकर सुदर्शन से कहा—"तुम आ गए सुदर्शन, यह अच्छा हुआ। मैं अब गंगा किनारे नहीं जाऊँगा, तुमसे कुछ परामर्श करना है।"

सरलचित्त सुदर्शन ने कहा—"बाबूजी, जब तक छोटे राय का पता नहीं चल जाता तब तक मुझसे परामर्श करने का कोई विशेष फल नहीं होगा।"

वृद्ध ब्राह्मण ने क्रुद्ध होकर जिज्ञासा की—"क्यों रे सुदर्शन, छोटे राय तेरे कौन हैं ?"

सुदर्शन सिर खुजलाने लगा; बोला—"सो तो इतनी जल्दी नहीं बताया जा सकेगा बाबू जी !"

"तू जानता है, मैं क्यों घर बार छोड़ आया हूँ ?"

"अपने मित्र हरनारायण के कारण।"

"वे असीम के कौन हैं ?"

"उनकी विमाता के भाई और घोर शत्रु हैं।"

"तुझे मालूम है, असीम ही सारे अनर्थों की जड़ है ?"

सीधे साधे सुदर्शन ने हँसकर कह दिया—"नहीं।"

पुत्र का उत्तर सुनकर वृद्ध ब्राह्मण को पुनः स्तब्ध होना पड़ा। उन्होंने अपने मन से पूछा कि बहन की कलंक कथा सुनकर भी सुदर्शन क्यों असीम का पक्ष ले रहा है ? भूपेन उस समय भीतर गया हुआ था। सुदर्शन ने उसे पुकारकर कहा—"भूपेन, बाहर आ।"

दूर से भूपेन की आवाज आई—"आया।"

सहसा विद्यालंकार ने कहा—"देखो सुदर्शन, हमलोग अब पटने में क्यों बैठे रहें; चलो काशी चलें।"

सुदर्शन ने कातर होकर कहा—"बाबू जी, एक दिन ठहर जाइए; छोटे राय का पता लगते ही मैं नाव ठीक कर दूँगा।"

"तो तुम बहू और दुर्गा के साथ यहीं रहो; मैं वृद्ध हुआ, मैं अकेले ही काशी जाऊँगा।"

"वे यहाँ क्या करेंगी ? आपके साथ रहकर तो आपकी सेवा भी कर सकेंगी। मैं भी जान पड़ता है छोटे राय के संग यहाँ टिक नहीं सकूँगा। बहुत देर से उनकी खबर न मिलने के कारण मन व्याकुल है। उनके आ जाने पर सब लोग साथ ही चलेंगे।"

पुत्र का यह उत्तर सुनकर विद्यालंकार महाशय तीसरी बार स्तब्ध हुए ।

सुदर्शन ने भूपेन को पुकारकर कहा—"क्यों रे बंदर, घर के भीतर बैठा क्या कर रहा है ? जान पड़ता है, भोग लगा रहा है। और वे जो दिन भर से निराहार हैं ?"

हरिनारायण यह भूल गए कि उन्होंने बहू से संध्या पूजन की तैयारी करने के लिये कहा है, और वे गंगा की ओर चल पड़े। सरस्वती वैष्णवी अब तक दरवाजे की ओट में छिपी खड़ी थी। विद्यालंकार के बाहर चले जाने पर उसने घर के भीतर प्रवेश किया ।

पैंतीसवाँ परिच्छेद

नवकृष्ण का पतन

बगीचे के मध्य में स्थित एक छोटा सा कक्ष तंबाकू के धुएँ, शराब की गंध, गायिका के सुरीले स्वर और मद्यपों के कोलाहल से परिपूर्ण था। रात्रि का तीसरा पहर बीत चला था। फारस की मधुर मदिरा तब गायिका के कंठ में भी जड़ता उत्पन्न करने लगी थी। उसी समय दो युवकों ने उस छोटी कोठरी में प्रवेश किया। उन्हें देखकर जिन लोगों में उठने की शक्ति शेष रह गई थी; वे लोग उठ खड़े हुए; जिनमें उठने की शक्ति नहीं रह गई थी उन्होंने भी उठने की चेष्टा की, और तीनों वेश्याओं ने संमान सहित अभिवादन किया। दोनों नवागंतुकों में से एक ने जो वेश्या गा रही थी उसे रोककर दूसरी से कहा—"मुन्नी बाई, ये मेरे नए मित्र हैं, गायक। तुम पटने की बुलबुल हो। जान पड़ता है तुम्हारी जैसी मीठी आवाज इनके कानों में कभी पड़ी नहीं। एक बार मेहरबानी करो।"

मुन्नी ने उठकर गृहस्वामी के मित्र को दूसरी बार अभिवादम किया और पूछा—"फरीद, तुम्हारे मित्र का नाम ही गायक है या सचमुच ये गायक हैं?"

आगंतुक थोड़ा हँसा किंतु उसने कोई उत्तर नहीं दिया। उसे देखकर मुन्नी बोली—"भाई, मेरे माशूक तो कुछ बोलते ही नहीं।"

फरीद खाँ ने विस्मित होकर पूछा--"ये नए माशूक कौन हैं प्यारी ?"

मुन्नी ने कोर्निश करके उधर इशारा कर दिया जिधर कोने में एक शराबी नंगा पड़ा हुआ था और बोली—"ये हैं राजा असीम राय, बंगाल के अमीर।"

नाम सुनकर दूसरे आगंतुक ने किंचित् हँसकर कहा—"क्या सचमुच ? राजा असीम राय हैं ? उनसे तो मेरा परिचय है।"

वे आगे बढ़े। मुन्नी ने उस शराबी का हाथ पकड़कर उठाया और बोली—"माशूक, जानेमन, मेरे जिगर, कुछ कहो।"

शराबी बोला—"मैं...हिक्...मैं...राजा असीम राय हूँ।"

मुन्नी ने उसके मुँह के पास तक झुककर कहा—"बेशक, जरूर तुम राजा असीम राय हो। कौन दगाबाज कहता है कि तुम असीम राय नहीं हो। प्यारे, तुम्हारे देश से एक मित्र आए हैं—आँखें खोलकर एक बार देखो तो; एक बार प्यारी कहकर मुझे पुकारो तो।"

मुन्नी द्वारा उत्तेजित किए जाने पर बड़े कष्ट से उस शराबी ने आँखें खोलीं और आगंतुक की ओर देखा। उन्हें देखते ही उसकी आँखें स्थिर हो गईं। वह बोल उठा—"बाप रे !"

मुन्नी कृत्रिम प्रेम से उसे गले लगाती हुई बोली—"क्या हुआ मेरी जान ?"

शराबी ने आँखें बंद किए किए ही कहा—"ना बाबा, मैं तुम्हारी जान नहीं हूँ; बाप रे बाप ! मरा रे !"

मुन्नी ने रुआँसी होने का नाट्य करते हुए कहा—"मेरे प्यारे, ऐसे क्यों हो गए ? अरे देखो तो लोगो !"

दूसरे आगंतुक ने आगे बढ़कर उस मद्यप को पुकारा—"नवा !"

शराबी ने बैठे हुए गले से कहा—"हुजूर !"

गृहस्वामी फरीद खाँ ने विस्मित होकर उनकी ओर देखा। आगंतुक ने दुबारा उस शराबी से पूछा—"तू यहाँ क्या कर रहा है रे नवा ?"

वह बोला—"राजा बना हुआ हूँ हुजूर।"

"क्यों ?"

"बेवकूफी।"

मुन्नी अब तक उसके गले में बाहें डाले हुए थी; बोली—"क्या कहते हो प्यारे ?"

नवकृष्ण ने आँखें मूँदे हुए ही कहा—"अपना सिर कह रहा हूँ रे, अब छोड़ दे मुझे।"

गृहस्वामी फरीद खाँ ने आगंतुक से जिज्ञासा की—"माजरा क्या है मित्र, मैंने समझा नहीं ?"

आगंतुक बोले—"उसी से पूछिए।"

फरीद खाँ ने उस शराबी की ओर बढ़कर पूछा—"क्यों दोस्त, क्या बात है ?"

उसने आँखें बंद कर धीरे धीरे कहा—"जूतियाँ।"

"क्यों, जूतियाँ क्यों ?"

"इसलिये कि राजा बना हुआ हूँ।"

"तुम हो कौन ?"

"नवा खानसामा।"

इसे सुनकर सबने एक स्वर से पूछा—"खानसामा ! किसके खानसामा ?"

"राजा असीम राय का।"

मुन्नी ने बनावटी लंबी साँस लेते हुए कहा--"जानेमन, तो तुम भी धोखेबाज निकले ! तुम राजा असीम राय नहीं हो ?"

इसी समय आगंतुक ने ऊँचे स्वर से पुकारा—"नवा !"

शराबी और भी बैठे गले से बोला—"हुजूर।"

"इधर आ।"

नवकृष्ण ने उठने की चेष्टा की पर चक्कर खाकर गिर पड़ा। मुन्नी खिलखिला कर हँस पड़ी। क्रोध के कारण आगंतुक के माथे पर बल पड़ गए; उन्होंने गृहस्वामी से कहा—"आप मेहरबानी कर इसे बाहर करा दें और इसके सिर पर आठ दस मशक पानी डलवा दें।"

फरीद खाँ की आज्ञा पाकर दो तीन परिचारकों ने नवकृष्ण को उठाकर बाहर कर दिया। मजलिस फिर से जमी।

गृहस्वामी की आज्ञा से शेष दो वेश्याओं ने भी गाया किंतु मुन्नी ने नहीं गाया। वह बोली—"गायकों के सामने गाने में बड़ा संकोच होता है।"

यह सुन फरीद खाँ ने आगंतुक से कहा—"दोस्त, जान पड़ता है यहाँ केवल तुम्हीं गायक हो। पटने की यह बुलबुल दिल की निहायत साफ है। तुम भी दिल खोलकर सुना डालो, तभी इसकी मीठी तान सुन पाओगे।"

मुन्नी ने लजाकर सिर का घूँघट थोड़ा आगे करके भुवनमोहन कटाक्ष किया। उस कटाक्ष से कोई बच नहीं सका, सभी के चेहरे ईषत् हास्य से खिल पड़े। लज्जा से आगंतुक का चेहरा लाल हो आया। एक वृद्ध रसिक ने उनके पास जाकर कहा—"जनाब, आपका सा नसीब कितनों का है ? खुदा की बड़ी मेहरबानी होने पर मुन्नी की यह नजर

नसीब होती है। कितने अमीर उमरों ने इन गुलाबी चरणों का आश्रय पाने के लिये बादशाहों की दौलत लुटा डाली, इसका ठिकाना नहीं। मुन्नी जान ने तुम्हारे ऊपर जिस कृपादृष्टि की बिना मोल वर्षा की है उसके लाखवें भाग तक के लिये कितने ही राजाओं के राज्य लुट गए हैं। दोस्त, मेरी तुलना में तुम अभी बच्चे हो, ऐसा मौका चूको मत। अपना नाम बता दो। तुम्हारी वजह से हमें भी बिहिश्त के मजे मिल जायँ।"

मुन्नी ने आँखों की कोर में हिना का इत्र मलकर दो चार बूँद आँसू निकाल डाले और सुगंधित रेशमी रूमाल से उन्हें बारंबार पोंछकर लाल बना डाला। यह देख एक भावुक प्रकृति का मदमत्त युवक सच-मुच रो पड़ा और आगंतुक के दोनों पैर जोर से पकड़ विनती करने लगा। आगंतुक ने विरक्त होकर गृहस्वामी से लहा—"मुझे आज्ञा दें, मैं अब घर वापस जाऊँगा।"

फरीद खाँ उच्च कुल में उत्पन्न हुआ था। साथियों के व्यवहार से लज्जित होकर उसने कहा—"आपके साथ हमलोगों ने बड़ा अन्याय किया है, हम उसकी माफी चाहते हैं।"

आगंतुक ने खड़े होकर कहा—"इसमें माफी की क्या बात है, स्फूर्ति के प्रभाव से ऐसा हुआ ही करता है। रात ज्यादा हो गई है; मैं अब विदा होता हूँ।"

आगंतुक के कोठरी के द्वार की ओर बढ़ने के पहले ही मुन्नी ने एक वादक के हाथ से फुर्ती से इसराज ले लिया और कोठरी के एक-मात्र प्रवेश-द्वार पर बैठकर गाने लगी—

सखि, हमें छोड़ जात वंशीधारी,
निठुर कपट सठ मोहन मुरारी।

दिवस रैन कहि हारी सजनी राधा तेरी ध्यानी,
सखी री नंदलाल अहँकारी।
बिरहानल तन तपत जात सुनि स्यामसुँदर अभिमानी,
सखी री तड़पत राधा प्यारी।

गाना समाप्त होते होते मुन्नी सचमुच रो पड़ी। आगंतुक स्तंभित होकर ठिठके खड़े रहे। कुछ देर बाद मुन्नी ने उठकर कोनिश किया और रास्ता छोड़कर अलग हट गई। जब वे बाहर चले गए तो किसी ने पूछा—"बड़ी खातिर की मुन्नी जान, ये थे कौन ?"

मुन्नी ने गंभीर भाव से उत्तर दिया—"जिनके नौकर की अब तक खातिर करते रहे ये वे ही थे।"

वह भावुक भावविह्वल होकर बोला—"अरे नादान, आशनाई का भेद तू क्या जाने !"

उस रात फरीद खाँ की महफिल फिर वैसी नहीं जमी।

छत्तीसवाँ परिच्छेद

ज्योतिषी

सरस्वती तड़के गंगास्नान करने गई थी। वह किस रास्ते गई, इसे विद्यालंकार महाशय ने नहीं देखा। संध्या पूजन समाप्त कर जब वे शहर की ओर लौट रहे थे तब उन्होंने देखा कि सरस्वती एक संन्यासी के अखाड़े में तुलसीचौरा पाकर उसके संमुख लगातार प्रणाम पर प्रणाम करती जा रही है। उन्हें देखकर वैष्णवी बोली—"पंडित जी, यह कैसा वाहियात देश है! यहाँ के सभी देवता क्या विधर्मी ही हैं?"

"विधर्मी देवता क्या सरस्वती?"

"अरे वही—मैं नाम कैसे लूँ—बेलपत्र बिना जिनकी पूजा नहीं होती।"

"ओह, महादेव जी से मतलब है?"

"राधाकृष्ण! राधाकृष्ण! जैसा देवता का स्वरूप है, वैसी ही शोभा भी है! गंगास्नान करके सबेरे से राधाकृष्ण का मंदिर ढूँढती फिर रही हूँ!"

"जान पड़ता है राधाकृष्ण के सिवा और कोई देवता देवता ही नहीं है?"

"मैं वैष्णव की लड़की हूँ बाबा, आप लोगों के देवता को देवता कैसे कहूँ ? अच्छा, यह सब जाने दीजिए, यह बताइए कि गोपीनाथ कब कृपाकर बुलाएँगे ?"

"सभी वैष्णव क्या ऐसी ही बात कहते हैं ?"

"कैसी पंडित जी, विधर्मी देवता की बात या गोपीनाथ की ?"

"गोपीनाथ सिर माथे पर रहें, विधर्मी देवता की ही बात कह रहा हूँ।"

"नहीं, सो क्यों पंडित जी ! वह भरतपुर के गोसाईं घराने की छोटी बहू है न, उसी राक्षसी के घर की···"

"राक्षसी के घर की क्या, सरस्वती ?"

"आप तो बो जलाते हैं पंडित जी, उसकी सुलच्छनी लड़की है न ?"

"हे भगवान ! किरीटेश्वरी की माँ की बात कहती हो क्या सरस्वती ?"

"हाँ, हाँ, पंडित जी ! हम लोगों को क्या उसका नाम लेना चाहिए ? सो उसी राक्षसी के घर की बहू आकर गासाईं घराने में नित्य मिट्टी का विधर्मी देवता बनाती है और उसकी पूजा होती है।"

"खूब कहा !"

"इसीलिये बंगाल में ऐसी आग लगी हुई है।"

"सरस्वती, गोपीनाथ ने तो अभी तक सुध नहीं ली; कब लेंगे, सो भी नहीं मालूम।"

"यही तो पंडित जी ! काशी यात्रा के लिये चलकर आप तो रास्ते में ही बुरे फँस गए। मुझे बहुत भरोसा हो गया था कि जब आपके

साथ मुलाकात हो गई है तब बहुत सा रास्ता आपके आश्रय में कट जायगा। तो पंडित जी, आप अब यहाँ क्यों रुके हुए हैं ?"

"इसका उत्तर देना सहज नहीं है सरस्वती ! तुमने एक बार कल भी पूछा था। मैं तभी से इसका उत्तर अपने मन से पूछ रहा हूँ, पर अभी तक पा नहीं सका। जो भी हो, गोपीनाथ ने अभी तक स्मरण नहीं किया इसलिये अभी तो कुछ दिन और पटने में ठहरना पड़ेगा।"

सरस्वती को यह बिलकुल स्मरण नहीं था कि काशी यात्रा के बारे में उसने पहले भी एक बार जिज्ञासा की थी। इसलिये विद्यालंकार महाशय के मुँह से उसे सुनकर सरस्वती का आत्मसंयम स्थिर नहीं रह सका और उसने दाँत तले जीभ दाब ली। दुर्भाग्यवश विद्यालंकार महाशय ने इसे देख लिया।

और कोई बात पूछे बिना सरस्वती घर चली गई। विद्यालंकार अन्यमनस्क होकर चिंता करते करते घर की ओर न जाकर दूसरे ही मार्ग पर आगे बढ़े। दो सौ आठ वर्ष पूर्व वह रास्ता पटने का चौक कहलाता था। उस समय बाजार लगा हुआ था इसलिये चौक में बड़ी भीड़भाड़ थी। वहीं एक ज्योतिषी रास्ते में बैठा भूमि पर रेखाएँ खींच-खींचकर लोगों का भाग्यफल बता रहा था और उसके पास ही एक वृद्ध मुसलमान दवाइयों की दूकान लगाए बैठा था। वृद्ध का भाग्य उस समय भी सोया हुआ था इसलिये ग्राहकों का नितांत अभाव था। ज्योतिषी हाथ देखकर यथेष्ट उपार्जन कर रहा था जिसे देख-देखकर वृद्ध मुसलमान ईर्ष्यावश जला जा रहा था।

विद्यालंकार जिस समय वहाँ आकर खड़े हुए, एक प्रौढ़ा यवनी उस ज्योतिषी से अपनी भाग्यगणना करा रही थी। दूर से ही विद्या-

लंकार उसके संबंध में ज्योतिषी की बातें सुनने लगे। ज्योतिषी बोला—"तुम्हारा ब्याह नहीं हुआ है।"

यवनी ने चट कहा—"अरे बाबा, मैं यह नहीं पूछती।"

ज्योतिषी ने उसकी बात अनसुनी करके कहा—"किंतु जिसके साथ तुम्हारे विवाह की बातचीत है तुम इस समय उसी के आश्रय में रह रही हो। तुम्हारी एक ही संतान जीवित रहेगी। लड़की रूपवती होगी, ब्याह उसका भी नहीं होगा। लेकिन उसके चित्त की दृढ़ता तुमसे बहुत अधिक होगी। तुम वेश्या हो। तुम्हारी कन्या अच्छी गानेवाली होगी लेकिन वेश्यावृत्ति नहीं करेगी।"

गणिका ने ज्योतिषी की बात सुनकर विरक्ति से अपना हाथ खींच लिया किंतु तत्क्षण किसी दूसरे आदमी को आगे बढ़ते देख फिर अपना हाथ फैला दिया। ज्योतिषी ने जिज्ञासा की—"और क्या जानना चाहती हो?"

प्रौढ़ा ने ओठ से ओंठ दबाकर कहा—"मैं जो बात जानना चाहती हूँ उसे तो आपने सुना ही नहीं, आप तो खुद कहे जा रहे हैं। मेरी बेटी क्या करेगी, क्या नहीं करेगी, मैं यही तो आपसे पूछ रही हूँ लेकिन मेरा प्रश्न आप सुनते कहाँ हैं?"

ज्योतिषी जरा भी चंचल हुए बिना अर्द्धमुद्रित नेत्र करके बोला—"बहुत अच्छा, तुम कहती चलो, मैं सुन रहा हूँ।"

"मेरी लड़की रूपवती और अच्छी गानेवाली है, लेकिन इस समय या तो उसपर भूत सवार है या वह पागल हो गई है। कुछ ठीक न समझ सकने के कारण मैं आपके पास आई हूँ।"

ज्योतिषी ने भूमि पर खड़िए से कुछ अंक लिखे, फिर थोड़ी देर बाद बोला—"बीबी जी, आपकी लड़की के पागल होने की संभावना

बहुत कम है। उसके चित्त की दृढ़ता इतनी अधिक है कि प्रेत योनि उसका स्पर्श सहज में नहीं कर सकेगी। जान पड़ता है उसे कोई रोग हो गया है। लेकिन नहीं, अभी उसकी आयु बीस वर्ष से कम है, अभी उसे कोई रोग होने की भी संभावना नहीं है।"

प्रौढ़ा प्रसन्न होकर बोली—"यही ठीक है। मैंने हकीमों को बुलाया था। उन लोगों ने नाड़ी देखकर कहा है कि मेरी बेटी को कुछ नहीं हुआ है। ओझा को भी बुलाया था। वह बोला कि उसे किसी हिंदू भूत की बाधा है। पर उस मुसलमान ओझा के मंत्र से वह भूत उतरने का नहीं। इसीलिये तो आपके पास आई हूँ।"

ज्योतिषी ने हँसकर कहा—"बीबी जी, मैं हिंदू अवश्य हूँ, लेकिन भूत उतारनेवाला ओझा नहीं हूँ। तुम्हारी लड़की को भूत बाधा नहीं है। किसी दुष्टात्मा की मजाल नहीं जो तुम्हारी लड़की को स्पर्श करे। तुम निश्चित होकर घर जाओ।"

"अरे पागल, घर ही जाना होता तो तुम्हारे पास मरने क्यों आती? लड़की बेचारी अपने मन से हँसती है, अपने ही मन से रोती है, न जाने क्या क्या बड़बड़ाती रहती है। पूछने पर कुछ बताती भी नहीं।"

"लोग कहते हैं कि प्रेतात्माएँ जिनपर आती हैं वे इसी प्रकार का व्यवहार करते हैं। लेकिन मैंने कहा न कि कोई भी प्रेतात्मा तुम्हारी लड़की के पास तक फटक नहीं सकती। देखो बीबी जी, अपने अतीत यौवन की बातें स्मरण करो—तुम्हारी लड़की प्रेम में पड़ गई है।"

"यह सब सुनने के लिये तुम्हें पैसा देने की कोई आवश्यकता नहीं थी, बाबा। मेरे साथी रुस्तमदिल खाँ यह बात बहुत दिनों से कहते आ रहे हैं।"

"तुम्हारे साथी बहुत बुद्धिमान आदमी हैं। उनकी बात तुमने मानी होती तो तुम्हें व्यर्थ व्यय न करना पड़ता। बीबी जी, मैं ज्योतिष विद्या से फलाफल सुनाकर जीविका अवश्य प्राप्त करता हूँ, मगर भिक्षुक नहीं हूँ। जो लोग संतुष्ट होकर एक पैसा भी दे देते हैं, उसे मैं लाख रुपए समझकर सिर माथे चढ़ाता हूँ। लेकिन जो लोग असंतुष्ट होकर मुझे कुछ देते हैं उनका पैसा मैं ग्रहण नहीं करता। तुम निश्चित होकर घर वापस जाओ। तुम्हारी लड़की को भूत प्रेत नहीं लगा है इसलिये हिंदू ओझा के किए कुछ नहीं होगा। पैसा देने में तुम्हें कष्ट होता है, इसलिये मैं तुमसे एक पैसा भी नहीं लूँगा।"

ज्योतिषी की बातें सुनकर प्रौढ़ा यवनी रोने लगी; फिर अनेक प्रकार से अनुनय विनय कर उसने उन्हें प्रसन्न किया। प्रसन्न होने पर भी ज्योतिषी ने उससे द्रव्य लेना स्वीकार नहीं किया। उसने कहा—"मैं तुमसे अर्थ ग्रहण नहीं कर सकूँगा, किंतु फिर भी तुम्हारे प्रश्नों का यथासाध्य उत्तर देने की चेष्टा करूँगा।"

इस समय तक उनके चारों ओर बहुत से लोग एकत्र हो चुके थे। ओषधि वेचनेवाला पूर्वोक्त वृद्ध मुसलमान भी ग्राहकों का अभाव देख उठकर खड़ा हो गया था। प्रौढ़ा ने पूछा—"मेरी लड़की को हुआ क्या है?"

ज्योतिषी बोला—"तुम्हारी लड़की प्रेम में पड़ गई है।"

"किसके?"

"एक हिंदू के।"

"तोबा, तोबा! उसके मुँह पर हजार झाड़ू मारूँ।"

"उसका क्या दोष है? वह तुम्हारी लड़की के प्रेम में नहीं पड़ा है और कभी भी उसकी कामना नहीं करेगा।"

"तब ?"

"तब क्या ?"

"क्या उपाय है ?"

"बीबी जी, मैं गणना करके यह बता सकता हूँ कि क्या क्या हो चुका है। क्या होनेवाला है, इसे भी थोड़ा थोड़ा बता सकता हूँ, लेकिन उपाय तो एकमात्र भगवान है।"

"मेरी लड़की का क्या होगा ?"

"तुम्हारी लड़की अब तुम्हारे वश में नहीं रहेगी, और न तुम्हारे कहने के अनुसार वेश्यावृत्ति करके तुम्हारे लिये धनोपार्जन करेगी। शीघ्र ही वह देश छोड़कर परदेश चली जायगी।"

"सर्वनाश ! तब मेरा क्या होगा, बाबा ?"

"तुम्हें कभी अन्न वस्त्र की कमी नहीं होगी।"

"कुछ यंत्र तावीज···?"

"वह सब मेरे पास नहीं है।"

इसी समय पीछे खड़ा एक वृद्ध मुसलमान बोला—"इसकी चिंता मत करो बीबी जी, एक ही तावीज में लड़की तुम्हारे वश में हो जायगी। मगर तावीज का दाम नगद एक रुपया लगेगा।"

प्रौढ़ा भीड़ में से निकलकर उस वृद्ध मुसलमान की ओर बढ़ी। इतने ही में एक साथ आठ दस आदमी ज्योतिषी की ओर लपके किंतु उसने विद्यालंकार को दूर खड़े देखकर उन्हें पुकारा। विद्यालंकार भीड़ में से बाहर निकलकर लौट जाना चाहते थे। ज्योतिषी ने उनसे कहा— "पंडित जी, आप वंगवासी हैं, न्यायशास्त्र के पारदर्शी ज्ञाता हैं। ज्योतिष शास्त्र में आपका विश्वास बहुत कम है। थोड़ी देर ठहर जाइए।"

विद्यालंकार रुक गए। ज्योतिषी कहने लगा—"जो कुछ आपने सोचा है वही ठीक है, और जो कुछ आपने सुना है वह मिथ्या है।

आपकी बेटी की शत्रु बंगाल से यहाँ पहुँच गई है, लेकिन ढूँढ़ने पर भी अभी उसे कोई छिद्र नहीं मिल सका है। सावधान हो जाइए! अपनी विद्या और वंशगौरव के दंभ में महापातक मत कर बैठिएगा!"

विद्यालंकार स्तंभित खड़े रहे। ज्योतिषी कहता गया—"आज प्रातःकाल जिसने आपसे पूछा था कि कब काशी जायँगे वह आपकी शत्रु और आपके शत्रु की चर है। सावधान! याद रखिएगा कि वह स्त्री आपकी बेटी की शत्रु है!"

वृद्ध विद्यालंकार ने किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर पूछा—"तो क्या मैं चला जाऊँ?"

"निर्भय होकर जाइए, लेकिन काशी मत जाइएगा।"

ज्योतिषी की बात पर सोच विचार करते करते विद्यालंकार घर की ओर लौट पड़े।

सैंतीसवाँ परिच्छेद

संन्यासिनी

ग्रीष्म ऋतु का उषाकाल था। सद्यःस्नाता दुर्गा कनेर के पेड़ों से पुष्पचयन कर रही थी। पास ही उसकी भौजाई पीपल के नीचे से दूर्वा एकत्र कर रही थी। इतने में सरस्वती वैष्णवी वहाँ आकर खड़ी हो गई। उसे देख दुर्गा बोली—"आज एकादशी है वैष्णव दीदी, एक भजन सुनाओ।"

सरस्वती को उस समय भजन सुनाने का अवकाश नहीं था क्योंकि वह दूसरे ही उद्देश्य से चली थी। उसने कहा—"राधेकृष्ण! राधेकृष्ण! इस अभागे देश में भी आदमी को आना चाहिए? न कोई मंदिर, न अखाड़ा, भाग्य फूट गए इस देश के! झाड़ू मारो इस देश को!"

दुर्गा ने दुबारा कहा—"अरे ओ वैष्णवी दीदी! देश जाय चूल्हे में, एक भजन सुनाओगी?"

"ऐसे देश में भी आदमी आता है! अपना सोने का देश छोड़-कर क्या पंडित जी इसी देश में आकर वास करेंगे? इतना बड़ा शहर है, गंगा जी बह रही हैं, मगर सारे दिन खोजने पर भी कोई मंदिर नहीं मिला...!"

"अरी सरस्वती दीदी, भजन सुनाओगी न?"

"भजन ? अरे मेरे करम ! भजन सुनोगी ? तो अब तक कहना चाहिए था न ?"

"कहते कहते तो गला बैठ गया भाई, तुम्हारे कान में बात घुसती कहाँ है ? अरे सवेरे सवेरे 'मंदिर मंदिर' करके क्यों मरी जा रही हो ? फिर से वैष्णव ढूँढने की साध है क्या ?"

"साध अब मरने की है मालकिन !"

पुष्प एकत्र हो जाने पर दुर्गा ने कहा—"वैष्णवी दीदी, चलो अब घर में चलें। क्यों बहू, बाहर रहने को बहुत जी चाहता है ?"

सुदर्शन की पत्नी बोली—"जीजी, तुम तो जैसे रायघराने की चौकीदार हो; जरा भी बाहर नहीं रहने देती, क्या बात है ?"

"वैष्णवी दीदी भजन सुनाएगी ।"

"सचमुच ? अहोभाग्य है ! चलो चलें।"

दोनों स्त्रियों के अंतःपुर में चली जाने के अनंतर एक संन्यासिनी आकर द्वार पर खड़ी हो गई। संन्यासिनी युवती और रूपवती थी। गेरुए वस्त्र में वह भस्माच्छादित अग्नि जैसी प्रतीत होती थी। उस समय उसे कोई ध्यान से देखता तो तुरंत समझ जाता कि इसे विषय-वासना का परित्याग किए बहुत दिन नहीं हुए हैं क्योंकि कान की ओर बढ़े हुए दोनों आँखों के कोनों से काजल की रेखा पूरी तरह मिट नहीं पाई थी और हाथ पैरों में उस समय भी मेहँदी की आभा झलकती थी। यहाँ तक कि दोनों हाथों की उँगलियों में अगूँठी पहनने के चिह्न स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। द्वार पर खड़ी खड़ी उसने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई लेकिन कहीं किसी को न देख घर के सामनेवाले उद्यान के भीतर चली गई। धीरे धीरे उद्यान पार करके वह घर के दरवाजे तक चली गई और वहाँ ठिठक रही। भीतर आँगन में दुर्गा, उसकी भौजाई

और सरस्वती बैठी थीं। संन्यासिनी कुछ देर तक उन्हें देखती खड़ी रही। सहसा पीछे से किसी ने उसकी पीठ पर हाथ रखा। वह चौंककर पीछे मुड़ी। इधर वह आँगन में बैठी तीनों स्त्रियों की गतिविधि देख रही थी और उधर गृहस्वामी स्वयं उसकी गतिविधि को लक्ष्य कर रहे थे। ज्योतिषी की बातों का पूरी तरह विश्वास न होने पर भी विद्यालंकार महाशय के मन में संदेह जाग्रत हो चुका था। अपने दरवाजे पर नए व्यक्ति को देखकर पहले उन्हें आश्चर्य हुआ था, पर पीछे उन्होंने समझा कि हो न हो यही मेरे शत्रु की चर है। इसलिये वे उसकी गतिविधि देख रहे थे।

पीछे मुड़ने पर उन्होंने उससे कहा—"बोलना मत, नहीं तो विपत्ति में पड़ोगी। यह मेरा घर है। बाहर चलो।"

संन्यासिनी ने सोचा था कि मैं चीत्कार कर उठूँगी पर जब उसकी समझ में यह आया कि मैंने तो सामान्य चोर की नाईं इस घर में प्रवेश किया है तो वह चुपचाप विद्यालंकार के पीछे पीछे बाहर चली आई। घर से थोड़ी दूर निकल जाने पर उन्होंने पूछा—"तुम कौन हो और क्यों छिपकर मेरे घर के भीतर गई थीं?"

संन्यासिनी चालाक थी। उत्तर देने में उसने जरा भी देर नहीं की, बोली—"इस घर में मेरा एक शत्रु है, मैं उसी की खोज में आई हूँ।"

"कौन है तुम्हारा शत्रु?"

"एक बंगाली है।"

"बंगाली मैं भी हूँ, मैं ही क्या तुम्हारा शत्रु हूँ?"

ठहरकर देखने के बहाने संन्यासिनी ने कई बातें सोच डालीं और बोली—"ना, आप तो वृद्ध हैं, वह युवक है।"

"उसका नाम क्या है?"

"नाम ठीक ठीक नहीं जानती, बंगालियों के नाम याद रखना कठिन है।"

सहसा विद्यालंकार को स्मरण हुआ कि इस स्त्री को मैंने पहले कहीं देखा है। उन्होंने पूछा—"कुछ दिन पहले असीम राय के साथ क्या तुम मेरे घर आई थी?"

उसने उत्तर दिया—"नहीं, मैं इस ओर कभी नहीं आई। मैं नहीं जानती कि असीम राय कौन हैं।"

"तुम्हारा शत्रु क्या अभी तक इस घर के भीतर है?"

"हाँ, एक व्यक्ति है।"

"कौन है वह?"

"स्त्री है।"

"तो चलो, उसे दिखाओ।"

घर के दरवाजे पर विद्यालंकार महाशय के पीछे खड़ी हो उसने सरस्वती वैष्णवी को दिखा दिया और चली गई। विद्यालंकार उसकी ओर देखते रह गए। जब वह आँखों से ओझल हो गई तो वृद्ध ब्राह्मण पीपल के वृक्ष के नीचे खड़े खड़े मन में चिंता करने लगे कि यह है कौन।

विद्यालंकार के घर से बाहर आने पर संन्यासिनी दूर से ही एक व्यक्ति को देख खड़ी हो गई। सहसा उसका मुहँ लज्जा से लाल हो आया। उसने एक बार दूसरे रास्ते से चली जाने की चेष्टा की लेकिन दो एक पग के बाद ही उसके पैरों ने जवाब दे दिया। जिसे देखकर उसकी ऐसी अवस्था हो गई थी उसने जल्दी जल्दी उसके पास पहुँच-कर कहा—"यह क्या मुन्नी बाई? तुम क्या बहुरूपिया हो? कल तुम्हें तवायफ मुन्नी बाई के रूप में देखा था, आज यह कैसा वेश?"

संन्यासिनी लाज से सिर झुकाए खड़ी रही, उससे कुछ उत्तर देते नहीं बना। आगंतुक ने फिर पूछा—"तुम कहाँ आई थीं मुन्नी?"

वह धीरे से बोली—"दुर्गा दीदी के पास।"

"उससे भेंट हुई?"

"हाँ, हो गई। तो मैं अब चलूँ?"

नहीं, रुको। तुमसे बहुत सी बातें करनी हैं।

"नहीं, अब जाने दीजिए; बातें फिर किसी समय कीजिएगा।"

"नहीं मुन्नी, पटने में अब असीम राय को अधिक समय नहीं रहना है। बादशाह फर्रुखसियर शीघ्र ही दिल्ली जायँगे। जान पड़ता है मुझे भी उनके साथ जाना पड़ेगा। मुन्नी, सबेरे जब तुम मुझे छोड़-कर चली गई थीं तो तुम्हारी चेष्टा देखकर मैं बहुत डर गया था। सोचा था कि शायद तुम आत्महत्या कर लोगी और मुझे उस महापाप का साझीदार बनना पड़ेगा। लेकिन मुन्नी, सारे दिन निराहार पटने की सड़कों पर मारे मारे फिरने के बाद गोधूलि वेला के क्षीण आलोक में मैंने जब तुम्हारा अभिसारिका का नूतन वेश देखा तो स्तब्ध हो गया! इस महानगरी के लोगों ने सोचा कि आकस्मिक शोक के कारण असीम राय पागल हो गए। मुन्नी, तुम क्या वही हो जिसे मैंने फरीद खाँ के बगीचे में देखा था? सुना है, नारी पहेली होती है। स्त्रीचरित्र का कभी अध्ययन नहीं किया...।"

गेरुए वस्त्रों के आँचल में मुहँ छिपा मुन्नी सिसकने लगी। उसे रोते देख असीम की वाग्धारा अवरुद्ध हो गई। वे बोले—"यह क्या करती हो? फरीद खाँ के बगीचे में···।"

उन्हें आगे कुछ कहना नहीं पड़ा, उनके दोनों पैरों को बलपूर्वक पकड़कर मुन्नी फूट फूट कर रो पड़ी। बड़ी कठिनाई से असीम उसे

शांत कर सके और सीधे बैठाकर उन्होंने पूछा—"रोती क्यों हो मुन्नो ?"

अवरुद्ध कंठ से मुन्नी ने कहा—"मैं क्यों रो रही हूँ, इसे पुरुष नहीं समझ सकेगा। तुम नारी होते तो यह प्रश्न ही न पूछते। मैंने तुम्हें गलत समझा था मेरे स्वामी! सोचा था, मेरे सौंदर्य का मोह तुम्हें आकृष्ट कर लेगा। समझा था कि मेरे अभिसारिका वेश के कारण तुम ईर्ष्यावश मेरे हो जाओगे। वह भूल आज समझ गई। क्षमा करो!"

असीम बोले—"क्षमा किस बात के लिये मुन्नी ? मेरे कारण तुम देहत्याग करने जा रही हो यह जानकर सारे दिन रास्ते रास्ते तुम्हें ढूढ़ँता फिरा था। सायंकाल जब देखा कि तुम अपने पूर्व परिचितों के साथ उद्यान विहार के लिये जा रही हो तो मेरा वह भ्रम दूर हो गया। मुन्नी, अब यह हिंदू संन्यासिनी का वेश तुमने क्यों धारण किया है ?"

आँचल को चेहरे पर से हटाकर मुन्नी बोल उठी—"क्यों किया है, क्या इसे सुनना चाहते हो ? मैं हिंदू हो चुकी हूँ। सुना है, हिंदुओं का पुनर्जन्म होता है। हिंदू कन्या इस जन्म में जिसकी उपासना करती है, उसे दूसरे जन्म में प्राप्त करती है। इस जन्म में मेरे लिये जो असाध्य है, दूसरे जन्म में उसे पाने की कामना से ही हिंदू हुई हूँ। मेरी इस कामना में बाधा मत देना मेरे देव!"

अड़तीसवाँ परिच्छेद

धरोहर

"गाया नहीं, वैष्णवी दीदी ?"

"अभी गाती हूँ" कहती हुई सरस्वती वैष्णवी ने आँचल में से खँजड़ी निकाली। इसी समय बाहर के दरवाजे पर से किसी ने पुकार लगाई—"बहू जी, भैया हैं ?"

बहू ने सिर का आँचल ठीक करते हुए उत्तर दिया—"कौन, छोटे भैया ? आओ, देखती हूँ तुम्हारे भैया कहाँ हैं।"

इसी समय सरस्वती ने अत्यंत झुककर प्रणाम करते हुए कहा—"हुजूर, बहू जी की इच्छा से एक भजन सुनाने जा रही थी। आज्ञा है न ?"

असीम ने हँसते हुए कहा—"खूब ! बहुत दिनों से तुम्हारा भजन नहीं सुना है, क्या गाओगी, गाओ।"

वैष्णवी ने गाया—

भालो जदि बासो तबे फिरे आर एसो ना,
पथ माझे जेते जेते फिरे फिरे चेओ ना,
बार बार चाहो फिरे कातर नयने,

बूझो नाकि हृदि मोर लूटे तव चरने,
जथा चाहो तथा रहो देखा आर दिओ ना ।[1]

गीत समाप्त होने के पहले ही दुर्गा उठ खड़ी हुई और जैसे ही गीत बंद हुआ, उसने कहा—"वैष्णवी दीदी, यही तुम्हारा भजन है ?"

जरा भी हतप्रभ हुए बिना सरस्वती ने चट उत्तर दिया—"यह तो देवताओं का गीत है बहन ।"

बहू दूर खड़ी थी । वह बोली—"पत्थर गीत है, वैष्णवी दीदी ! इसमें तो देवी देवताओं के नाम की गंध तक नहीं है ।"

सरस्वती ने खँजड़ी को आँचल में बाँधकर गीत की व्याख्या आरंभ की । बोली—"नहीं कैसे है ? तुम लोग गीत को जरा अच्छी तरह समझकर तो देखो । श्रीराधा आयान[2] घोष के घर गई हैं..."

---

१ भावार्थ—जहाँ जा रहे हो अगर वहीं मन रम गया हो तो फिर लौटो मत, चले जाओ; परंतु जाते हुए मुड़-मुड़कर पीछे मत देखना । मगर तुम तो बारंबार कातर नयनों से पीछे देखते जाते हो ! जानते नहीं कि इससे मेरा हृदय तुम्हारे चरणों में विलोड़ित हुआ जाता है । निर्मोही, जहाँ तुम्हारी इच्छा हो जाओ, पर फिर आँखों के सामने मत पड़ना ।—अनु० ।

२—आयान अथवा रायाण—ये संबंध में यशोदा के भाई और राधा के पुरुषत्वहीन पति थे । ब्रह्मवैवर्त पुराण के आधार पर 'हिंदी विश्वकोश' में रायाण के संबंध में यह उल्लेख है—"वृषभानु ने रायाण वैश्य के साथ अपनी कन्या (राधा) का विवाह करना स्थिर किया । तब राधा उस देह में छाया मात्र रखकर अंतर्धान हो गई और छाया के साथ रायाण का विवाह हो गया । लक्ष्मी के आदेश से वे नपुंसत्व को प्राप्त हुए थे ।"—अनु० ।

दुर्गा गुस्से से भर गई। बोली—"तुम्हें व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है; हमने सब समझ लिया है। भाई साहब! बड़े भैया घर पर नहीं हैं, तुम क्या बैठोगे?"

थोड़ी दूर हटकर सरस्वती इस प्रकार खड़ी हो गई कि उसकी चेष्टा देखकर एक बच्चे की भी समझ में आ जाता कि वह असीम और दुर्गा के हाव भाव ताड़ रही है। उसे देख बहू अपना क्रोध सँभाल न सकी; वह बोली—"वहाँ खड़ी खड़ी क्या करती हो वैष्णवी दीदी; आओ तरकारी काटो।"

सरस्वती ने झूठमूठ की जँभाई लेते हुए कहा—"यह क्या बहू जी, दो एक भजन और नहीं सुनोगी?"

"आग लगे तुम्हारे भजन में। सबेरे सबेरे बासी मुँह ऐसा भजन सुनने का काम नहीं है। दुर्गा, तू तब तक भैया के साथ बात कर, हम लोग रसोईघर में जाती हैं।"

बड़े कष्ट से दुर्गा और असीम के प्रति एक क्रुद्ध कटाक्षपात करने का लोभ संवरण कर सरस्वती बहू के साथ रसोईघर में चली गई।

दुर्गा ने पुनः पूछा—"बैठोगे छोटे भैया?"

असीम दरवाजे के पास खड़े थे। वहीं खड़े खड़े उन्होंने कहा—"नहीं बहन, अब बैठूँगा नहीं। तुमसे एक बात कहने के लिये ही सुदर्शन को ढूँढ रहा था। सोचा था, सुदर्शन के द्वारा कहलाने पर शायद तुम्हारे मन में दुःख न होगा। पर वे तो हैं नहीं, इसलिये तुम्हीं से कहना पड़ेगा। हम लोग कब यहाँ से चल देंगे, इसका कुछ ठीक नहीं। नए बादशाह का विचार स्थिर नहीं है। वे जिस समय कूच करने की आज्ञा देंगे उसी समय चलना होगा। देखो बहन, जो कुछ कहता हूँ उसे ध्यान से सुनो। बिना सोचे बिचारे उत्तर मत देना।"

दुर्गा विस्मयपूर्वक उनकी ओर देखने लगी। भीतर छिपकर दो व्यक्ति असीम की बातें बड़े चाव से सुन रहे थे लेकिन उनकी उपस्थिति का ज्ञान इन लोगों को नहीं था। असीम ने कहा—"देखो बहन, जिस दिन पिता का घर त्यागकर भिक्षुक की तरह आ रहा था उस दिन अपने स्वामी द्वारा जीवनपर्यंत संचित की हुई धनराशि तुम अपनी इच्छा से भूप के कल्याण के निमित्त अंधकार में मुझे दे गई थीं। उस समय मेरा कोई संवल नहीं था। तुम्हारी वे मोहरें मेरे लिये बादशाह का खजाना थीं और उन्हीं के बल से मैं अपने पैरों पर खड़ा हुआ। लेकिन बहन, अब मुझे उस धन की आवश्यकता नहीं है। तुम दुखी मत होना बहन। कालचक्र के परिवर्तित होने के साथ साथ मेरी अवस्था में भी परिवर्तन हो गया है। मेरे मन में विचार उठा कि जिस धन की मुझे आवश्यकता नहीं रही, उसकी आवश्यकता तुम्हें पड़ सकती है; तुम्हें न पड़े तो सुदर्शन को हो सकती है। बहन, मेरी विपन्नावस्था देखकर तुम्हारा दयार्द्र हृदय व्याकुल हो गया था। उसी व्याकुलता के परिणाम स्वरूप तुम्हें कलंक लगा है, तुम्हारे पिता और भाई को गृहत्याग करना पड़ा है, यह मुझे मालूम है। तुम लोगों को धन का अभाव हो गया है इसलिये मैं यह धनराशि लौटाने आया हूँ, ऐसा मत सोचना। निःसंवल अवस्था में जो धन मुझे तुमसे प्राप्त हुआ था उसकी अब मुझे आवश्यकता नहीं है, पर वही धन तुम्हारे पास रहने से और किसी के काम आ सकता है, इसीलिये उसे ले आया हूँ। अन्यथा समझकर बुरा मत मानना बहन!"

असीम की बातों का अंतिम अंश सुनकर दुर्गा हँस पड़ी। उसने कहा—"तो इसके लिये इतना संकोच क्यों करते हो भैया? भगवान ने तुन्हारी उन्नति की है, इससे हम लोग जितने सुखी हुए हैं शायद संसार में उतना सुखी और कोई न हुआ होगा। देखो भैया, मोहरों

को अभी अपने ही पास रहने दो; मुझे जब आवश्यकता होगी तब तुमसे माँग लूँगी ।"

"सुनो बहन, मैंने जो काम उठाया है उसमें मरने के लिये सदा तैयार रहना पड़ता है । मेरा ऐसा कोई नहीं है जिसे तुम्हारी यह थाती सौंप जाऊँ । अगर मर गया, या तुमसे फिर भेंट न हो सकी तो तुम्हारे पति की यत्नपूर्वक संचित इस धनराशि का शायद अपव्यय ही होगा ।"

दुर्गा पुनः हँस पड़ी और उसे हँसते देख असीम विस्मित हुए ।

दुर्गा बोली—"भैया, भेंट अगर नहीं ही होगी और यह धन मुझे वापस नहीं मिलेगा तो इसमें कौन सी हानि होगी ? यह धन मेरा तो है नहीं; जिन्होंने दिया था उनकी आज्ञा के अनुसार व्यय कर चुकी । जिसे दिया था अब वह लौटा रहा है । तो जब उनके आदेश के अनुसार इसे व्यय करने का सुयोग पाऊँगी तब जैसे भी हो सकेगा तुम्हें सूचित करूँगी । अगर दुर्भाग्यवश तुम न रहोगे अथवा यह धन दाता की इच्छा के अनुसार दूसरी बार काम में न आ सकेगा तो इसके लिये मुझे या तुम्हें कोई दोष नहीं लगेगा । एक बार दाता की इच्छा पूरी हो चुकी है । एक ही धन दो बार प्रयुक्त होगा, इसे शायद दाता जानते नहीं थे ।"

असीम ने बीच में बाधा देकर कहा—"जब तक इन मोहरों को वापस नहीं ले लोगी बहन, तब तक मैं इनका देनदार बना रहूँगा । थाती लौटाए बिना अगर मैं मर जाऊँगा तो नरक में भी मेरा ठिकाना नहीं लगेगा । ना, ऐसा नहीं हो सकेगा । मुर्शिदाबाद वाले सेठ मानिकचंद प्रसिद्ध धनिक हैं । सारे हिंदुस्थान में उनकी कोठियाँ हैं । चलता हूँ, यह धन तुम्हारे नाम से उनके पास जमा कर दूँगा । और एक बात कह दूँ । भूप अंधा होने के कारण असहाय है । अगर मैं

मर जाऊँ तो तुम और सुदर्शन उसकी देखभाल करना। इस मातृहीन बालक को बेटे से भी अधिक करके पाला है। तुमसे और क्या कहूँ ?"

दुर्गा अब तक शांत रही। भूपेन की चर्चा से उसकी आँखें डबडबा गईं। रुँधे हुए गले से उसने पूछा—"भैया, तुम जहाँ लड़ाई पर जाओगे क्या भूप भी वहाँ साथ जायगा ?"

"जहाँ तक बन पड़ेगा, उसे सुरक्षित रखने की चेष्टा करूँगा किंतु कह नहीं सकता, उसे बचा सकूँगा कि नहीं। बादशाह की मृत्यु इस समय सारे देश के सामने महाप्रलय के रूप में खड़ी है।"

जो व्यक्ति बाहरी दरवाजे पर खड़ा था वह असीम की बातें समाप्त होने के पूर्व ही भीतर आकर बोला—"भूपेन के लिये तुम किसी प्रकार की चिंता मत करो। सुदर्शन को मैं तुम्हारे साथ कर दूँगा, वह भूपेन के संग संग रहा करेगा। असीम, विजयी होकर जब तुम वापस लौटोगे तब मैं काशीवास समाप्त कर पुनः देश लौटूँगा। मैंने तुम्हारे पिता का अन्न खाया है, तुम्हारे साथ छल होता देखकर मैंने जो उचित समझा, किया। देखो असीम, चेष्टा करने पर हरनारायण के चंगुल से तुम्हारी संपत्ति को मैं बचा सकता था किंतु मैं तो अंधा हो गया था, उनके बंधुत्व प्रदर्शन ने मुझे मूढ़ बना डाला था और मैं अपना कर्त्तव्य भूल गया। जान पड़ता है भगवान ने इसीलिये मुझे यह दंड दिया है।"

विद्यालंकार को प्रणाम कर असीम विदा हुए। सरस्वती आँगन के जिस कोने में छिपी थी वहाँ से निकल बड़ी बहू के पास जाकर बोली—"बहू जी, पेट न जाने कैसा गुड़गुड़ गुड़गुड़ कर रहा है, मैं अभी आई।" और उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना बाहर चली गई।

उनतालीसवाँ परिच्छेद

अंधा प्रेम

विद्यालंकार के घर से निकलकर मुन्नी काँपते पैरों आगे बढ़ी। आँखों में जल भरा रहने के कारण उसे दिखाई नहीं दे रहा था कि किधर जा रही है या किस रास्ते चल रही है। थोड़ी दूर जाने पर एक छोटे से खजूर के पेड़ पर गिर पड़ने के कारण जब उसे चोट लगी तब जाकर उसकी चेतना लौटी। आँखे पोंछकर उसने देखा कि खजूर के तीखे काँटों में फँसकर उसके कपड़े फट गए हैं, शरीर पर भी चोट आई है और जगह जगह से रक्त निकल रहा है। पास ही एक छोटी सी पुष्करिणी थी। उसमें उतरकर उसने हाथ मुहँ धोया और जहाँ जहाँ से रक्त निकलता था उसे भी स्वच्छ किया। जहाँ वह आ पहुँची थी वह स्थान नगर का बाहरी भाग था; रास्ते में मनुष्य नहीं थे। बीच बीच में दूर से आती हुई गाड़ियों के पहियों की ध्वनि सुनाई पड़ जाती थी। उसी पुष्करिणी के किनारे एक ताड़ के पेड़ की छाया में मुन्नी बैठ गई।

दिन चढ़ने लगा और क्रमशः सूर्य का ताप असह्य हो गया। ताड़ की छोटी सी छाया दूर चली गई। मुन्नी को इसका भान नहीं हुआ और वह प्रचंड ग्रीष्म ऋतु की उसी उत्तप्त धूप में बैठी रही। दिन का दूसरा पहर भी बीत चला। उस रास्ते जो इक्के दुक्के आदमी

आते जाते थे उन्होंने भी कहीं छाया में शरण ले ली। मुन्नी बैठी ही रही। तीसरा पहर आरंभ होने पर जिस स्थान पर ताड़ के पेड़ की छाया थी वहाँ से किसी नारीकंठ ने प्रश्न किया—"आहा बहन, तुम्हारी देह तो बिलकुल झुलस गई, ऐसा सोने सा शरीर एकदम कुम्हला गया।"

मुन्नी ने गरदन घुमाई और देखा कि वृक्ष की छाया में बैठी सरस्वती वैष्णवी दोनों हाथों से खँजड़ी बजा रही है। उसने विस्मय-पूर्वक पूछा—"तुम कब आई ? मैंने तो जाना ही नहीं !"

"कैसे जानोगी बहन ! प्रेम का विष जिसे जर्जर बना देता है उसे क्या बाहरी ज्ञान रह जाता है ? यह प्रचंड वैशाख मास की धूप ! और तुम पहर भर से नंगे सिर इसमें बैठी हो।"

"अयँ, मैं क्या धूप में बैठी हूँ ? मैं तो छाया में बैठी थी !"

"सो तो दो पहर पहले बैठी थी। ओफ ! कैसी धूप है, मेरे सिर पर का गमछा चार बार सूख चुका। यह सूखता चलता है और मैं भिगोती चलती हूँ। परंतु तुम तो एक बार हिलीं तक नहीं ! अरे, यह ऐसा वैसा विष नहीं, प्रेम का विष है जो काले नाग के विष से भी भयंकर होता है।"

उसकी बातें सुनकर मुन्नी कुछ देर तक उसकी ओर देखती रही, फिर धीरे धीरे कहने लगी—"प्रेम क्या सचमुच विष होता है बहन ? देखो, ये हजारों वर्षों से कवि लोग उस प्रेम की महिमा गाते आ रहे हैं जिसके लिये संसार पागल है। क्या वह विष है ? ऐसा संभव है ?"

सरस्वती उस तालवृक्ष की जरा सी छाया से उठकर चली आई और मुन्नी का हाथ पकड़कर उसे पुनः उसी छाया में लिवा ले गई। पुष्करिणी से वह अपना गमछा दो तीन बार भिगो लाई और उससे मुन्नी का हाथ

मुहँ पोंछा किंतु इससे मुन्नी को जरा भी आराम नहीं पहुँचा। उसने पुनः जिज्ञासा की—"बोलो बहन, प्रेम क्या जहर है? शायद तुम्हें गहरा धोखा हुआ है। देखो, कवि खुसरू को प्रेम के कारण ही दीवाना होना पड़ा। तब क्या यह जहर है?"

सरस्वती का चेहरा कठोर हो गया। उत्तेजित होकर वह बोली—"बहन, अभी तुम्हारा रूप यौवन अपनी पूरी मात्रा में सुरक्षित है इस लिये प्रेम की बात तो तुम्हें मीठी लगेगी ही! जब यह रूप और यह यौवन इस सूर्य के समान पश्चिम की ओर ढल पड़ेगा, जब मधु निःशेष हो जाने के कारण भ्रमर नहीं आएँगे तब समझोगी कि प्रेम विष होता है और यह विष जिसे स्पर्श कर लेता है उसका फिर उद्धार नहीं होता। देखो बहन, यह सरस्वती वैष्णवी ऐसा ही चेहरा लेकर इस संसार में नहीं आई थी। वह भी जमाना था जब कितने ही राजे महाराजे उसके दर्शनों की आकांक्षा से दरिद्र वैष्णव की कुटिया के आस पास चक्कर काटा करते थे। वे दिन गए, अब सरस्वती की देहयष्टि के भार से उसके चरणतल पद्मरंजित नहीं हो उठते; हँसने पर गंडस्थल में गुलाब की आभा नहीं दिखाई देती; इसीलिये उसने भी पुष्पगंध का परित्याग कर यह गेरुआ धारण किया है क्योंकि उसके रूपमाधुर्य से आकृष्ट होकर जो असंख्य भ्रमर गुंजन करते फिरा करते थे, कालप्रभाव से वे उसे छोड़कर दूर देश को चले गए। बहन, ऐसा दिन सदा नहीं रहेगा। चंपे जैसा यह रंग मलिन हो जायगा, विष की ज्वाला से आँखों में स्याही फिर जायगी और कोयल की कूक जैसा कंठस्वर शायद काले कौवे की कर्कशता में बदल जायगा। तब समझोगी कि बंगाली वैष्णवी सरस्वती क्यों ऐसा कहती थी। जा बहन, गेरुआ धारण करने के लिये सारी आयु पड़ी हुई है,—अभी तो यौवन का आरंभ है, जीवन का बड़ा लंबा पथ अभी सामने पड़ा हुआ है। लौट जा। जब तक यौवन है, संचय

कर ले। ऐसा करेगी तो बूढी होने पर सरस्वती वैष्णवी की तरह मुर्शिदाबाद और पटने की सड़कों पर खँजड़ी बजाते हुए भिक्षाटन करके पेट नहीं पालना पड़ेगा।"

सरस्वती की कनपटी पर पड़ी झुर्रियों में से दो बूँद आँसू बह चले। उन्हें देख कोमलहृदया मुन्नी को बड़ी व्यथा हुई। अपने गेरुए वस्त्रों के आँचल से सरस्वती की आँखें पोंछकर उसने कहा—"रोती किसलिये हो बहन, जो बात बीत गई उसमें अब अपना चारा ही क्या है?"

"क्या बताऊँ कि क्यों रोती हूँ, तुम अभी उसे समझ नहीं सकोगी। जबतक उपाय रहता है, तबतक लोग समझते नहीं। यहीं देख लो, इस चढ़ती उमर में बिना सोचे, बिना समझे तुम जोगिन क्यों हुई हो? या तो तुम्हारा प्रेमी दो चार दिनों के लिये कहीं चला गया होगा या फिर दो एक बार उसने तुम्हारा अनादर किया होगा?"

"ना।"

"फिर क्या बात है?"

"बहन, उन्होंने तो कभी मेरी कामना ही नहीं की।"

"तब तुमने यह वेश क्यों ग्रहण किया?"

"इस 'क्यों' का उत्तर मैं नहीं दे सकती बहन! जिनके चरणों में मैंने अपना हृदय समर्पित कर दिया है वे मेरे लिये अलभ्य हैं—दुर्लभ नहीं हैं बहन—अलभ्य हैं।"

सरस्वती खिलखिलाकर हँस पड़ी। मुन्नी अत्यंत अचंभे में आकर वैष्णवी की ओर देखती रह गई। फिर सरस्वती बोली,—"बहन, इसीलिये तो स्त्रियों का सर्वनाश होता है। जितने दिन उमर रहती है, रूप रहता है, यौवन रहता है, उतने दिन स्त्री को अपनी असीम शक्ति का पता

नहीं चलता। वह शक्ति जब चली जाती है तब उसकी समझ में आता है कि मैं कहाँ भूली पड़ी थी। तुम घर लौट जाओ। जिसके लिये जोगिन हुई हो उसकी ओर उलटकर भी मत देखना। यह गेरुआ कपड़ा उतार डालो और सज-धजकर रहो। फिर देखोगी कि दो दिन बाद वह आप से आप तुम्हारे पैरों पर लोट रहा है।"

"पर बहन, अगर वह न आवे तब?"

"तब हानि क्या है? एक नहीं आता है तो दूसरे दस आएँगे।"

"यह नहीं होने का बहन! इस संसार में एकमात्र वही मेरा सब कुछ है; वह अगर नहीं आता है तो यह संसार मेरे लिये अँधेरा है।"

"यही तो सर्वनाश का लक्षण है बहन! इसी प्रकार से मेरा और मेरे जैसे हजारों दूसरे लोगों का सर्वनाश हुआ है। मुझे तो तुम्हारा सर्वनाश भी प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है। तुमको साफ साफ बता रही हूँ, फिर भी तुम्हारी समझ में नहीं आ रहा है। पुरुष तुम्हें जिस दृष्टि से देखता है, हम तुम तो उसे उसी दृष्टि से देख नहीं पातीं। पुरुष जानता है कि हम लोग ऐसा नहीं कर सकतीं, और इस कमजोरी का पता रहने के कारण ही निर्दय पुरुष निरंतर नारी जाति का दलन और अवहेलना करता रहता है। सुन बहन, अब भी समय है, घर वापस चली जा। यदि तेरे लिये वह इतना कठोर है तो उसे भूल जा। उसकी कठोरता क्या तुझे भी कठोर नहीं बना पाती?"

वैष्णवी की बातें सुनते सुनते मुन्नी की आँखें पुनः आँसुओं से भर गईं। रोते रोते उसने कहा—"नहीं बहन, ऐसा नहीं कर पाऊँगी। बहुतेरा यत्न करके देख चुकी, कहाँ भूल सकी? मैं वेश्या की लड़की हूँ, वेश्यावृत्ति मेरा व्यवसाय है। माता पिता ने स्वेच्छा से मुझे इस व्यवसाय में लगाया था इसलिये स्वभावतः मेरा हृदय पुरुषों की अपेक्षा हजार

गुना कठोर है। लेकिन मैं कठोर हो नहीं पा रही हूँ। वे मेरे लिये देवदुर्लभ हैं। वे स्वर्ग के देवता और मैं क्षुद्र कीट हूँ। उनके चरणों का स्पर्श भी मेरे लिए असंभव है बहन! मेरी माता हिंदू हैं और पिता मुसलमान। मैं जारज हूँ। वे उच्चवंशीय हिंदू हैं और बादशाह के दरबार में प्रतिष्ठित पद पर हैं। मेरे लिये वे अप्राप्य हैं। उन्हें छूना तो दूर रहा, उनका दर्शन पाना भी मेरे लिये दुराशा है। बहन, तुम्हारी आँखों में जल देखकर मैं समझ गई कि तुम भी इस अग्नि में जल चुकी हो—मेरी अपेक्षा कई गुना अधिक जली हो। बहन, मेरी जैसी हीन स्त्री के मन में ऐसी उच्चकांक्षा क्यों उत्पन्न होती है? एक नगण्य कीट क्योंकर देवदुर्लभ चरणों की कामना करता है। यह दुर्दमनीय आशा, यह अशेष वासना, यह अदम्य मनोवेग जब पूर्ण नहीं होने का, तो हिंदू मुसलमान का वह एकमात्र ईश्वर, दिन और रात्रि का वह सृष्टि-कर्त्ता उन्हें क्यों उत्पन्न करता है? तुम तो हिंदू हो, बताओ बहन, क्यों करता है?"

आँसुओं से मुन्नी का मुँह बिलकुल भीग गया। सरस्वती भी बिना कुछ उत्तर दिए शांत रही। बहुत देर के बाद सरस्वती ने पूछा—वह है कौन बहन? कैसा पुरुष है जो तुम्हारी इस अतुलित रूपराशि और यौवन की इस प्रकार उपेक्षापूर्वक अवहेलना करता है? उसे एक बार देखने की इच्छा होती है। मनुष्य समाज में ऐसा पुरुष दुर्लभ है।"

वैष्णवी के प्रश्न का उत्तर थोड़ी देर तक मुन्नी ने नहीं दिया। तदनंतर आँखें पोछती पोछती उसने कहा—"मुझे दोष मत देना बहन, मैं नीच हूँ पर वे पवित्र हैं। मैं कलुषित हूँ। सुना है, हिंदुओं के लिये मुसलमान स्त्री का दर्शन हेय है, वारांगना का स्पर्श अधर्म है। उन्हें देखकर मन का वेग सँभाल न सकने के कारण अगर कुछ कह बैठी

तो ? ना बहन, तुम मुझे लालच मत दो, क्षमा करो। हिंदू और मुसलमान के जो परमेश्वर हैं वे तुम्हारा कल्याण करें।"

इतना कहकर मुन्नी उठी। सरस्वती बैठी ही रही। अपने ही मन में डूबी हुई मुन्नी शहर के रास्ते पर चल पड़ी। आँखों से ओझल होने के पूर्व ही सरस्वती ने उसका पीछा किया। उस समय अपराह्न हो चुका था और नगर के उस बाहरी भाग में भी दो एक राही आने जाने लगे थे। पीछा करती करती सरस्वती चौक के निकट आ पहुँची। वहाँ एक व्यक्ति ने उसको देखते ही अपने ताड़पत्र के छाते की आड़ कर ली; लेकिन सरस्वती ने इसे देखा नहीं। इसके अनंतर सरस्वती मुन्नी का और उक्त व्यक्ति सरस्वती का अनुसरण करने लगा।

चालीसवाँ परिच्छेद

मुंशी का पत्र

"काली बिल्ली की दुम एक तोला, काने हिरन की सींग एक तोला और चमगादड़ का पंख एक तोला, इन तीनों को एक साथ दो सेर पानी में नई हँड़िया में चढ़ा देना। जब तक पकता रहे, बाईं ओर मत मुड़ना और न बाएँ अंग से छूना; जब एक पाव पानी रह जाय तब उतार लेना।"

"जी, ये सब चीजें कहाँ मिलेंगी?"

"सब मौजूद है बीबीजान, महज पैसे की बात है। पैसा निकालते ही सब हाजिर हो जायँगी। और यह तावीज है। बगदाद के पीर साहब इसे मक्का शरीफ से अजमेर शरीफ ले आए थे। आलमगीर बादशाह ने इसी की बदौलत तख्त हासिल किया था और दाराशिकोह की काफिरी गायब हो गई थी।"

"मैं बहुत गरीब हूँ, इतना पैसा कहाँ पाऊँगी कि तावीज खरीद ले जाऊँ?"

"बीबीजान, उस्ताद का हुक्म है कि जो जिस लायक हो उससे उतना ही दाम लिया जाय। ऐसा न हो तो हम लोगों का काम कैसे

चले। खुदावंद ने जिसे बुलंद किया है उसका अगर मेरे जैसे गरीब से कुछ भला हो जाता है तो वह वजन के मुताबिक देता है, और जो फकीर हैं वे क्या देंगे, दुआ दे जाते हैं।"

उस वृद्ध को घेरकर जो लोग खड़े थे उनमें से एक बोला—"ओह, नबीबख्श मियाँ कितने मिहरबान हैं!"

वृद्ध उसकी बात अनसुनी करके बोला—"बीबीजान, दवा का दाम एक रुपया और तावीज के दो रुपए देकर तुम दोनों चीजें लेती जाओ,—मतलब हासिल होने पर तुम्हारे जो जी में आए दे जाना।"

मोतिया तीन रुपए देकर तावीज और दवा ले घर लौटी। ऊपर जाकर देखा कि मुन्नी बाल सँवार रही है। पहले तो वह डाँटने डपटने जा रही थी, फिर न जाने क्या सोचकर कुछ नहीं बोली। तावीज और दवा उसने छिपाकर रख दिया और घर का काम करने लगी। श्रृंगार करके मुन्नी ने पुकारा—"अम्मा!"

मोतिया ने मसाला पीसते पीसते कहा—"क्या है?"

"उस्ताद आएँगे न?"

"कैसे कहूँ?"

"बुलवा लो।"

"किसलिये, कोई मोजरा है क्या?"

"हाँ।"

"कहाँ है? बयाना तो कोई नहीं दे गया!"

"फरीद खाँ ने बयाना दे रखा है, कल बहुत रात गए लौटी थी इसलिये देना भूल गई।"

मुन्नी ने आँचल की खूँट से खोलकर दो नई अशर्फियाँ माँ के हाथ पर रख दीं। मोतिया मसाला छोड़ छाड़कर उस्ताद को बुलाने चली।

मुन्नी नीचे उतर आई और पड़ोस के एक लड़के को डोली बुलाने के लिये भेजकर दरवाजे पर खड़ी रही। कुछ देर बाद उसने सरस्वती को आती हुई देखा। उसे देखकर मुन्नी हँसी, किंतु हिली नहीं। सामने से जाती हुई सरस्वती ने दो तीन बार उसकी ओर देखा। मुन्नी ने भी उसे देखा मगर उसके भावों से ऐसा नहीं प्रतीत हुआ कि उसने सरस्वती को पहचान लिया। इसलिये सरस्वती को भी उसके साथ बातचीत करने का साहस नहीं हुआ। वह चली गई किंतु मुन्नी खड़ी ही रही। थोड़ी देर बाद ताड़ का छाता लगाए एक व्यक्ति उसी मार्ग से आया और मुन्नी को देखने के लिये ठिठका। भली भाँति देख लेने पर वह भी चला गया। मुन्नी ने उससे कोई बात नहीं की। डोली आई, उस्ताद भी आए और मुन्नी फरीद खाँ के यहाँ चली गई। मोतिया निश्चिंत होकर दवा पकाने बैठी।

संध्या समय सरस्वती ने नगर के बाहरी भाग में बने एक मंदिर में प्रवेश किया। वहाँ वैष्णवों का अखाड़ा था जिसमें एक महंत अपनी वैष्णवी दासी और अनेक चेले चेलियों के साथ रहते थे। उस समय महंत जी आँगन में बैठे गाँजे की दम लगा रहे थे। प्रसाद की आशा में दो एक चेले पास ही बैठे हुए थे। अखाड़े के भीतर जाकर सरस्वती खाली भूमि पर बैठ गई।

महंत ने मुस्कुराते हुए टूटी फूटी बँगला में जिज्ञासा की—"क्या हुआ सरस्वती दीदी, मतलब हासिल हुआ?"

सरस्वती बोली—"पत्थर हुआ महंत जी, मैं कब तक ऐसे बैठी रह सकती हूँ! एक जरूरी काम है, चिट्ठी भेजनी है।"

"वैष्णवी दीदी, तुम्हारा तो सभी काम जरूरी हुआ करता है। अब तो साँझ हो गई, कौन चिट्ठी लिखेगा, कौन ले जाएगा?"

"नहीं महंत जी, बहुत जरूरी काम है, किसी आदमी को भेज दीजिए।"

"आदमी इस समय अधिक पैसा लेगा।"

"ले, मैं नगद एक रुपया दूँगी।"

"अरे महादेवप्रसाद, ए महादेव!"

एक चेला उठ आया और महंत जी के आदेशानुसार मुंशी जी को बुलाने चला गया। मुंशी जी ने आकर पत्र लिखा और एक रुपया पाकर अखाड़े से बाहर हुए। मार्ग में एक आदमी खड़ा था जो छिपकर मुंशी जी का पीछा करने लगा।

चलते चलते मुंशी जी की जेब से रुपया गिर पड़ा। पीछा करनेवाले ने रुपया गिरते देख लिया। उसने रुपया उठा लिया और मुंशी जी से बोला—"यह रुपया शायद आपका गिर पड़ा है।"

मुंशी जी ने चकपकाकर कहा—"मेरा!"

"हाँ, आपका ही है; मैंने आपकी जेब से गिरते देखा है।"

जेब में हाथ डालकर टटोलने पर मुंशी जी ने देखा कि सचमुच रुपया नहीं है। रुपया लेकर उन्होंने पीछा करनेवाले को बहुत बहुत धन्यवाद दिया। उसने मुंशी जी से पूछा—"आप क्या अखाड़े में रहते हैं?"

"राम, राम! मैं सक्सेना कायस्थ ठहरा, मैं क्यों अखाड़े में रहूँगा? एक बंगाली औरत को जरूरी खत लिखाना था सो एक रुपया कबूल कर उसने बुलवाया था। अखाड़े में कहीं गृहस्थ आदमी रहते हैं?"

"आप क्या यहीं के रहनेवाले हैं?"

"राम राम बाबूजी, यह पटना शहर दोलब है। मैं लखनऊ का रहनेवाला हूँ, वाकयानवीस साहब का नकलनवीस हूँ।"

"यहाँ कब से हैं?"

मुंशी जो गरीब थे, बेचारे थोड़ी सी सहानुभूति से पिघल गए और अपने मन का सारा दुःख उस व्यक्ति को सुना गए।—बादशाह आलमगीर की अमलदारी में वाकयानवीस का दफ्तर बहुत बड़ा दफ्तर था, उनका वेतन भी बहुत अधिक था सूबेदार और फौजदार की तो बात ही क्या, शाहजादे तक उस समय वाकयानवीस का संमान करते थे। अब न औरंगजेब आलमगीर हैं, न वह राज है, और न वाकया-नवीस की वह इज्जत है, इसलिये मुंशीखाने की आमदनी भी कम हो गई है। विपत्ति कब किसकी गर्दन दबोच लेगी, इसका कोई ठिकाना नहीं। साल में दो बार बादशाह तबदील होते हैं इसलिये पैसा दिखाई नहीं देता। मुंशी जी का वेतन १०) था। दो स्त्रियाँ थीं। अवस्था जब अच्छी थी तब मूर्खता करके दूसरा विवाह कर लिया था। अब सुझाई नहीं देता कि क्या किया जाय। बाल बच्चे बहुत से हो गए हैं।—मुंशी जी एक ही साँस में यह सारी कथा सुना गए।

वह व्यक्ति चुपचाप सुनता रहा। तदनंतर उसने एक अशर्फी निकाली और मुंशी जी को दिखाकर बोला—"मुंशी जी, इसे देख रहे हैं?"

अँधेरे के कारण मुंशी जी ने अशर्फी नहीं पहचानी, बोले—"रुपया क्या होगा?"

लेकिन लालच से उनकी आँखें चमक उठीं। वह व्यक्ति बोला—"रुपया नहीं है मुंशी जी, अशर्फी है; सोने की मोहर। मेरा एक काम अगर कर दीजिए तो एक ही लहमे में यह आपकी हो जायगी।"

"क्या, क्या ?"

"जिस बंगाली स्त्री की चिट्ठी लिखने गए थे उसने क्या लिखवाया ?"

"यह तो मामूली सी बात है; चिट्ठी लिखी है सरस्वती वैष्णवी ने नवीन नाई के नाम, गाँव डाहापाड़ा, इलाका मुर्शिदाबाद खास, सूबा बंगाल। खबर दी है कि असीम बादशाह के साथ हैं, उनकी तवायफ हर रोज दुर्गा से मुलाकात करती है। तवायफ और उसके वालिद भी यहीं हैं। वे लोग अभी बनारस नहीं गए हैं और कब जायँगे इसका भी कोई ठिकाना नहीं। हर तरह से पता लगाने पर भी उसे यह नहीं मालूम हो सका कि वे लोग बनारस कब जायँगे। शायद बनारस जाने की इनकी कभी इच्छा नहीं थी और ये लोग असीम राय के साथ ही जायँगे। खरचा चुक गया है इसलिये सेठ की कोठी पर दस अशर्फी की हुंडी जल्दी भेज दी जाय।"

बात समाप्त करके उन्होंने लोलुप दृष्टि से मुहरों की ओर देखा किंतु वह व्यक्ति अपना हाथ समेटकर बोला—"ठीक ये ही बातें आपने लिखी हैं, इसका क्या प्रमाण है ?"

"आपका पूछना बिलकुल दुरुस्त है। प्रमाण मेरे इस बस्ते में है। चिट्ठी लिखने के पहले मसविदा बनाना पड़ता है; उसे मैंने फेंका नहीं है।"

बस्ता खोलकर मुंशी जी ने एक टुकड़ा कागज निकाला। उस व्यक्ति ने उसे पास के एक मकान की खिड़की के पास ले जाकर प्रकाश में देखा। मुंशी जी ने जब उसे पढ़कर सुना दिया तब वह व्यक्ति बोला—"देखिए मुंशी जी, आप बराबर इस अखाड़े में जाया कीजिएगा

और उस बंगाली औरत से पूछताछ किया कीजिएगा कि वह और चिट्ठी लिखाएगी या नहीं। वह चिट्ठी लिखवाए तो उसकी नकल रख लीजिएगा। वह नकल अगर आप चौक में मनोहर साह बनिया की दूकान पर ले जायँगे तो एक अशर्फी मिलेगी।''

इतना कहकर वह अंधकार में गायब हो गया।

एकतालीसवाँ परिच्छेद

नई दीक्षा

पटना नगर के उपकंठ में एक शुष्क जलाशय था जिसका तट पलाश के रक्तवर्ण पुष्पों से आच्छादित था। अभी सूर्योदय नहीं हुआ था। ऊषा की स्निग्ध मधुर शुभ्र आभा से प्राची दिशा धीरे धीरे उज्ज्वल हो रही थी। पलाश वृक्षों के नीचे धुँधले प्रकाश में एक स्त्री खड़ी थी। सहसा दूर पर पदशब्द सुनाई पड़े। उन्हें सुनकर वह स्त्री वृक्षों की छाया में अच्छी तरह छिप जाने की चेष्टा करने लगी। पद-शब्द धीरे धीरे निकट हुआ और एक पुरुष की आकृति स्पष्ट हुई। मार्ग छोड़कर वह व्यक्ति पलाश वृक्षों के पास आकर उस स्त्री से बोला—"कौन हो तुम, बेटी?"

स्त्री ने भाग जाने की चेष्टा की किंतु उसके पैर नहीं उठे; जान पड़ा जैसे किसी अदृष्ट शक्ति ने पैरों में बेड़ी डाल दी है। शुष्क पलाश-पत्रों के बीच खड़ी वह स्त्री थर थर काँपने लगी। उसकी यह अवस्था देख आगंतुक ने कहा—"डरो मत बेटी, मुझे बता दो, तुम कौन हो?"

उसे निरुत्तर देखकर उस व्यक्ति ने फिर कहा—"देखो बेटी, तुम्हारे बारे में मैं बहुत कुछ जानता हूँ इसलिये चुप रहकर तुम अपना परिचय

एकदम गुप्त नहीं रख पाओगी। मेरा परिचय सुनो—मेरा नाम हरि-नारायण विद्यालंकार है, बंगाल का निवासी हूँ। मैं ब्राह्मण हूँ और असीम राय के पिता के अन्न से प्रतिपालित हूँ। जिसके अत्याचार से असीम और उसके भाई ने देशत्याग किया है उसी के कारण मैंने भी देशत्याग किया है। तुम अगर मुझसे कोई बात छिपाओगी नहीं, तो संभवतः हमलोग असीम की भलाई कर सकेंगे।"

वह स्त्री इसपर भी चुप रही। विद्यालंकार ने पुनः कहा—"देखो बेटी, कुछ दिन हुए असीम तुम्हें लेकर मेरे घर आया था और तुम दो तीन दिन तक मेरी लड़की और बहू के पास थीं। ठीक है न?"

अज्ञात भाव से उस स्त्री ने सिर हिलाकर सहमति सूचित कर दी। विद्यालंकार ने पूछा—"असीम ने क्या कभी तुम्हारा अनिष्ट किया है?"

अब जाकर उसका कंठ फूटा; वह बोली—"अनिष्ट की कल्पना भी मत कीजिए। वे देवता हैं, अपने प्राणों का मोह त्यागकर उन्होंने मेरी रक्षा की है। जिस समय निराश्रित थी, उन्होंने स्वर्ग में आश्रय देकर..."

"वह सब कहने की आवश्यकता नहीं, मैं जानता हूँ। तुम यह कहो कि कौन हो?"

"यह सब आपके सुनने योग्य नहीं है।"

"क्यों? बताओ न बेटी, परिचय देने में हानि क्या है?"

"आप बुरा मत मानिएगा, जरूरत होगी तो बाद में परिचय दे दूँगी।"

"अच्छी बात है; जहाँ तक समझ सका हूँ, तुम असीम का अनिष्ट नहीं चाहतीं।"

"ना, कभी नहीं। और मैं समझती हूँ, आप भी उनका भला-चाहते हैं। मैं साधारण स्त्री हूँ। अपना क्षुद्र जीवन देकर भी यदि

कभी उनका उपकार कर सकूँगी तो निश्चय जानिएगा कि सर्वदा और सर्वत्र मैं प्रस्तुत रहूँगी।"

उसकी आँखों से दो बूँद आँसू गिर पड़े और भावावेग के कारण कंठ अवरुद्ध हो गया। प्रकृतिस्थ हो जाने पर विद्यालंकार महाशय ने उससे पुनः पूछा—"एक बात और बताओगी बेटी? जिस दिन प्रातः-काल संन्यासिनी के वेश में मेरे द्वार पर खड़ी थीं उस दिन दूर से एक स्त्री की ओर इंगित करके तुमने कहा था कि वह मेरी शत्रु है। तुम्हें ज्ञात है कि वह कौन है?"

"वह आप लोगों के देश की वैष्णवी है।"

"वह क्या सचमुच तुम्हारी शत्रु है?"

"जी हाँ, क्योंकि वह उनकी शत्रु है।"

"तुमने कैसे जाना कि वह उसकी शत्रु है?"

"बाबू जी, शत्रु मित्र की पहचान करने में पुरुषों को जितनी देर लगती है, स्त्रियों को उतनी नहीं लगती।"

"ठीक कहती हो बेटी! इसी सरस्वती वैष्णवी के बारे में पूछताछ करने तुम्हारे पास आया था। कितने दिनों से तुम्हारा उससे परिचय है?"

"मैंने उसे आपके घर ही पहले पहल देखा था।"

"फिर कितनी बार साक्षात् हुआ?"

"दो तीन बार।"

"तुमसे कौन सी बात वह जानना चाहती थी?"

"सो मैं आपके सामने कह न सकूँगी बाबू जी।"

"लजाओ मत बेटी! अगर असीम का कल्याण चाहती हो तो सब बातें स्पष्ट बता दो। क्या वह पूछती थी कि दुर्गा असीम को प्यार करती है?"

"यह तो पूछती ही थी।"

"फिर तुम्हें कहने में संकोच क्यों होता है? और क्या क्या कहती थी?"

"एक दिन पूछती थी कि वे रात में आपके यहाँ जाते हैं या नहीं?"

"मैं समझ गया बेटी। मेरी आँखों पर परदा पड़ गया था। असीम के बड़े भाई मेरे बालसखा हैं मगर उन्हीं के कारण मुझे देश-त्याग करना पड़ा है। उनकी इच्छा होती तो संकेत मात्र से मेरे शत्रुओं का विनाश कर डालते। अब जाकर समझ में आया है कि हरनारायण क्यों मेरे विरुद्ध थे। बेटी, तुम्हारा नाम मुन्नी है। तुम नर्त्तकी हो, वेश्या की कन्या हो। किंतु तुम स्वयं वेश्या नहीं हो। तुम्हारे चरित्र में जैसी दृढ़ता है वैसी बहुतेरी हिंदू स्त्रियों में भी नहीं होती। मुझे मालूम है कि तुमने उसके लिये अनेक कष्ट सहे हैं, अनेक त्याग किए हैं; ना बेटी, संकोच छोड़ो; मैं तुम्हारे पिता के समान हूँ। देखो बेटी, पवित्र प्रेम आकांक्षा और कामना से रहित होता है; हिंदू शास्त्रों का यही मत है। असीम के प्रति यदि अपने को उत्सर्ग करना चाहती हो तो त्याग को स्वीकार करो, प्रवृत्तियों का दमन करो; ऐसा करोगी तो एक न एक दिन तुम्हारे मन को तृप्ति अवश्य प्राप्त होगी। हिंदू समाज में तुम उसके लिये अस्पृश्य हो। कामना का परित्याग कर प्रेमास्पद की अर्चना करना सीखो। ऐसा करोगी तो अपने मनोवांछित को उपास्य देवता की भाँति सर्वदा हृदय में उपस्थित पाओगी। बेटी, इसे छोड़कर स्त्रियों के लिये दूसरा कोई उत्तम मार्ग नहीं है। मनुष्य संसार में जो कुछ चाहता है क्या उसे पा ही लेता है? आशाओं और आकांक्षाओं को लेकर ही मनुष्य जीता है। वह जानता है कि इष्ट और आकांक्षित वस्तु दुर्लभ है, फिर भी उसकी आशा और आकांक्षा की कोई सीमा नहीं रहती। मनुष्य जानते समझते हुए भी दुर्लभ की

ही कामना करता हुआ जीवन यापन करता रहता है। बेटी, अगर मानवीय प्रेम को पवित्र बनाकर, कामना का परित्याग करके ईप्सित की आराधना करोगी तो तुम्हारा और उसका बाल भी बाँका न होगा। कर सकोगी बेटी ?"

"कर सकूँगी।"

"सच कहती हो ? सोच समझकर कहो कि कर सकोगी।"

"हाँ, कर सकूँगी।"

"तो सौगंध खाओ, हिंदू मुसलमान के उस एकमात्र ईश्वर का नाम लेकर सौगंध खाओ।"

"पिता जी, मैं वेश्या की लड़की हूँ। जीवन में ऐसी मीठी और प्रिय बातें मुझे किसी ने नहीं बताईं। बचपन में जो शिशु पितृस्नेह से वंचित हो जाता है उसे कितना दुःख होता है, यह आप जानते हैं ? जानते हों तो विचार कीजिए। जीवन में पहले पहल उन्हीं के मुख से ममताभरी मीठी बातें सुनाई पड़ीं। उनका दर्शन होने के पूर्व नहीं जानती थी कि वेश्या के मन में भी व्यथा हो सकती है, उसके शरीर में भी प्राण होता है, स्नेह ममता होती है—इस पटना शहर में मुझे किसी ने इसका अनुभव नहीं कराया। इसीलिये पिता जी, उसी क्षण से वे मेरे लिये देवता, मेरे एकमात्र ईश्वर हो गए। मैं न हिंदू हूँ, न मुसलमान। माँ हिंदू हैं, पिता मुसलमान। माता वेश्या हैं, इसलिये भगवान का पवित्र नाम मैंने कभी नहीं सुना। बाबूजी, सुन लीजिए—जो मेरे देवता हैं, जो मेरे एकमात्र भगवान हैं उन्हीं का पवित्र नाम लेकर शपथ करती हूँ कि मैं निष्काम आराधना कर सकूँगी। यह वेश्या की कन्या मुन्नी अपने मन की सारी कामनाओं को निकाल बाहर कर देगी, वासनाओं और आकांक्षाओं को अग्नि में जलाकर......"

वह आगे नहीं बोल सकी। वृद्ध विद्यालंकार ने हाथ पकड़कर उसे बैठा दिया और धीरे धीरे कहने लगे—"बेटी, तुम भी मेरी दुर्गा की तरह चिरदुःखिनी हो। आज से मेरे लिये जैसी दुर्गा है वैसी ही तुम हो। बैठो, सुनो; असीम इस समय शत्रुओं से घिरा हुआ है, लेकिन वह निरपराध है। शत्रुवर्ग बलवान है और असीम बच्चों जैसा भोला भाला निश्छल है। मैं साठ वर्ष का बुड्ढा हूँ, लेकिन बेटी, ये सब बातें कल सायंकाल मेरी बुद्धि में आईं। असीम जब छोटा था तभी उसके पिता उसके छोटे अंधे भाई को गंगा किनारे मृत्युशय्या पर पड़े पड़े मुझे सौंप गए थे। लेकिन मैं अंधा हो गया था। मोहाच्छन्न हो जाने के कारण मुझे अपनी प्रतिज्ञा भूल गई; इसलिये आज असीम रास्ते का भिखारी है और अब समझ में आया है कि उसी पाप के कारण आज मैं देशत्यागी हुआ हूँ। भगवान ने यदि कृपा की तो इस पाप का प्रायश्चित्त करूँगा—असीम का पैत्रिक वैभव उसे वापस दिलाऊँगा, उसे संसारी बनाऊँगा और तब काशीवास करूँगा। तुम सहायता करोगी?"

मंत्रमुग्ध की भाँति मुन्नी बोली—"मुझे जो आज्ञा होगी वही करूँगी।"

"बहुत ठीक! अभी इसी रास्ते सरस्वती आएगी, दिन भर उसके साथ साथ रहना और सायंकाल मुझे समाचार देना। एक बात और; बिना मेरी आज्ञा के असीम से साक्षात् मत करना। स्वीकार है?"

"अवश्य।"

बयालीसवाँ परिच्छेद

नवीन दूत

हरिनारायण विद्यालंकार जिस समय पटने में मुन्नी से वार्तालाप कर रहे थे उस समय मुर्शिदाबाद के उस पार डाहापाड़ा ग्राम में गंगा के तट पर निर्मित कानूनगो हरनारायण राय की अट्टालिका के समक्ष एक नाई चोबदार से पूछ रहा था—"मालिक क्या बाल बनवाएँगे ?"

चोबदार दयालु था, बोला—"नवीन भैया, तमाखू नहीं पियोगे क्या ? चिलम तैयार है, दो फूँक ले लो, मैं मालिक से पूछकर आता हूँ ।"

चोबदार ने हुक्के पर से चिलम उतारकर नवीन को दे दिया। उसे लेकर नवीन दरवाजे के पास बैठ गया। चोबदार ने भीतर प्रवेश किया।

भीतर दुग्ध-फेन के समान स्वच्छ प्रशस्त शय्या पर आसीन कानूनगो हरनारायण राय हुक्के का सेवन कर रहे थे। उनके सामने लगभग दो गज भूमि को घेरकर उनकी पत्नी विराजमान थीं। एक दासी ताड़ के पंखे से उन्हें हवा कर रही थी, दूसरी एक बड़ा सा पीकदान लिए खड़ी थी और तीसरी दोनों हाथों से विशाल तांबूलपात्र पकड़े उनके सामने उपस्थित थी।

मालिक बोले—"वही तो, विपत्ति तो जाकर भी गई नहीं।"

गृहिणी बोलीं—"तुम्हें इतना भय किस बात का है?" और साथ ही उन्होंने हाथी के सूँड़ के समान अपनी विशाल बाहें फैला दीं। उनके भार से पानवाली दासी काँप उठी। फिर उन्होंने अपने प्रशस्त हाथों से कई बीड़े पान लेकर मुँह में भर लिया और उन्हें चबाने लगीं।

क्षुद्रकाय गृहस्वामी ने तकिए में लुप्त होते हुए कहा—"तुम्हें क्या मालूम प्रिये, सब बातें तो तुम समझतीं नहीं।"

स्वामी की बातें समाप्त होते न होते महाप्रलय की सूचना मिल गई। विपुलकाया कज्जलवर्णा गृहिणी गरज उठीं। उनके गर्जन से अट्टालिका तक थर्रा गई। पानवाली दासी गिरते गिरते बची। भय के मारे दूसरी दासी के हाथ का पंखा छटककर दूर जा गिरा। गृहिणी कहने लगीं—"क्या है? मैं क्या नहीं समझती? अबतक हमारी बुद्धि के अनुसार चलते तो वह साँप का बच्चा इतना बड़ा होने पाता?"

कृशकाय गृहस्वामी ने तकिए में और धँसते हुए कहा—"सो तो ठीक है। तुमने जो कहा है•••लेकिन•••नवाब के दरबार में ••"

"तब 'लेकिन' और 'नवाब का दरबार' कैसा? जैसी बुद्धि तुम्हारी है वैसी ही तुम्हारे नवाब की है। जब कहा था तभी अगर इस विद्या-लंकार को विदा कर देते तो यह झंझट कभी की समाप्त हो जाती।"

गृहिणी के विशाल वृषभस्कंध संचालित हुए। दूसरी दासी ने पर्वत कंदरा के सदृश पीकदान उनके सामने कर दिया। गृहिणी के मुख से प्रचुर परिमाण में पान की पीक निकलकर पीकदान के आश्रय में चली गई। इसी समय चोबदार ने प्रवेश करके गृहस्वामी की रक्षा की। द्वारपर खड़े होकर उसने पूछा—"हुजूर, नवीन नाई आया है; मालिक क्या बाल बनवाएँगे?"

मालिक के बोलने के पूर्व ही मालकिन बोलीं—"मालिक बाल नहीं बनवाएँगे। तू नवीन को लिवा ला।"

नवीन आया। देर तक वह गृहिणी तथा गृहस्वामी को प्रणाम करता रहा। गृहिणी ने प्रसन्न होकर पूछा—"क्यों रे नवीन, क्या समाचार है?"

नवीन तत्काल हाथ जोड़कर बोला—"हुजूर, नवीन तो आपका दासानुदास है, श्रीचरणों की धूल है; उसके पास कहाँ का समाचार होगा। समाचार तो सब हुजूर के पास है।"

"व्याख्यान बंद कर; यह बता कि कोई नया समाचार आया है?"

"हुजूर तो व्यंग करती हैं; समाचार आने पर क्या नवीन के पास रुका रहता है? उसे तो हुजूर की दासी विमली तुरंत चरणकमलों में निवेदन कर देती है। हुजूर, नवीन और चाहे जो हो, नमकहराम नहीं है।"

"तब संध्या समय क्यों आया है?"

"यही, हुजूर लोगों के चरणों का दर्शन, गंगास्नान, भजनभाव, महापुरुषों के चरणों का दर्शन करने...।"

"महापुरुषों के चरणों का दर्शन! नवीन, आज तो बड़ी लम्बी भूमिका बाँधता है! क्या चाहता है, बोल तो सही।"

"हुजूर, श्रीचरणों के प्रसाद से यह नवीन गृहस्थ होते हुए भी संन्यासी है।"

हरनारायण इस बीच प्रकृतिस्थ हो चुके थे। अब उन्होंने कहा—"आज तो बड़ी लंबी रकम की माँग दिखाई देती है नवीन।"

नवीन ने दाँतों से जीभ काटते हुए कहा—"हरे राम! मालिक यह क्या कह रहे हैं? राधाकृष्ण राधाकृष्ण, गोविंद, गोपीनाथ!"

गृहणी बोलीं—"नवीन, मालिक कचहरी जायँगे। जो कुछ मन में हो, खोलकर कह डालो। देर होने से तो पूरी बात भी न हो सकेगी।"

गृहिणी की बात सुन नवीन कुछ देर सोच में पड़ा रहा; फिर बोला—"हुजूर, सरस्वती हजार हो, है तो स्त्री ही। मामला धीरे धीरे बढ़ गया है। विद्यालंकार महाशय जब किसी तरह काशी जाने को तैयार नहीं हैं तब मैं समझता हूँ अकेली सरस्वती पर भरोसा करना उचित नहीं।"

मालिक बोले—"ठीक कहते हो, नवीन। मामला धीरे धीरे करके बहुत बढ़ गया। तुम्हीं बताओ भला कौन जानता था कि इसी बीच फरु खसियर बादशाह बन जाना चाहेगा? मैं तो कहूँगा कि तुम स्वयं एक बार पटना जाओ।"

नवीन ने उत्तर दिया—"हुजूर की आज्ञा हो तो नवीन तलवार के नीचे अपना सिर रख दे, पटना जाना कौन बड़ी बात है।"

गृहिणी बोलीं—"देखो नवीन, विद्यालंकार को उस छोकड़े छोटे राय का विरोधी बनाए बिना मेरे मन को शांति नहीं मिलेगी।

"हुजूर ने जब आज्ञा दी है तब ऐसा ही होगा। नवीन ही पटना जायगा। हुजूर की आज्ञा होगी तो उस विद्यालंकार को काशीवास क्या वृंदावनवास करा देगा। लेकिन...।"

गृहिणी ने मुसकुराते हुए कहा—"क्या है नवीन?"

साष्टांग प्रणाम करके नवीन बोला—"हुजूर के चरणों की धूल ही मेरे लिये सर्वस्व है, लेकिन... ।"

मालिक ने पूछा—"खरचा वरचा कितना लगेगा, बोलो न? प्रिये, नवीन बड़ा भक्त है, भक्ति को छोड़कर उसके मन में और कुछ नहीं है।"

नवीन ने भी गद्‌गद कंठ से उत्तर दिया—"मालिक हुजूर, इसीलिये खरच बहुत बढ़ गया है।"

मालिक बोले—"देखो नवीन, विद्यालंकार को अगर किसी उपाय से असीम का विरोधी बना सकोगे तो तुम्हें खरच वरच के अलावा नगद एक सौ अशर्फी बखशीस दूँगा।"

बखशीस का नाम सुन नवीन हरनारायण के पैरों पर लेट गया और बोला—"हुजूर देवता हैं, मेरे लिये तो हुजूर भगवान हैं। जब हुजूर ने अपने श्रीमुख से ऐसा कह दिया तब समझ जाइए कि विद्यालंकार महाशय वृंदावन चले गए। लेकिन...।"

गृहस्वामी ने उसके मन की बात भाँप ली और बोले—"खरचे के लिये अभी यह दस अशर्फी ले जाओ।"

नवीन साष्टांग प्रणाम करते हुए बोला—"बहुत है हुजूर, बहुत है। लेकिन...।"

"और क्या नवीन?" हुजूर इस सरस्वती के लिये...।"

"अच्छा, अच्छा; बीस ले जाओ।" नवीन शय्या के पास ही दंडवत करता हुआ लेट गया।"

नाई के चले जाने पर गृहिणी ने पूछा—"तुम इस विद्यालंकार से इतना डरते क्यों हो?"

गृहस्वामी बोले—"हमारे घर का भेद जितना उन्हें मालूम है उतना और किसी को नहीं। मरते समय बाबू जी असीम और भूपेन को उन्हीं के हाथ सौंप गए थे। जान पड़ता है कुछ कागजपत्र भी उनके पास हैं क्योंकि असीम ने जब अपना हिस्सा मेरे नाम लिखा था तब मैंने कुल कागजों का मिलान किया था मगर वे ठीक मिले नहीं। मैं तो समझता था कि इस ब्राह्मण में कुछ बुद्धि भी होगी, लेकिन एक ही

बार कहने से वह जिस प्रकार मूर्खों की तरह गाँव छोड़कर चले गए उससे तो मुझे यही जान पड़ता है कि उनकी बुद्धि लुप्त हो गई है। अब किसी प्रकार असीम से उनका साथ छुड़ाना है।"

"तुमने जितनी बखशीस देना स्वीकार किया है उसके लालच से कहीं नवीन ब्रह्महत्या न कर बैठे ?"

कृशकाय हरनारायण ने उत्तर दिया—"क्या हानि है ?"

गृहिणी बोलीं—"रुपए के लिये ऐसा कोई काम नहीं जो तुम लोग न कर सको।"

तैंतालीसवाँ परिच्छेद

पुरानी पुस्तक

बहू ने पूछा—"कहो सरस्वती, कैसी हो ?"

"क्या बताऊँ बहू जी, हमारे लिये अच्छा बुरा दोनों बराबर है।"

बहू ने पुनः पूछा—"इतने दिन कहाँ रहीं, बहन ? हमलोगों ने तो समझा कि पेट की गड़बड़ी के कारण तुम वृंदावन चली गई।"

"कहाँ ऐसा भाग्य है बहू जी कि इतनी जल्दी वृंदावन प्राप्त हो ! उस दिन पेट में ऐसी कठिन पीड़ा उठी कि..."

"इतने दिन हुए, अब तो बंद हो गया होगा ?"

"इतने दिन कहाँ, अभी तो कुल दो ही दिन हुए।"

"मालूम होता है कोई नया वैष्णव मिल गया था, तभी एक सप्ताह तुम्हें दो दिन जान पड़ता है।"

"नहीं बहन, हमारी वह अवस्था अब कहाँ रह गई ?"

"प्रेम कहीं उमर देखता है वैष्णवी दीदी ? तो क्या पुराना वैष्णव ही लौट आया था ?"

"उसके मुँह में आग ! वह घाट का मुरदा घाट को गया, अब वह क्या लौटेगा ? चूल्हे में जाय वह और उसकी वह नई वैष्णवी ! मालिक क्या घर पर हैं बहू जी ?"

"नहीं, गंगा किनारे गए हैं।"

'कब लौटेंगे ?"

"यह तो नहीं कह सकती।"

"तो चलूँ बहू जी, थोड़ी देर बाद आऊँगी।"

"क्यों, मालिक से कोई काम है क्या ?"

"बहुत जरूरी काम है, बहू जी !"

"मुझे बता जाओ, मैं कह दूँगी।"

"आप उनसे कह दें तो बड़ा उपकार हो बहू जी। केवल दो रुपए का काम है, मैं दो दिन में वापस कर दूँगी।"

"इतनी सी बात के लिये बाबू जी की क्या आवश्यकता है ? तुम रुको, मैं रुपए लाती हूँ।"

"नहीं बहू जी, तुमसे लेने पर मालिक नाराज होंगे। वे न देंगे तो तुमसे ले जाऊँगी।"

"नाराज क्यों होंगे; यह तो मेरा रुपया है। मेरे पास जो रुपया है उसे बाबू जी नहीं जानते।"

"क्या जानूँ बहू जी; बाद में उन्होंने तुमपर गुस्सा किया तो अच्छा न होगा। मैं जाती हूँ, थोड़ी देर में फिर आऊँगी।"

सरस्वती चली गई। तुरंत ही विद्यालंकार ने घर में प्रवेश करते हुए पूछा—"चेहरा उदास क्यों है, बहू ?"

पैर धोने के लिये श्वसुर को जल देकर बहू ने कहा—"वैष्णवी फिर आई थी बाबू जी।"

"कौन, सरस्वती ?"

"जी, बाबू जी।"

"तो इसमें उदास होने की क्या बात है ?"

बहू ने किंचित् हँसते हुए कहा—"वह न जाने कैसी गोलमाल की बातें करती थी, बाबू जी।"

विद्यालंकार ने विस्मित होकर पूछा—"गोलमाल कैसा बेटी ?"

"पहले तो उसने कहा कि आपके साथ मुलाकात करने आई है। मैंने पूछा कि क्या काम है तो बोली कि आपसे दो रुपए उधार लेगी। लेकिन जब मैं रुपए देने लगी तो उसने लिया नहीं। कहने लगी कि आप सुनेंगे तो नाराज होंगे। समझ में नहीं आता कि मैं रुपए दे देती तो आप नाराज क्यों होते।"

हरिनारायण हँसने लगे। बोले—"यह जरा सी बात समझ नहीं सकीं, बेटी ? सरस्वती रुपए उधार लेने नहीं बल्कि खोज खबर लेने आई थी। उसे रुपए का क्या काम ? इसी से उसने तुमसे रुपया नहीं लिया।"

"कौन सी खोज खबर लेने आई थी, बाबू जी ?"

"यही कि हमलोग क्या कर रहे हैं, हमारे यहाँ क्या हो रहा है। यही पता लगाने तो वह पटना आई हुई है।"

"यह कैसी बात ! वैष्णवी बहन को क्या वृंदावन नहीं जाना है ?"

"मैं समझता हूँ नहीं। लेकिन तुमने यह क्यों पूछा, बेटा।"

"वैष्णवी बहन बीच बीच में एक न एक ऐसी बात कह बैठती है कि देह जल जाती है। जब तक उठकर जाती नहीं, तब तक शांति नहीं मिलती।"

विद्यालंकार पुनः हँसे, बोले—"तो तुम्हें भी यही संदेह हुआ बेटी। सरस्वती वैष्णवी सचमुच वृंदावन-यात्रा के लिये नहीं आई है; वह ईश्वरगंजवाली मालकिन की गुप्तचर बनी हम लोगों के पीछे पीछे फिर रही है। खूब सावधानी से रहना बेटी। इतने दिन अंधा था, कुछ

सुझाई नहीं देता था। व्यर्थ सब कुछ छोड़-छाड़कर चला आया; तुम लोगों को अकारण गृहविहीन बनाया।"

बहू की आँखें छलछला आईं जिसे देखकर विद्यालंकार ने कहा—"रोना मत बेटी; अगर ईश्वर का अस्तिव है, नारायण यदि सचमुच हैं, तो एक न एक दिन धर्म की जय अवश्य होगी। हम लोग जो कष्ट उठा रहे हैं वह पूर्व जन्म का फल है। चिंता मत करना बेटी। तुम्हारा घर द्वार, तुम्हारी गृहस्थी, तुम्हारी संपत्ति सब कुछ फिर तुम्हें वापस मिल जायगी।"

बहू ने आँचल से आँखें पोछीं और पैर छूकर श्वसुर को प्रणाम किया। वे बोले—"आज ही एक पाप का प्रायश्चित करूँगा, बेटी। पूजाघर में आसन बिछाकर पंचपात्र में गंगाजल रख दो।"

बहू चली गई। विद्यालंकार ने शयनगृह में जाकर बहुत सी पुस्तकें निकालीं और उन्हें लेकर पूजाघर की ओर चले। वहाँ आसन पर बैठकर विद्यालंकार महाशय ने एकाग्र मन से चंडीपाठ के पन्ने उलटना आरंभ किया। हरिनारायण नित्य कम से कम एक बार चंडीपाठ किया करते थे लेकिन आज एक बार भी चंडीपाठ का कोई शब्द उनके मुख से उच्चरित नहीं होता था। वे एकाग्र चित्त से एक के अनंतर दूसरा तालपत्र उलटते जाते थे। पुस्तक समाप्त हो जाने पर उन्होंने एक किनारे रख दिया और एक दूसरी पुस्तक के पन्ने उलटना आरंभ किया।

उसी समय द्वार पर से सरस्वती वैष्णवी ने हाँक लगाई—"जय श्रीराधेकृष्ण ! बहूरानी, किधर हो ?"

दुर्गा ने बाहर आकर सरस्वती से कहा—"बैठो वैष्णवी बहन, बाबू जी पूजा पर बैठे हैं और बड़ी बहू रसोईघर में है।"

सरस्वती बोली—"बहन आज थक गई हूँ; अब और कहीं भिक्षा माँगने नहीं जा पाऊँगी। यहीं थोड़ा प्रसाद लूँगी।"

"बैठो तो; बैठ जाओ। बाबू जी अभी आते हैं।"

सरस्वती ने कुएँ में से पानी खींचकर पैर धोए और वहीं एक किनारे छाया में बैठ गई। इसी समय बाहर से असीम ने पुकारा—"बड़े भैया, घर पर हो!"

उनका कंठस्वर सुन सरस्वती चौंकी किंतु तत्काल मन का भाव छिपा हँसती हुई बोली—"छोटे मालिक,, प्रणाम करती हूँ।"

उसे वहाँ उपस्थित देख असीम बोले—"कौन, सरस्वती बहन हो क्या? अभीतक वृंदावन नहीं गईं?"

"श्रीवृंदावन का दर्शन सबके भाग्य में कहाँ बदा होता है भैया! मदनमोहन कृपा करेंगे तभी न मेरी जैसी पापिन को बुलाएँगे।"

"क्या रुपए पैसे की कमी से नहीं जा पा रही हो?"

"रुपए पैसे का भी अभाव है और संग साथ का भी।"

"मैं दोनों दूर कर दूँगा। वृंदावन जाने में कितने रुपए लगेंगे, बहन?"

"लगभग एक सौ खरच होगा।"

असीम ने अपने कपड़ों में से एक थैली निकाली। उसे देख सरस्वती ने कहा—"संग साथ न होने से रुपए लेकर ही क्या करूँगी?"

असीम ने उत्तर दिया—"संग साथ का भी प्रबंध हो जायगा।"

"बिना जान पहचान के आदमी के साथ जाना चाहिए क्या छोटे मालिक!"

"इसमें क्या दोष है सरस्वती बहन? तुम तो वैष्णवी हो, कुछ घर के भीतर घूँघट काढ़े बैठी तो नहीं रहतीं? अपना एक विश्वस्त आदमी साथ कर दूँगा जो तुम्हें वृंदावन तक पहुँचा देगा।"

"वह किस जाति का है?"

"क्यों ? वह मुसलमान है। मगर पूर्व देश का रहनेवाला है और अच्छी तरह बँगला बोलना जानता है।"

"जय श्रीराधेकृष्ण ! भला यह आप क्या कहते हैं ? मुसलमान के साथ जाऊँगी ? और जाति चली जायगी सो ?"

वैष्णवी की बातों से असीम को बड़ा आश्चर्य हुआ।

इसी समय बड़ी बहू वहाँ आ खड़ी हुईं और आँख दबाकर उन्होंने असीम को इंगित किया। इंगित समझ न सकने के कारण वे कुछ पूछने ही जा रहे थे कि बड़ी बहू पूछ बैठीं—"छोटे मालिक, आपको बाबू जी बुला रहे हैं। जल्दी पूजाघर के पास चलो, मैं आसन लेकर अभी आई।"

फिर असीम अपनी बात नहीं पूछ सके। आँगन से वे पूजाघर के द्वार पर जा खड़े हुए। हरिनारायण पुस्तक के पन्ने उलट रहे थे; पैरों की आहट सुनकर उन्होंने सिर उठाया और असीम को देखकर बोले—"अच्छा हुआ जो तुम आ गए; न आते तो किसी को बुलाने भेजना पड़ता।"

उनकी बात शेष होने के पूर्व ही बड़ी बहू ने पूजा घर के द्वारपर आसन डाल दिया और श्वसुर से कहा—"वैष्णवी बहन आपसे मिलने आई है।"

हरिनारायण ने पूछा—"कौन, सरस्वती ?"

बहू बोली—"जी।"

हरिनारायण ने पुस्तक लपेटकर बहू से कहा—"अभी चलता हूँ, बेटी।"—और असीम से बोले—"मैं तुम्हारे खेमे तक चलूँगा, मेरे साथ आओ।"

आँगन में सरस्वती को देख हरिनारायण बोले—"क्यों सरस्वती, बहू से रुपए क्यों नहीं ले लिए ? मुझसे लिया तो और बहू से लिया तो, एक ही बात हुई। सुदर्शन के सिवा मेरा है ही कौन, बताओ ? बहू, सरस्वती को दो रुपए दे दो।"

इतना कहकर वे असीम के साथ बाहर चले गए।

बहू रुपए ले आई। सरस्वती ने उसके हाथ से रुपए को लगभग झपटकर ले लिया और भागी। बड़ी बहू ने पुकारा—"अरी ओ वैष्णवी बहन ! जाती कहाँ हो ? एक भजन सुनाती जाओ न !"

दूर से सरस्वती ने कहा—"कल आऊँगी मालकिन, आज फुरसत नहीं है।"

चौवालीसवाँ परिच्छेद

दानपत्र

दो घंटे तक छावनी के चारों ओर चक्कर लगाकर सरस्वती हताश हो गई। छावनी के पास इमली के दो बहुत बड़े वृक्ष थे जिनके नीचे एक पुराना कुआँ था। सरस्वती उन्हीं वृक्षों की छाया में कुएँ के पास बैठकर सुस्ताने लगी। इन दो घंटों में हरिनारायण या असीम कोई भी खेमे के बाहर नहीं निकला। ये लोग जिस खेमे के भीतर गए थे सरस्वती की दृष्टि बराबर उसके दरवाजे पर लगी हुई थी। छावनी के चारों ओर ढूँढने पर उसे कोई ऐसा आदमी नहीं दिखाई पड़ा जिससे वह कुछ पूछताछ करती। वह डरती थी कि पूछताछ करने पर कहीं पकड़ी न जाऊँ।

छावनी में आते ही हरिनारायण ने भूपेंद्र को बुलवाया। उसे खेमे के बाहर पहरे पर नियुक्त कर असीम को साथ ले वे खेमे के भीतर चले गए। उनके बैठ जानेपर असीम ने पूछा—"ऐसा कौन सा आवश्यक कार्य आ पड़ा?"

हरिनारायण ने कहा—"देखो असीम, मैं मोहांध होकर एक महापातक कर आया हूँ जिसका प्रायश्चित्त तुम्हारी सहायता के बिना संभव नहीं है। तुम्हें अभी बादशाह के पास तो नहीं जाना है?"

"अभी तुरंत तो नहीं, पर आज ही जाना है।"

"कब ?"

"तीसरे पहर।"

"पर्याप्त समय है। मुझे बहुत थोड़ा कहना है।"

"घर पर ही कह देते तो अच्छा होता; इतनी दूर कष्ट करके आने की क्या आवश्यकता थी ?"

"उस समय मेरे यहाँ एक जासूस बैठा हुआ था इसीलिये भूपेन को बाहर पहरे पर बैठाना पड़ा है। खैर, इसके बारे में बाद में बातें होंगी; पहले अपनी बात कहता हूँ। यह बताओ कि रूकनपुर परगने में तुम्हारा और भूपेन का जो हिस्सा है उसे क्या हरनारायण के नाम लिख दिया है ?"

असीम ने आश्चर्यान्वित होकर पूछा—"इतने दिनों बाद यह बात क्यों उठा रहे हैं ?"

"क्योंकि महापाप किया है। सारी बातें तुम्हें खोलकर बताने के लिये ही आज यहाँ आया हूँ। मैंने जो पूछा है उसका उत्तर दो।"

"रूकनपुर परगने का हिस्सा प्रायः पाँच छः वर्ष पूर्व भाई साहब के नाम लिख दिया था। वे कहते थे···।"

"उन्होंने तुमसे जो कुछ कहा था सो सब मुझे मालूम है। तुम जानते हो कि तुम्हें अथवा भूपेन को पैत्रिक संपत्ति बेचने अथवा दान करने का अधिकार नहीं था ?"

"ऐसा तो कभी नहीं सुना।"

"सुना नहीं इसीलिये तो बता रहा हूँ। देखो असीम, तुम्हारी सहायता के बिना मेरे महापातक का प्रायश्चित्त असंभव है।"

"कौन सा महापातक ?"

"विश्वासघात ! तुम्हारे पिता मेरा जितना विश्वास करते थे उतना विश्वास आदमी आदमी का नहीं करता। लेकिन असीम, मैं कृतघ्न हूँ, नराधम हूँ ! उनके अशेष अनुग्रह को मैं भूल गया। विश्वस्त बंधु और सेवक समझकर उन्होंने जो कार्यभार मुझे सौंपा था उसे मोह में पड़कर मैंने विस्मृत कर दिया। असीम, तुम्हारे पिता के समान बुद्धिमान व्यक्ति हिंदुस्थान में और कोई था या नहीं, इसमें संदेह है। अपने ज्येष्ठ पुत्र को वे पहचानते थे इसीलिये तुम लोगों की स्वत्वरक्षा के लिये यथायोग्य व्यवस्था कर गए थे। असीम, अज्ञानवश बंधुत्व की छलना से मुग्ध होकर मैं उनका आदेश और अपना कर्त्तव्य भूल गया। इस महापातक का प्रायश्चित्त न करने से मुझे नरक में जाना पड़ेगा।"

"आपकी बात मैं अब भी नहीं समझ सका।"

"समझोगे कैसे, अभी तो पूरी बात तुमने सुनी ही नहीं। अंत समय में तुम्हारे पिता ने चल और अचल संपत्ति का विभाजन करके एक दानपत्र लिखा था। उसके अनुसार तुम्हें या भूपेंद्र को संपत्ति का दान अथवा विक्रय करने का अधिकार नहीं है। सुरक्षा के विचार से वह दानपत्र वे मुझे सौंप गए हैं। हरनारायण की मीठी मीठी बातों में आकर, उनकी कपटपूर्ण आत्मीयता से मुग्ध होकर मैं उस दानपत्र का अस्तित्व तक भूल गया था। देखो असीम, रुकनपुर परगने में तुम्हारा और भूपेंद्र का जो हिस्सा था वह अब भी ज्यों का त्यों वर्तमान है; हरनारायण ने तुम लोगों से जा दानपत्र लिखा लिया है, रद्दी कागज के समान वह बिलकुल मूल्यहीन है।"

इतना कहकर हरिनारायण पुस्तक खोलकर बैठ गए और तालपत्रों के ढेर में से एक टुकड़ा कागज निकाला। असीम ने पूछा—"यह क्या है ?"

हरिनारायण बोले—"वही दानपत्र।"

थोड़ा हँसकर असीम ने कहा—"अब इससे क्या लाभ होगा ?"

हरिनारायण ने कहा—"लाभ हानि तो भगवान के ऊपर निर्भर है ! प्रयत्न करने में क्या दोष है ? देखो असीम, यह शरीर तुम्हारे पिता के अन्न से प्रतिपालित हुआ है । मोहमुग्ध होकर जो महापातक किया है उसका प्रायश्चित्त अभी संभव है, इसलिये चेष्टा करने में कौन सी हानि है ?"

"स्वयं सूबेदार भाई साहब की मुट्ठी में हैं । उन्हें जनबल और धनबल की कोई कमी नहीं । हम लोग विवाद करके या फरियाद करके क्या उनसे पार पाएँगे ?"

"पाएँगे या नहीं पाएँगे इसे कौन जानता है, लेकिन चेष्टा करने में कौन सी हानि है ? सूबेदार तुम्हारे भाई की मुट्ठी में हो सकता है लेकिन उसका मुनीम तो तुम्हारी मुट्ठी में है । स्वयं बादशाह अगर तुम्हारे पक्ष में हो जायँ तो न्याय होना निश्चित है ।"

"बादशाह मेरा पक्ष लेंगे या नहीं, इसे कैसे कह सकता हूँ ?"

"अवश्य लेंगे । तुमने उनसे कभी अनुरोध किया है ?"

"आपसे आज साक्षात् होने के पहले मेरे मन में कभी यह बात उठी ही नहीं कि उनसे अनुरोध करना होगा ।"

"तो फिर आज ही पूछ देखो ।"

"देखूँगा, मगर पंडित जी, बादशाही की अवस्था तो आप देखते ही हैं—एक बादशाह दिल्ली के तख्त पर हैं, दूसरे यहाँ पटने में अफ-जल खाँ के बगीचे में पड़े हुए हैं । आप क्या यह सोचते हैं कि सिंहासन की आज्ञा न मानकर मुर्शिदकुली खाँ इन भिखारी बादशाह की आज्ञा से मेरी पैत्रिक संपत्ति वापस दिला देगा ?"

"वे क्या करेंगे इसके संबंध में कुछ कहा नहीं जा सकता, फिर भी प्रयत्न करने में क्या हानि है ?"

"एक बात और है। जिस दिन शाहजादा अजीमुश्शान की मृत्यु का समाचार आया था उस दिन मैंने ही फर्रुखसियर से सिंहासन के लिये चेष्टा करने का अनुरोध किया था। उस समय उनके पास धनबल और जनबल दोनों की कमी थी किंतु आज जनबल होने पर भी मैं अपनी स्वार्थसिद्धि के लिये उनको छोड़कर जा न सकूँगा।"

"नहीं, तुम्हें नए बादशाह का साथ नहीं छोड़ना होगा। जो कुछ करना होगा, मैं ही करूँगा, किंतु मैं जो कुछ भी करूँगा उसमें तुम आपत्ति नहीं करने पाओगे। शठ के साथ शठता करना पाप नहीं है।"

"आप जो कुछ करेंगे उसपर मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी। जब इस दानपत्र के अनुसार मुझे पैत्रिक संपत्ति का दान अथवा विक्रय करने का अधिकार ही नहीं है तब कहूँगा ही क्या ?"

"तुम्हारे साथ सुदर्शन का रहना क्या आवश्यक है ?"

"मुझे आवश्यकता न हो तो भी बादशाह उन्हें जाने देंगे, ऐसा प्रतीत नहीं होता।"

"स्त्रियों के कारण बड़ी झंझट होगी। हरनारायण को जब छोड़ कर चला आया था तब आशा की थी कि दो एक दिन बाद वह स्वयं आकर मुझे बुला ले जायगा क्योंकि मनुष्य सहज में इतने दिनों का प्रेम और बंधुत्व भूल नहीं पाता। वह मेरी भूल थी। ऐसा कोई कार्य नहीं जिसे मनुष्य कामिनी और कांचन के कारण न कर डाले। किंतु स्त्रियों के कारण बड़ी झंझट दिखाई दे रही है। पुरुषों में केवल हम दो आदमी हैं। एक आदमी यदि बादशाह के साथ दिल्ली जाता है और दूसरा यदि मुर्शिदाबाद जाता है तो स्त्रियाँ कहाँ रहेंगी ?"

"रहेंगी कहाँ ? आप साथ लेते जाइए।"

"मैं ले जाऊँ तो सुदर्शन को कष्ट जो होगा।"

"कैसा कष्ट। वे तो युद्धयात्रा पर जा रहे हैं, स्त्रियों को साथ लेकर

यह यात्रा संभव नहीं है। आप घर जा रहे हैं इसलिये आपके साथ ही उनका जाना उचित है।"

परिवार की स्त्रियों के संबंध में विचार विमर्श करते समय हरिनारायण विद्यालंकार की आकृति पर जो खिन्नता दिखाई पड़ी थी वह असीम की बातों से दूर हो गई। वे बोले—"तो यही ठीक रहा; लेकिन तुम मुझसे परामर्श किए बिना संपत्ति के संबंध में किसी से कोई चर्चा मत करना और न किसी कागजपत्र पर हस्ताक्षर ही करना।"

"आप जैसी आज्ञा देंगे वैसा ही होगा। आप क्या तुरंत मुर्शिदाबाद जायँगे ?"

"अभी दो चार दिन नहीं।"

"हमलोगों को तो शीघ्र ही दिल्ली के लिये कूच करना होगा।"

"तो मैं अब चलूँ ? तुम दोनों भाई बहुत सावधानी से रहना। किसी से कोई बात प्रकट मत करना। जान रखो, हरनारायण का जासूस तुम्हारे पीछे पीछे लगा हुआ है।"

"जासूस है कौन, पंडित जी ?"

"एक तो सरस्वती वैष्णवी है, पर उसके साथ और कितने लोग हैं, यह नहीं कह सकता।"

हरिनारायण विद्यालंकार वापस चले। उनका पीछा करती हुई सरस्वती वैष्णवी भी चली।

पैंतालीसवाँ परिच्छेद

कालीप्रसाद

"उतराई लाओ महाराज।"

"पैसा तो नहीं हैं बच्चा।"

"यह बहानेबाजी नहीं चलेगी पंडित जी! सोचा होगा, पार उतार कर हीरा माँझी पैर छूकर हाथ जोड़कर बिदा करेगा! इसकी आशा छोड़ दो। भला चाहते हो तो सीधे से पैसा निकालकर नाव से उतरो।"

"तुमने तो बड़ी झंझट लगाई बेटा! चलते समय फुटकर पैसे भुनाना भूल गया था।"

"तो क्या हुआ? रुपया निकालो, मैं भुना दूँगा।"

"रुपया नहीं भाई, मेरे पास मोहर है।"

"वाह महाराज, हीरा माँझी मोहरों से डरनेवाला नहीं है; निकालो भी।"

ब्राह्मण ने टेंट में से सुँघनी की डिबिया निकाली और उसमें से सुँघनी में लिपटा हुआ सोने का एक सिक्का निकालकर माँझी को दे दिया। माँझी ने उसे जल में धोकर साफ किया और एक दूसरे यात्री से बोला—"जरा देखना भाई, असली है न?"

दूसरा यात्री बड़ा विलक्षण था। उसने चादर की खूँट में बँधी अपनी थैली खोली और उसमें से एक कसौटी, एक शीशी तेल और सोने के दो टुकड़े निकाले। यह सब सामग्री देख ब्राह्मण ने पूछा—

"तुम क्या सोनार हो?"

वह यात्री बोला—"नहीं महाराज, मैं नाई हूँ।"

"क्या नाम है?"

"नवीनदास।"

"कहाँ के रहनेवाले हो?"

"पहले रुकनपुर में रहता था, अब डाहापाड़ा में रहता हूँ।"

"कौन डाहापाड़ा?"

"वही जो शहर के उस पार पश्चिम ओर है।"

"ढाका के पश्चिम ओर तो कोई डाहापड़ा नहीं है!"

"ढाका नहीं महाराज, शहर का मतलब क्या आप ढाका ही समझते हैं? शहरों में शहर तो मुर्शिदाबाद है।"

उसकी बातें सुन ब्राह्मण हँस पड़ा। नवीन ने मोहर की परीक्षा कर संतोषपूर्वक सिर हिलाया और उसे माँझी को दे दिया। माँझी ने बारह रुपए और फुटकर पैसे निकालकर ब्राह्मण को वापस कर दिया। नाव किनारे लगी। यात्रीगण उतरे और उन्हीं के साथ वह ब्राह्मण भी उतरा। नवीनदास ने ब्राह्मण का साथ पकड़ा।

कुछ देर चलते चलते ब्राह्मण ने मुड़कर देखा कि नवीनदास पीछे लगा हुआ है। संध्या हो चुकी थी। वृक्षों के नीचे अंधकार घना हो चला था। थोड़ी दूर आगे जाकर ब्राह्मण चुपचाप खड़ा हो गया। उस स्थान पर मार्ग कुछ अधिक टेढ़ा मेढ़ा था इसलिये नवीन उसे देख नहीं पाया। वह क्रमशः उस वृक्ष के पास पहुँचा जहाँ ब्राह्मण दम साधे खड़ा था किंतु रुका नहीं, धीरे धीरे आगे बढ़ गया।

अँधेरा बढ़ता जा रहा था और उसी के साथ वन मार्ग की क्षीण रेखा क्षीणतर होती जा रही थी। कुछ दूर और आगे जाने पर नवीन को रुक जाना पड़ा। उसने देखा कि सामने रास्ते में एक बहुत भारी बाँस पड़ा हुआ है जिसे हटाना उसके वश के बाहर है। एक तो अँधेरी रात, दूसरे जनशून्य वन, किसी ओर बस्ती का कोई चिह्न नहीं था। इधर उधर देखने पर ब्राह्मण भी दिखाई नहीं पड़ा। नवीन बड़ी विषम परिस्थिति में पड़ गया। सोच-विचारकर उसने गंगा किनारे लौट चलना स्थिर किया। दो ही चार पग वह पीछे लौटा होगा कि सामने एक बृहदाकार नरकंकाल को खड़ा देख मूर्छित होकर गिर पड़ा।

उसी के साथ वह कंकाल भी गिर गया। तुरंत ही वृक्ष पर से एक मनुष्य-मूर्ति उतरी और कंकाल को उठा ले गई। थोड़ी देर बाद वह पुनः लौट आई तथा नवीन के हाथ-पैरों को रस्सी से कसकर बाँध दिया और अत्यंत सहज भाव से उसे अपने कंधे पर लाद ले चली। चलते चलते इस मनुष्यमूर्ति का साक्षात् हमारे पूर्वपरिचित ब्राह्मण से हुआ। इसने ब्राह्मण को देखते ही नवीनदास को कंधे से उतारकर भूमि पर रख दिया और प्रणाम करके पूछा—"गुरुदेव, क्या यह आपके साथ आया था?"

ब्राह्मण ने हँसकर कहा—"मैं तो नहीं लिवा लाया, परंतु मेरे ही कारण इसे इस जंगल में आना पड़ा।"

"क्यों? क्या इसे भी दीक्षा मिली है?"

"नहीं नहीं। इसका नाम नवीनदास है, जाति का नाई है। मैं उतराई के लिये फुटकर पैसे ले जाना भूल गया था इसलिये एक मोहर निकालनी पड़ी। उस मोहर को देखकर ही नवीनचंद्र को मेरे पीछे पीछे इस जगल में आना पड़ा।"

"जगदंबा की जैसी इच्छा, प्रभो! जान पड़ता है, माँ की तृष्णा अब असह्य हो गई है।"

"क्यों कालीप्रसाद, क्या इतने पशुओं से माँ की तृप्ति नहीं हुई?"

"गुरुदेव, आप ऐसी बात कहते हैं! आश्चर्य है!"

"आश्चर्य नहीं कालीप्रसाद, मैं कभी भी महाबलि का पक्षपाती नहीं रहा।"

"ऐसा न करें, प्रभो! अमावस्या की इस महानिशा में माँ महामाया की महातृप्ति बिना महाबलि के नहीं होगी।"

"तो इसे बलि चढ़ाओगे?

"चार महीने से कोई हाथ नहीं आया प्रभो; अब इसकी बलि न दूँ तो क्या करूँ?"

इस समय तक नवीन की चेतना लौट चुकी थी। किंतु गुरु शिष्य का वार्तालाप सुनकर उसका रक्त जमा जा रहा था। वह बँधा बँधाया किसी प्रकार लुढ़कता पुढ़कता ब्राह्मण के पास तक पहुँच गया और उनके दोनों पैर पकड़ रो उठा। परंतु उसका रोना तत्काल बंद हो गया क्योंकि कालीप्रसाद ने उसकी कनपटी पर ऐसा करारा तमाचा लगाया कि वह पुनः मूर्छित हो गया।

तब गुरु ने शिष्य से कहा—"देखो कालीप्रसाद, अभी अमावस्या में देर है इसलिये तुम्हें इसको कई दिनों तक रोक रखना होगा।"

शिष्य बोला—"प्रभो, आज्ञा हो तो शुक्ल पक्ष में ही इसकी सद्गति हो जाय।"

"इसकी आवश्यकता नहीं। तुम इसे छोड़ दो।"

कालीप्रसाद अत्यंत विस्मित हुआ; बोला—"यह आप कहते क्या हैं? ऐसा करने से भला महामाया रक्षा करेंगी? चार महीने से बलि न मिलने के कारण उनका कंठ सूख गया है। इसीलिये तो उन्होंने बलि को स्वयं चुन लिया है।"

"कालीप्रसाद !"

अत्यंत विनीत भाव से कालीप्रसाद बोला—"आज्ञा ?"

"जानते हो, मैं कौन हूँ ?"

बेत खाए हुए कुत्ते की तरह सिर झुकाकर कालीप्रसाद ने कहा—"जानता हूँ प्रभो !"

"इसे महामाया के मंदिर में ले जाकर वज्रगृह में रख आओ।"

नवीन को जब दुबारा होश हुआ तो उसे समझ नहीं पड़ा कि मैं कहाँ आ गया। जहाँ वह पड़ा हुआ था उसके पास ही एक प्राचीन मंदिर था जिसके भीतर अग्नि जल रही थी। उसके क्षीण प्रकाश में उसने देखा कि वह एक छोटी सी कोठरी के भीतर है। दृष्टि घुमाकर चारों ओर देखने के साथ वह पुनः मूर्छित हो गया। उसे दिखाई पड़ा कि कोठरी के दो दरवाजों पर हाथ में त्रिशूल लिए दो बृहदाकार नरकंकाल खड़े हैं और तीसरे दरवाजे पर एक महा विकराल विषधर सर्प उसे काट खाने के लिये अपना फन फैलाए झूम रहा है।

शीतल करस्पर्श से उसकी संज्ञा पुनः लौट आई। आँखें खोलने पर उसने देखा कि वे ही ब्राह्मण सिरहाने बैठे हैं और शीतल जल से उसका कंठसिंचन कर रहे हैं। दोनों नरकंकालों तथा सर्प का कोई पता नहीं है।

ब्राह्मण महोदय ने जिज्ञासा की—"क्यों बेटा, कैसा जी है ?"

नवीन ने कोई उत्तर नही दिया; उसकी आँखों से दो बूँद आँसू गिर पड़े। उसकी यह अवस्था देख ब्राह्मण का हृदय द्रवित हो गया। उसके सिरपर हाथ फेरते हुए वे बोले—"अब डर की कोई बात नहीं नवीनदास; उठो, चलें।"

नवीन उठा और चारों ओर दृष्टि दौड़ाने पर जब उसने त्रिशूल-धारी कंकाल अथवा विषधर सर्प को कहीं नहीं देखा तब धीरे धीरे घर

के बाहर आया। बाहर आकर नवीन ने देखा कि ईंट के बने एक अत्यंत पुराने मंदिर के सामने थोड़ी स्वच्छ भूमि है। मंदिर में एक बड़ा सा कुंड है जिसमें अग्नि जल रही है और कालीप्रसाद अपनी पूजा में दत्तचित्त है। उसके पीछे एक शव, दो तीन सर्प और कई स्यार बैठे हैं। मंदिर के आँगन में तीन ओर तीन पुराने मकान थे जिनमें से एक में वह बँधा हुआ पड़ा था। ब्राह्मण ने मंदिर का आँगन पार कर दूसरी ओर वाले घर के भीतर प्रवेश किया। नवीनदास भी पीछे पीछे भीतर गया। शृगाल और सर्पों ने उनकी ओर देखा तक नहीं।

कोठरी के भीतर जाकर ब्राह्मण ने पूछा—"कुछ भोजन करोगे?" नापित ने सिर हिलाकर अस्वीकृति सूचित की।

"प्यास लगी है?"

नवीनदास बोला—"हाँ।"

ब्राह्मण के दिए हुए मिट्टी के पात्र से पानी पीकर नवीन एक कोने में बैठ गया। उन्होंने कहा—"देखो भाई, तुम शायद अब अच्छी तरह समझ गए होगे कि मेरे सिवा यहाँ तुम्हारा और कोई रक्षक नहीं है?"

उत्तर में नवीनदास ने साष्टांग प्रणाम करते हुए उनकी पदधूलि को माथे चढ़ाया। ब्राह्मण ने पूछा—"अच्छा यह तो बताओ, तुमने मेरा पीछा क्यों किया था।"

नवीन बोला—"चोर डाकुओं से आपकी रक्षा के लिये।"

"ठीक। तो तुम मेरे साथ साथ क्यों नहीं रहे?"

"फिर आप संदेह करने लगते। प्रभो! मैंने किसी बुरे उद्देश्य से आपका पीछा नहीं किया था। आपके आशीर्वाद से मुझे मोहरों की कोई कमी नहीं है।"

इतना कहने के साथ ही नवीन ने अपनी चादर की खूँट में से दस मोहरें खोलकर ब्राह्मण को दिखा दीं।

संतुष्ट होकर ब्राह्मण महोदय बोले—"ठीक है। प्रातःकाल तुम्हें शाही सड़क पर पहुँचा दूँगा।"

"नवीन व्याकुल होकर बोला—"प्रातःकाल यदि वे काले पंडित जी न छोड़ें, तो ?"

"इसकी चिंता मत करो। मैं जब तक रहूँगा, तब तक किसी को तुम्हें स्पर्श तक करने का साहस नहीं होगा। अभी लगभग एक प्रहर रात्रि शेष है, सोना चाहो तो सो रहो।"

सोने का नाम सुनते ही नवीन को रोमांच हो आया। वह बोला—"नींद कहाँ आएगी प्रभो! यहाँ तो पैर फैलाते ही अंतरात्मा काँप उठती है। जान पड़ता है कि या तो साँप ने डसा या किसी प्रेतात्मा ने धर दबोचा।"

"तो फिर जागते रहो, डरने की कोई बात नहीं।"

छियालीसवाँ परिच्छेद

जल में आग

पूजन समाप्त होने पर कालीप्रसाद कोठरी के द्वार पर आकर बोला—"महाप्रसाद है गुरुदेव !"

ब्राह्मण बोले—"आज तो मेरा व्रत है बेटा ! तुम प्रसाद पाकर विश्राम करो।"

शिष्य चला गया। ब्राह्मण ने एक बड़े से कुंडाकार ताम्रपात्र में जल भरकर कोठरी के बीच में रख दिया और दीपक बुझा दिया। नवीन भयभीत होकर ब्राह्मण देवता की ओर खिसक आया। वे स्थिर निश्चल बैठे रहे। थोड़ी देर बाद नवीन को ऐसा जान पड़ा जैसे ताम्रपात्र के जल में चंद्रमा का आलोक पड़ रहा हो किंतु द्वार तथा झरोखों की ओर देखने पर कहीं से चाँदनी आती हुई नहीं दिखाई पड़ी। इस व्यापार ने उसे और भी भयभीत कर दिया। अत्यंत भय-भीत होने पर भी अभी वह संज्ञाशून्य नहीं हुआ था।

देखते देखते उस ताम्रकुंड में एक अग्निशिखा नाचने लगी। प्राणभय से कातर होकर नवीन ने पुकारा—"प्रभो ! पंडित जी !"

किंतु उसे कुछ उत्तर नहीं मिला। भयभीत नवीनदास तब हाथ फैलाकर टटोलते हुए कोठरी में चारों ओर घूमने लगा किंतु उसे कोई

नहीं मिला। उसका भय अपनी चरम सीमा तक पहुँच चुका था। उस अर्द्धमृत अवस्था में उसने कोठरी से बाहर निकल भागने की चेष्टा की किंतु प्रत्येक द्वार पर एक एक सर्प को खड़ा देख पीछे हट गया। ताम्रकुंड के पूरे जल में आग लग चुकी थी और वह भभक भभक कर जल रहा था। क्रमशः सारी कोठरी धुएँ से भर गई। नवीन-दास एक कोने में बैठा काँप रहा था और काँपते-काँपते बेहोश होकर गिर पड़ा।

अंधेरे में से ब्राह्मण देवता ने जिज्ञासा की—"नवीन, क्या तुम जाग रहे हो?"

उत्तर मिला—"नहीं।"

पुनः प्रश्न हुआ—"तो बोल कैसे रहे हो?"

"आपकी आज्ञा से।"

"बहुत ठीक। ताम्रकुंड की ओर देखो।"

"देख रहा हूँ।"

"क्या दिखाई देता है?"

"पानी जल रहा है।"

"और क्या है?"

"धुआँ है। धुएँ के बीच में एक व्यक्ति है। वह स्त्री है, थोड़ी उमर की है; अधिक सुंदर नहीं है; वेश उसका संन्यासिनी की तरह है। किसी संपन्न गृहस्थ के आँगन में खड़ी है। कुछ कह रही है जो समझ में नहीं आता। सुनाई पड़ा...वह कहती है कि अगर मैं सती होऊँगी तो मेरे मनोबल से मेरे स्वामी पुनः लौट आएँगे, मुझे फिर ग्रहण करेंगे, तुम सब देखोगी, देखोगी, देखोगी। स्त्रियों का एक दल उसकी हँसी उड़ा रहा है।"

अंधकार में से ब्राह्मण की आवाज सुनाई पड़ी—"अग्निदेव,

वर्तमान को छोड़कर अतीत में प्रवेश करें।...नवीन, क्या देख रहे हो ?"

"रात बीत गई है। उस घर के चारों ओर बहुत से कुत्ते कोलाहल कर रहे हैं। आँगन में केले के पत्ते बिखरे हुए हैं, जान पड़ता है रात में बहुत बड़ा भोज हुआ था। वर और वधू आँगन में आ रहे हैं। उनके साथ और कोई नहीं है। घर के लोग सो रहे हैं। वर ने वधू को न जाने क्या कहा कि वह रो रही है। उसे लात मारकर वह चला गया। लेकिन वर का दुपट्टा वधू की ओढ़नी के साथ बँधा हुआ है। वधू मूर्छित होकर गिर पड़ी है। प्रातःकाल हो गया है। बहुत से स्त्री-पुरुष मूर्छित वधू को चारों ओर से घेर कर खड़े हैं। कोई उसे गाली दे रहा है, कोई दुःख प्रकट कर रहा है और कोई उसके मुख पर जल का छींटा दे रहा है। वधू उठ रही है। उसे किसी की सांत्वना अथवा तिरस्कार की जैसे कोई चिंता नहीं है। पति के दुपट्टे को छाती से लगाती हुई वह कह रही है, मैं सती हूँ, मेरे सतीत्व के बल से पतिदेव अवश्य लौटेंगे और मुझे स्वीकार करेंगे।"

अंधकार में से पुनः आग्रह हुआ—"और पीछे जाओ।"

नवीन कहने लगा—"एक बहुत बड़ी नदी के किनारे एक विशाल प्रासाद है। द्वार पर दो हाथी खड़े हैं! आठ गुलाम अपने कंधों पर चाँदी का तामजाम लिए आ रहे हैं। प्रासाद के भीतर से दो गुलामों ने एक बड़ा सा गलीचा लाकर बिछा दिया है। गलीचे पर तामजाम रख दिया गया है। कहीं से आकर एक संन्यासी गलीचे पर खड़े हो गए। गुलामों ने अपमान करके उन्हें हटा दिया। उन्होंने तामजाम में बैठे व्यक्ति से कुछ कहा किंतु उसने कोई उत्तर नहीं दिया। संन्यासी कह रहे हैं—"तेरा घमंड चूर चूर हो जायगा; यह अतुल ऐश्वर्य और वैभव बहुत शीघ्र भस्म हो जायगा, क्षण मात्र भी नहीं बचेगा। तू रास्ते-रास्ते द्वार-द्वार भीख माँगता फिरेगा, घर छोड़ श्मशान में आश्रय लेगा

तब तेरे पापों का प्रायश्चित्त होगा। जिसके सौंदर्य पर मुग्ध होकर तू गुरुजनों और देवताओं तक को भूल गया है वह विषैली सर्पिणी तुझको ही डसेगी। उस विष की ज्वाला से दग्ध होने पर तू ऐश्वर्य, पद-मर्य्यादा सब कुछ गवाँकर नगर नगर, गाँव गाँव मारा मारा फिरेगा।"

नवीन चुप हो गया। कोठरी में से किसी ने कहा—"अग्निदेव स्थिर हों—भविष्य में प्रवेश करें।"

नवीन पुनः कहने लगा—"नदी का कोई दूसरा तट है, सामने प्रकांड अट्टालिका है जहाँ हजारों सिपाही नंगी तलवारें लिए पहरा दे रहे हैं। इस अट्टालिका को मैं पहचानता हूँ, यह मुर्शिदाबाद के सूबेदार जाफर अली खाँ की ड्योढ़ी है। देखने में वे आजकल के ब्राह्मणों जैसे लगते हैं। अर्जबेग स्वयं बाहर आकर उन्हें आदर सहित लिवा ले गए।"

अंधकार में से पुनः शब्द हुआ—"और आगे जाओ।"

नवीन ने पुनः कहना आरंभ किया—"गंगा जी में एक बड़ी सी नाव तीर की तरह तेजी से जा रही है। देखते देखते वह पद्मा के मुहाने पर पहुँच गई। उसमें से कूदकर तीन आदमी किनारे उतरे और गावँ की ओर जा रहे हैं। रास्ते में एक युवती बैठी हुई है। वह पगली जान पड़ती है क्योंकि उसके शरीर पर चौड़े लाल किनारे की साड़ी है, माँग सिंदूर से भरी हुई है और कंधों पर जीर्ण शीर्ण ओढ़नी से बँधा एक दुपट्टा लटक रहा है जिसके दोनों छोर वह कसकर छाती से दबाए है। नौका के आरोही को देखकर पगली उठ खड़ी हुई और उसने भी आगे बढ़कर पगली का हाथ अपने हाथों में ले लिया है। पगली बिलकुल प्रकाश्य रूप में निस्संकोच उसका हाथ पकड़े बीच गावँ से उसे लिवा ले जा रही है। गावँ के कुछ लोग भी उनके साथ चल रहे हैं। स्त्रियाँ और पुरुष सभी एक स्वर से कह रहे हैं कि अंत

में पगली ने अपने पिता के मुहँ में कालिक पोत ही दी। सुन सुनकर पगली हँस रही है। लजाकर अपनी रूक्ष जटाओं पर उसने धीरे से आँचल खींच लिया। सब लोग एक पुराने मकान के भीतर जा रहे हैं। एक वृद्ध ब्राह्मण आँगन में उतर आए। नौकारोही तथा पगली उन्हें प्रणाम कर रही है। यह आँगन मेरा पहचाना हुआ है। यहीं पर विवाह की रात्रि में वर वधू को लात मारकर छोड़ गया था।"

अँधेरे में से शब्द हुआ—"ठहरो! अग्निदेव प्रत्यावर्त्तित हों। यह व्यक्ति कहाँ जायगा?"

नवीन कहने लगा—"एक बड़ी सी नदी के तट पर एक वृद्धा वैष्णवी बैठी हैं। मैं इसे पहचानता हूँ। यह डाहापाड़ा की सरस्वती वैष्णवी है। मेरे ही कहने पर कानूनगो हरनारायण राय ने इसे जासूसी करने के लिये पटना भेजा था। ओह, पटना कितना बड़ा शहर है! यह शहर मैंने कभी नहीं देखा। सरस्वती के पास एक अत्यंत रूपवती स्त्री बैठी है। उसका सौंदर्य गेरुए वस्त्रों में से भी फूटा पड़ रहा है। एक नाव आकर किनारे लगी है। यह नाव व्यापारियों की प्रतीत होती है क्योंकि बहुत से लोग नाना प्रकार की सामग्री लेकर उतर रहे हैं। उन्हीं में मैं भी हूँ। सरस्वती मुझको देखकर मेरी ओर चली आ रही है। पर मैं उससे बात क्या करूँ, उस स्त्री का सौंदर्य देखकर मेरे तो होश ठिकाने नहीं रहे। उनके साथ मैं भी नगर में जा रहा हूँ। बड़ा भारी चौक है, असंख्य दूकानें हैं। एक बनिए की दूकान के सामने एक बंगवासी ब्राह्मण बैठे हैं। इन्हें मैं पहचानता हूँ। ये डाहापाड़ा के हरिनारायण विद्यालंकार हैं। इस आदमी को कहीं दूर भगा देने पर मुझे इक्कीस मोहरें बखशीस में मिलेंगी और यदि बिलकुल समाप्त कर सका तो······"

कोठरी में शब्द हुआ—"अग्निदेव यथास्थान प्रत्यावर्त्तित हों।"

कोठरी में भरा हुआ धुआँ सहसा लुप्त हो गया। ताम्रकुंड में जलनेवाली अग्नि बुझ गई और पुनः सुनाई पड़ा—"नवीन, तुम सो रहो ?"

नवीनदास जहाँ पड़ा था वहीं पड़ा पड़ा खर्राटा भरने लगा। जिस समय उसकी नींद खुली, खिड़की में से धूप आकर उसके शरीर पर पड़ रही थी। चारों ओर देखने पर उसे न कहीं त्रिशूलधारी नर-कंकाल, न विषधर सर्प और न ताम्रकुंड दिखाई पड़ा। फिर तो नवीनदास सिर पर पैर रखकर उस कोठरी से भाग खड़ा हुआ।

सैंतालीसवाँ परिच्छेद

प्रेमानंद

दहकती हुई अग्नि को जैसे राख का आवरण छिपा नहीं पाता वैसे ही मलिन वस्त्रों से रमणी का रूप भी नहीं छिपता। सौंदर्य के अनेक भेद हैं जिनमें से कविगण स्निग्ध और तीव्र इन दो भेदों का ही विशेष वर्णन करते हैं। मुन्नी का सौंदर्य अत्यंत तीक्ष्ण था। मनोबल न रहने पर पुरुष की आँखें ऐसे सौंदर्य को देखकर झुलस जाती हैं। विद्यालंकार से साक्षात् करके वापस आने पर आचार व्यवहार और रहन सहन में परिवर्त्तन हो जाने के कारण उसके सौंदर्य की तीक्ष्णता और अधिक हो गई थी। सामान्य गेरुए वस्त्रों में कहाँ इतना सामर्थ्य कि इस ज्वलंत रूपशिखा को बाँधकर रख सके। रास्ता चलते लोग आश्चर्य से उसकी ओर देखते रह जाते। उसकी माँ दुःखी होकर कहा करती कि लड़की ने इस रूप का महत्त्व नहीं समझा और अवसर रहते चार पैसा पैदा नहीं किया। उसे चाहनेवाले भी धीरे धीरे उसके इस परिवर्त्तन से अभ्यस्त हो गए थे। मुन्नी जब कहीं मुजरा करने जाती तो लोकरीति के अनुसार पेशवाज, ओढ़नी इत्यादि धारण करती किंतु शेष समय में वह हिंदू संन्यासिनी के वेश में रहा करती थी। इन दिनों वह प्रायः दिन भर सरस्वती के साथ साथ घूमती रहती।

एक दिन अपराह्न में वह सरस्वती के साथ चौक के रास्ते जा रही थी। एक दूकान के सामने किसी को देखकर सरस्वती कुछ दूर पर ही

रुक गई और मुन्नी से बोली—"बहिन, तुम घर जाओ, मैं अब नहीं जा सकूँगी?"

मुन्नी और कोई बात पूछे बिना चली गई। सरस्वती दूकान की बगल में छिपी खड़ी रही। कुछ देर पश्चात् उसी दूकान में से असीम और हरिनारायण बाहर निकले। सरस्वती जहाँ छिपी थी वहाँ से हट गई और एक आदमी से पूछा—"यह दूकान किसकी है?"

वह आदमी बोला—"मनोहर साह बनिया की है। साह जी तो यहाँ के बड़े प्रसिद्ध व्यापारी हैं। तुम क्या यहाँ हाल ही में आई हो?"

सरस्वती ने उसकी बात का कोई उत्तर नहीं दिया और आगे बढ़ गई। थोड़ा अंतर देकर वह असीम और हरिनारायण का पीछा करने लगी, किंतु उन्हें छावनी की ओर बढ़ते देख लौट पड़ी। वापस आते हुए उसका साक्षात् एक मुसलमान व्यक्ति के साथ हुआ। उसे एकटक अपनी ओर देखते देख सरस्वती खड़ी हो गई। चेहरा परिचित लगते हुए भी सरस्वती उसे बिलकुल पहचान नहीं सकी।

उसे यों असमंजस में पड़ी हुई देख उस मुसलमान व्यक्ति ने हँसते हुए कहा—"बीबी जी, सलाम! मैं बंगाल देश से आ रहा हूँ, यहाँ की बोली समझ नहीं सकता।"

उसका कंठस्वर पहचानकर सरस्वती ने प्रसन्नता से कहा—"अरे! नवीन भैया! यह क्या स्वाँग बनाया है!"

मुसलमान वेशधारी नवीन हँसा; बोला—"पहले नहीं पहचाना सरस्वती बहन? इस बार इकट्ठी इक्कीस मुहरें बखशीश में मिलेंगी। मेरा तुम्हारा कृष्ण बलराम[1] नहीं, राधे कृष्ण[2] रहेगा। बुड्ढे को किसी प्रकार काशी या वृंदावन खदेड़ना है।"

१–न्यूनाधिक हिस्सा।

२–आधा आधा हिस्सा।

—अनु०।

उसकी बातों से सरस्वती उत्साहित नहीं हो सकी; उसने कहा—"मामला जितना आसान समझते हो नवीन भैया, उतना आसान नहीं है। असीम और उस बुड्ढे ब्राह्मण में कई दिनों से न जाने क्या काना-फूसी चल रही है। अभी तक कुछ समझाई नहीं पड़ा। बहुत अच्छा हुआ जो तुम आ गए। ठहरोगे कहाँ? इस पोशाक से तो हमारे अखाड़े में जगह मिल चुकी।"

"इसकी चिंता मत करो; कंठी माला, रामनामी चादर सब साथ ही है। खाँ साहब को बाबा प्रेमानंद बनते देर नहीं लगेगी!"

इसी समय पीछे से सरस्वती को किसी ने पुकारा—"क्यों बहन, अभी यहीं हो?"

विस्मित होकर सरस्वती ने देखा कि मुन्नी पीछे खड़ी है। उससे कई गुना अधिक विस्मय नवीन को हुआ। वह मुन्नी को आँखें फाड़ फाड़-कर देख रहा था। सरस्वती को उसकी चेष्टा अच्छी नहीं लगी। उसने अस्फुट स्वर से कहा—"मरने लगा पाजी कहीं का! लड़की बेचारी को जैसे निगल जायगा, तनिक लज्जा संकोच नहीं!"

बड़े कष्ट से नवीन आत्मसंवरण कर पाया। उसकी भावभंगी देखकर मुन्नी मुँह पर कपड़ा धरे हँस रही थी। उसने जिज्ञासा की—"बहन, खाँ साहब शायद आपके देशवासी हैं?"

सरस्वती ने सोच-विचारकर उत्तर दिया—"हाँ, यह मेरे यहाँ के बहुरूपिया हैं, चार पैसा पैदा करने के विचार से पटना आए हैं। यह मुसलमान नहीं, हिंदू हैं; इनका नाम है नवीनदास।"

अपना नाम सुनकर नवीन धीरे से हँसा। मुन्नी को भी मुसकुराना पड़ा और नवीन कृतार्थ हो गया। अपनी रूप-परिवर्त्तन-कला का परिचय देने के लिये नवीन ने टूटी फूटी हिंदी में कहा—"आप लोग यहीं खड़ी रहें, मैं थोड़ी देर के लिये इस पेड़ की आड़ में जाना चाहता हूँ।"

सरस्वती और मुन्नी मुँह फेरे खड़ी रहीं। पास में जो इमली का विशाल वृक्ष था, उसकी आड़ में जाकर नवीन ने तुरत बंगाली वैष्णव का रूप धारण किया। वापस आने पर सरस्वती ने पूछा—"नवीन भैया, बाल और कपड़े क्या हुए ?"

नवीन ने एक गेरुए रंग की झोली की ओर इंगित करते हुए कहा—"यह क्या है !" और प्रशंसा प्राप्त करने की आशा से वह मुन्नी की ओर देखने लगा।

मुन्नी समझ गई। हँसकर बोली—"वाह वाह, खूब !"

नवीन को जान पड़ा जैसे विष्णु के दूतों ने आकर उसे सशरीर गरुड़ की पीठ पर बैठा दिया और वह स्वर्ग की ओर उड़ा चला जा रहा है।

सरस्वती और मुन्नी के साथ नवीन भी अखाड़े की ओर चला। मार्ग में नवीन मुन्नी को जैसी लोलुप दृष्टि से देखता जा रहा था उससे बुद्धिमती मुन्नी को यह समझते देर नहीं लगी कि नवीनदास उसका बे-दाम का गुलाम हो चुका है।

चलते चलते मुन्नी ने पूछा—"कहिए, कल कौन सा वेश बनाइएगा ?"

नवीन बड़ी कठिनाई में पड़ गया। सरस्वती ने उसे केवल परेशानी से बचाने के लिये बहुरूपिया कहकर परिचय दिया था, वस्तुतः वह इस विद्या से एकदम अनभिज्ञ था। कुछ देर मन में तर्क वितर्क करने पर उसे एक उत्तर सूझा; वह बोला—"बीबी जी की जो इच्छा हो वही वेश बनाऊँ।"

मुन्नी बोली—"कल बंगाली राजा का वेश बनाइए।"

नवीन कृतकृत्य होकर बोला—"जो आज्ञा।"

अखाड़े के द्वार पर मुन्नी ने सरस्वती और नवीन से बिदा ली। सरस्वती की जान बची और मुन्नी को भी छुट्टी मिली। नवीन से एकांत

में बातें करने के लिये सरस्वती उतावली हो रही थी और मुन्नी को भी किसी बड़े आयोजन में गाने जाना था।

अखाड़े से आगे बढ़ने पर मुन्नी वेग से चलने लगी। संयोग से मार्ग में उसे एक खाली इक्का मिल गया। इक्के पर जब वह अपने घर के निकट पहुँची तो देखती क्या है कि हरिनारायण टहलकर अपने घर लौट रहे हैं। उन्हें देखकर उसने इक्का रोक दिया।

विद्यालंकार ने पूछा—"कैसा समाचार है बेटी?"

मुन्नी बोली—"समाचार तो है बाबू जी, मगर उपयोगी है या नहीं यह नहीं जानती। सरस्वती का देशवासी एक परिचित आया हुआ है। नाम है नवीन बहुरूपिया।"

"नवीन बहुरूपिया? कैसा है वह?"

जहाँ तक बन पड़ा मुन्नी ने उसकी आकृति का वर्णन कर दिया। सुनकर हरिनारायण बोले—"उसे एक बार देखना चाहता हूँ।"

"यह कौन कठिन है; मैं समझती हूँ मेरी बात से वह इनकार नहीं करेगा।"

हरिनारायण हँस पड़े; बोले—"सबेरे और संध्या को मनोहर साह की दुकान पर मुझसे भेंट हो सकती है।"

अड़तालीसवाँ परिच्छेद

नवकृष्ण और नवीनदास

नवीनदास निश्चित होकर प्रातःकालीन शीतल वायु का आनंद लेता हुआ हुक्के का सेवन कर रहा था। थोड़ी देर में अखाड़े के सामने से एक आदमी जाता हुआ दिखाई पड़ा। देखने से नवीन को वह बंगाली जान पड़ा। पहले तो नवीन ने विचार किया कि बंगाली हो या बिहारी, उससे क्या मतलब; फिर न जाने क्या सोचकर उसने पूछा—"सुनते हो भाई, बंगाली हो क्या ?"

वह व्यक्ति बंगाली ही था। नवीन को पुकारते सुनकर वह अखाड़े की दालान पर चढ़ आया और नवीन से पूछने लगा—"आप कितने दिनों से यहाँ आए हैं ?"

नवीन ने उसे बैठने के लिये कहकर उत्तर दिया—"कल संध्या समय आया। तुम···आप कौन हैं ?"

"मैं तो नापित हूँ, गौड़ देश का रहनेवाला हूँ। एक अमीर के साथ आया हूँ।"

"अच्छा। मैं भी नाई हूँ; लो, तमाखू पियो।"

आगंतुक हुक्का लेकर दालान में बैठ गया। कुछ इधर उधर की बातों के बाद नवीन ने पूछा—"किसके यहाँ नौकरी करते हो भाई ?"

आगंतुक ने दुःखी होकर कहा—"अब कहाँ करता हूँ भाई, अब तो छूट गई।"

"कहाँ थे ?"

"एक कायस्थ राजा हैं, नए बादशाह के मित्र और बड़े अमीर हैं। मेरे ही भाग्य के दोष से नौकरी छूट गई।"

नवीनदास ने बुद्धिमानी की। नौकरी किस कारण से छूटी इसे स्पष्ट पूछकर उसने आगंतुक के आत्माभिमान पर आघात नहीं किया। उसने घुमा फिराकर पूछा—"अमीर का नाम क्या है ?"

आगंतुक बोला—"राजा असीम राय।"

बिना किसी प्रकार का कुतूहल प्रकट किए नवीन ने पूछा—"पूरब के रहनेवाले हैं ?"

आगंतुक ने कहा—"नहीं भाई, मुर्शिदाबाद के रहनेवाले हैं। थोड़ी उम्र है। रुपए पैसे की कोई चिंता नहीं है। मैं भी बड़ा सुखी था; दो पैसा ऊपर से भी मिल जाता था। पर भाग्य में बदा नहीं था, इसलिये सब कुछ जाता रहा।"

उसने हुक्का नवीन को दे दिया। नवीन कुछ बोला नहीं, केवल एक लंबी साँस लेकर उसकी बातें सुनता रहा। आगंतुक कहने लगा—"हमारे मुनीम जी बड़े दयावान थे; मगर भाग्य को क्या कहूँ भाई! औरत के पीछे मेरा तो सब कुछ मिट्टी हो गया।"

नवीन ने दुबारा लंबी साँस ली और हुक्का आगंतुक को दे दिया। चिलम की तंबाकू समाप्त हो रही थी इसलिये एक ही बार कसकर खींचने से आगंतुक खाँसने लगा। मौका पाकर नवीन ने हुक्का वापस ले लिया और स्वयं पीने लगा।

खाँसी रुकने पर आगंतुक कहने लगा—"अरे भैया, बौना होकर चंद्रमा को पकड़ने में यही दुर्दशा होती है। इस शहर में मुन्नी नाम की एक बड़ी सुंदर वेश्या है। अभी चढ़ती उमर है। बुलबुल की तरह गाती है और हँसती है तो इसराज का स्वर भी फीका पड़ जाता है।

मैं भैया गरीब घर का आदमी हूँ; बड़े आदमियों की चाकरी करने आकर, मुनीम जी के बाहर चले जाने पर, जो मखमली मसनद के सहारे बैठ दो एक दिन सोने की मुँहनाल से अंबरी तमाखू का कश खींचा तो सिर चकरा गया। क्या कहूँ, उस वेश्या और मुनीम जी की ऐसी पटती है कि··· ।"

नवीन कुछ विचलित हुआ। उसने कहा—"अच्छा, अच्छा; तो जान पड़ता है उसका कुछ तुम्हारी ओर भी झुकाव हुआ है ?"

"राम का नाम लो भाई, वह ऐसी चिड़िया नहीं है।"

"फिर क्या हुआ ?"

"फिर वही दशा हुई जो मूर्खों की होती है। एक दिन मुनीम जी का शाल दुशाला डाटकर राजा का वेश बना बाजार जाँचने निकला। मगर उस बाजार में बनौवा लोगों की कहाँ गुजर। न जाने कितने असली राजाओं को वह रोज खरीदती बेचती रहती है। तुरंत ताड़ गई। सब भाग्य की बात है मित्र। नशा अच्छी तरह जमा हुआ था इसलिये जब मुनीम जी ने आकर पकड़ लिया तब भागने का भी उपाय नहीं था। नतीजा यह हुआ कि नौकरी से निकाल दिया गया।"

नवीनदास पुनः लंबी साँस लेकर उठा। चिलम की जली हुई तंबाकू भूमि पर पलटकर वह दुबारा चिलम चढ़ाने का उपक्रम करने लगा। आगंतुक ने उसे यह श्रम नहीं करने दिया और उसके हाथ से चिलम आदि लेकर स्वयं भरने लगा। नवीन ने बड़े प्रेम से पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है भैया ?"

आगंतुक बोला—"नवकृष्ण !"

"बाई जी का क्या नाम बताया ?"

"मुन्नी बाई !"

"कहाँ रहती हैं ?"

"बीच शहर में।"

चिलम तैयार हो चुकी थी लेकिन नवकृष्ण ने उसे नवीन को नहीं दिया। वह नवीन के पीने का ढंग देख चुका था इसलिये पहले स्वयं पी लेना चाहता था। निश्चिंत होकर वह हुक्का गुड़गुड़ाने लगा। नवीन उसके व्यवहार से थोड़ा खिन्न अवश्य हुआ किंतु नाराज हो जाने की आशंका से उसने नवकृष्ण से कुछ कहा नहीं। चिलम जब समाप्त होने को हुई तब जाकर नवकृष्ण ने उसे नवीन को दिया और चलने की तैयारी करने लगा। नवीन ने पूछा—"इस समय कहाँ जाना है ?"

"नौकरी की तलाश में।"

नवीन भी उठ खड़ा हुआ। बोला—"संध्या को मुलाकात होगी ?"

नवकृष्ण ने कहा—"हाँ हाँ, अवश्य, मैं स्वयं आऊँगा।"

नवकृष्ण चला गया। उसके जाने पर नवीन सरस्वती की खोज में भीतर गया मगर उसे गृहकार्य में व्यस्त देख पुनः दालान में लौट आया और नई चिलम भरने लगा। तभी मुन्नी आकर अखाड़े के द्वार पर खड़ी हो गई। नवीन को देखकर वह थोड़ा हँसती हुई बोली—"क्यों भाई साहब, शहर की ओर नहीं निकले ?"

उसकी मुस्कुराहट के साथ साथ नवीन का हृदय उछल पड़ा था, मगर 'भाई साहब' संबोधन सुनते ही बैठ गया। पर नवीनदास प्रेम का पुराना व्यवसायी था इसलिये निराश नहीं हुआ; भ्रातृ संबोधन को चुपचाप वह हजम कर गया, उसके चेहरे पर कुछ भी प्रतिक्रिया नहीं हुई। उसने कहा—"बीबी जी, हमारे मुर्शिदाबाद में तो बहुरूपिया लोग सायंकाल निकलते हैं, आपके पटने में कैसा रिवाज है ?"

मुन्नी बोली—"भाई साहब, बहुरूपियों का नियम क्या है सो तो

नहीं जानती; जब उनकी इच्छा होती है तभी वेश बनाकर निकलते हैं। मेरे घर तो कोई आता नहीं, मगर मेले ठेले में कभी कभी संध्या को भी उन्हें देखा है।"

"बहुत ठीक, तब आज संध्या को वेश बनाकर निकलूँगा। कहाँ कहाँ जाना चाहिए बीबी जी, मैं तो यहाँ का रास्ता भी नहीं जानता? आपको छुट्टी हो तो मुझे रास्ता दिखा देंगी?"

मुन्नी ने हँसते हुए कहा—"क्यों न दिखाऊँगी।"

मुन्नी द्वारा साथ चलना स्वीकार कर लिए जाने पर नापित-कुल-भूषण नवीनदास को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वह पटना नगरी में नहीं, इंद्रपुरी में है। कुछ काल बाद प्रकृतिस्थ होने पर उसने पूछा—"तो कहाँ कहाँ चलना होगा बीबी जी?"

मुन्नी बोली—"यहाँ के अमीर उमरों का नाम जानते हो? इधर उधर रास्ते में तो घूमने से विशेष कुछ मिलता नहीं। चार घड़ी तक रास्ते रास्ते न घूमकर एक ही घड़ी अमीरों के यहाँ चलने से दूना काम होगा।"

कुछ देर सोच-विचारकर नवीन बोला—"किसी अमीर उमरा को तो पहचानता नहीं मगर सुना है कि यहाँ कोई बड़ी प्रसिद्ध बाई जी हैं। सारे अमीर उमरा उनकी जूतियाँ उठाते हैं।"

"अच्छा! कौन हैं वह?"

"मुन्नी बाई।"

मुन्नी गंभीर हो गई। थोड़ा ठहरकर उसने कहा—"नाम तो सुना है, मगर उन्हें देखा नहीं है।"

नवीन ने उत्सुकतापूर्वक पूछा—"उनका मकान जानती हो?"

"मकान ढूँढ़ने में कितनी देर लगेगी ? मैं इसी वक्त पता लगा लाती हूँ ।"

"बीबी जी, तो ठीक रहा, चलिए आज संध्या को मुन्नी बाई के यहाँ ही चला जाय । भाग्य में होगा तो वहीं दो चार अमीर उमरों से भेंट हो जायगी ।"

बड़े यत्न से अपने मनोभावों को छिपाए हुए मुन्नी अखाड़े के द्वार से ही वापस चली गई । सरस्वती से फिर उसने भेंट नहीं की ।

———

उनचासवाँ परिच्छेद

प्रत्यावर्त्तन

"तो यही ठीक है, जान पड़ता है दो ही एक दिन में हमलोगों को डेरा डंडा उखाड़कर इलाहाबाद के मार्ग पर अग्रसर होना पड़ेगा। बादशाह ने स्वयं यह पत्र लिखकर दे दिया परंतु दीवान के साथ उनका जैसा संबंध है उससे जान पड़ता है कि इस पत्र से कोई कार्य सिद्ध नहीं होगा। दीवान के दरबार में अर्जी पेश करने के लिये बहुत अधिक द्रव्य की आवश्यकता पड़ेगी। इतना द्रव्य कहाँ पाऊँगा चाचा जी!"

"मैं रुपए के लिये तो कुछ कहता नहीं बेटा। तुम्हारी संपत्ति जब वापस मिल जायगी तब ऋण चुकाने का बहुत अवसर आएगा। हाँ, यह तो बताओ कि इधर मुन्नी से साक्षात् हुआ था?"

"ना।"

"नवीन नाई पटने आ पहुँचा है। क्यों आया है, सो तो नहीं कह सकता, मगर यह बात हम लोगों के लिये अच्छी नहीं है।"

"इस शाही छावनी के भीतर नवीन मेरा क्या बिगाड़ सकता है! आप लोग तो जा ही रहे हैं, फिर भय की क्या बात है?"

"देखो बेटा, जब तक इस बात का पक्का पता नहीं लग जाता कि नवीनचंद्र जी का पटने में पदार्पण किस उद्देश्य से हुआ है, तब तक हरिनारायण विद्यालंकार तो पटना छोड़कर कहीं जाते नहीं, समझे ?"

हरिनारायण उठ खड़े हुए। असीम ने उन्हें प्रणाम किया। भूपेंद्र खेमे के बाहर खड़ा था। उसने भी आकर प्रणाम किया। हरिनारायण खेमे के बाहर निकले। उस दिन नगर के बाहरी भागों में बड़ी भीड़ भाड़ थी। झुंड के झुंड स्त्री पुरुष आ जा रहे थे। हरिनारायण धीरे धीरे चौक की ओर अग्रसर हुए। चलते चलते उन्हें जान पड़ा जैसे पीछे से कोई उनका दुपट्टा पकड़कर खींच रहा है। पीछे मुड़कर उन्होंने देखा कि सिर से पैर तक गेरुए वस्त्रों में ढँकी एक स्त्री खड़ी है। वे बीच रास्ते से हटकर किनारे आ गए।

वह स्त्री बोली—"मैं मुन्नी हूँ, बाबू जी। मेरे साथ आइए।"

हरिनारायण रास्ता छोड़कर मुन्नी के पीछे पीछे खेत में प्रविष्ट हुए। आगे जाकर खेतों के बीच में एक कब्र थी जिसके चारों ओर चहार-दीवारी खिंची हुई थी। इसी कब्रिस्तान के फाटक तक आकर मुन्नी रुक गई। उसने जिधर संकेत किया उधर हरिनारायण ने देखा कि एक टूटी फूटी किंतु प्रशस्त समाधि के भीतर बैठे हुए दो व्यक्ति बँगला में वार्तालाप कर रहे हैं। हरिनारायण ने एक को कहते सुना—"नगद एक हजार रुपए का दावँ है, समझे मित्र ?"

"एक हजार में मैं पूरा मामला निपटा दूँगा।"

"देखो, तुम्हारे मुनीम के साथ साथ मुर्शिदाबाद से एक बूढ़ा ब्राह्मण आया है। नाम है हरिनारायण विद्यालंकार। उसे पहचानते हो ?"

"खूब मजे में।"

"उस ब्राह्मण को अगर खपा सको तो तुरंत एक हजार नगद तुम्हारा है।"

"वह बुढ्ढा तो कोई खराब आदमी नहीं है, उसे क्यों खपाना चाहते हो?"

"कौन अच्छा और कौन बुरा है, समझे भैया, इसको पहचानना, और सो भी बड़े आदमियों के मामलों में, बड़ा कठिन है। यह बुड्ढा अच्छा आदमी हो सकता है, मगर उसकी विधवा बेटी है, जानते हो उसे? उसके साथ, समझे न, तुम्हारे मुनीम की, समझ में आ गया न? समाज के डर के मारे बुड्ढा देश छोड़कर भाग आया है लेकिन उसकी लड़की अभी भी, समझे न, तुम्हारे मुनीम को—समझ गए न? देखो भाई जैसे तुम्हारे मुनीम वैसे हमारे मुनीम। मैं तुम्हारे मुनीम के बड़े भाई का बिलकुल खास नौकर हूँ। उन्हीं के हुकुम से इस बुड्ढे ब्राह्मण और इसकी लड़की से छोटे मालिक का पिंड छुड़ाने आया हूँ। देखो, अगर किसी उपाय से उस राँड़ लड़की और बुड्ढे को काबू में कर लो तो नगद एक हजार का तोड़ा घर बैठे तुम्हारे पास पहुँच जायगा।"

"बुड्ढे को किस तरह खपाना होगा?"

"यह तुम जानो। खपाने के कई उपाय हैं—चाहो तो बोरे में बंद करके नाव से गंगापार ले जाकर रख आओ और चाहो तो एक ही वार में वैतरणी पार उतार दो।"

"वैतरणी पार उतारना ही ठीक है क्योंकि मुर्दा बोलता नहीं।"

"तो जिम्मा लेते हो?"

"एक हजार की गठरी बहुत होती है भैया, मैं अब जुट गया इस काम पर।"

मुन्नी ने इशारे से हरिनारायण को बुलाया। चहारदीवारी की आड़ से दूर निकल आने पर मुन्नी बोली—"बाबूजी, अब आगे मेरे कहने के मुताबिक चलना होगा। आपके साथ तीन चार आदमी कर देती हूँ। इस पटने में नवकृष्ण खानसामा मुट्ठी भर भर सोना लुटाकर जो नहीं कर सकता उसे आपके आशीर्वाद से मैं केवल जबान हिलाकर कर सकती हूँ।"

हरिनारायण को साथ लेकर मुन्नी शहर की ओर लौटी और तीन चार आदमियों को उनके साथ जाकर मनोहर साह की दूकान तक पहुँचाने के लिये नियुक्त कर दिया। हरिनारायण से उसने यह भी कह दिया कि वह स्वयं उनके घर जाकर समाचार दे आएगी।

पचासवाँ परिच्छेद

जिन

"रोते क्यों हो ?"

सुदर्शन बिना कुछ उत्तर दिए कपड़े के कोने से बार बार आँसू पोंछने लगे। बहू ने पुनः पूछा—"सवेरे सवेरे यह रोने क्या बैठ गए ?"

आँखे पोंछते हुए सुदर्शन बोले—"बड़ी बहू, एक तुम हो और तुम्हारे बाद है यह तानपूरा······" और सचमुच सुदर्शन अत्यंत व्याकुलतापूर्वक बिलख-बिलखकर रो पड़े।

बहू ने भी तब अपना अस्त्र सँभाला, धमकी के स्वर में उसने कहा—"चुप होते हो या नहीं ?"

सुदर्शन ने पुनः आँखें पोंछी और कहा—"हूँ।"

"तो चुप रहो।"

सुदर्शन की रुलाई सचमुच रुक गई। बहू ने समझा कि तीनों तानपूरे, दोनों पखावज और सुरबहार यहीं छोड़ जाना होगा, इसी कारण स्वामी को इतना दुःख हो रहा है। बुद्धिमती बहू ने कहा—"इसके लिये चिंता करने की क्या आवश्यकता है! पटने में तो तुम्हारे बहुत से इष्ट मित्र हैं, किसी के पास छोड़ क्यों नहीं जाते ?"

सुनकर सुदर्शन प्रसन्नतापूर्वक बोले—"ठीक कहती हो। पटने में मुझे तीन ही आदमियों ने पहचाना है—एक तुम हो, दूसरे नए बादशाह हैं और तीसरी मुन्नी बाई है।"

सुदर्शन को तुरंत तानपूरा, पखावज इत्यादि लेकर बाहर जाते देख बहू ने पूछा—"इतना दिन चढ़ आया है, जा ही रहे हो तो भोजन करके क्यों नहीं जाते?"

सुदर्शन बोले—"ना ना, बड़ी देर हो जायगी। अब मैं लौटकर ही भोजन करूँगा।"

घर से निकलकर सुदर्शन अन्यमनस्क भाव से शहर की ओर चले। अनजाने उनके पैर मुन्नी के घर की ओर बढ़ने लगे। मुन्नी उस समय घर पर नहीं थी। उसकी माँ सुदर्शन को देखते ही चिढ़ गई। सुदर्शन ने बहुत पूछा कि मुन्नी कहाँ गई है, कब लौटेगी, पर उसकी माँ ने सभी बातों का एक ही उत्तर दिया कि मुझे नहीं मालूम। जब सुदर्शन ने देखा कि मातिया ने दरवाजा भीतर से बंद कर लिया, तो अपना तानपूरा, पखावज इत्यादि लिए वे पास ही एक पेड़ के नीचे जा बैठे। देखते देखते दो घंटे बीत गए मगर मुन्नी नहीं आई। भूख की यंत्रणा से सुदर्शन छटपटाने लगे। अंत में पुनः मुन्नी के दरवाजे पर जाकर उन्होंने किवाड़ खटखटाए।

सुदर्शन को दुबारा आया हुआ देख बुढ़िया जल गई। बोली—"तू फिर आ गया!"

सुदर्शन हक्के बक्के खड़े रहे, उनसे कुछ कहते नहीं बना। बुड्ढी बड़ी तेजी से घर के बाहर निकली और दरवाजा बंद कर बाहर खड़ी चिल्ला चिल्लाकर रोने लगी। उसका रोना चिल्लाना सुनकर पड़ोस के स्त्री पुरुष, बाल बच्चे आ-आकर उसके घर के सामने एकत्र हो गए और चारों ओर से लोग उससे रोने का कारण पूछने लगे। पर उसने कुछ

नहीं कहा। रुलाई के बीच बीच में एकाध बार 'जिन जिन' कहकर वह चिल्लाने लगती थी। इससे दो एक बुद्धिमान पड़ोसियों ने समझा कि जिन मोतिया बाई को पकड़ने आ रहा है। वे पूछने लगे—"कहाँ है जिन ?"

मोतिया ने रोना पीटना चालू रखते हुए घर के बंद दरवाजे की ओर इंगित कर दिया। दो चार साहसी व्यक्तियों ने हिम्मत करके दरवाजा खोला तो देखा कि वृद्ध गृहस्वामी और एक अपरिचित व्यक्ति खड़े हैं। सुदर्शन को देखते ही बुढ़िया का रोना चिल्लाना और बढ़ गया; वह बोली—"यही है, यही जिन है।"

इतना सुनते ही लोगों ने सुदर्शन को पकड़कर बाँध डाला। हतबुद्धि सुदर्शन के मुँह से एक शब्द तक नहीं निकला। सहृदय पड़ोसियों में से एक व्यक्ति ओझा को बुलाने दौड़ा, एक काजी को। दो चार व्यक्ति फौजदार को समाचार देने चले गए। सुदर्शन का तानपूरा, पखावज आदि पेड़ के नीचे ही पड़ा रह गया था। उसे जिसने देखा, लेकर चलता बना।

ओझा और काजी के आने के पहले ही फौजदार आ गए और बिना कुछ पूछताछ किए सुदर्शन को लेकर कोतवाली चले गए। वेश परिवर्त्तन के लिये मुन्नी जिस समय घर लौटी उस समय अपनी माँ को घर पर न पाकर उसे विशेष आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि उसकी माँ प्रायः बिना कुछ कहे सुने बाहर चली जाया करती थी। कृपालु पड़ोसियों के अनुग्रह से उसे शीघ्र ही ज्ञात हो गया कि जिन उसी को ढूँढ़ता हुआ आया था पर उसे न पाकर उसकी माता को पकड़ने जा रहा था। पड़ोस के लोगों ने माता को बचा लिया है और फौजदार आकर जिन को पकड़ ले गया है। मुन्नी ने पहले सोचा कि असीम आए होंगे, किंतु जब उसने सुना कि वह जिन काले रंग का, ताड़ की

तरह लंबा तड़ंगा था तब उसकी चिंता दूर हुई। पड़ोसियों को विदा करके उसने हिंदू बालक का वेश बनाया और सिर से पैर तक बुर्का ओढ़कर घर से बाहर निकली।

पड़ोस के एक व्यक्ति ने जब असीम को समाचार दिया कि हरिनारायण विद्यालंकार और सुदर्शन अभी तक घर नहीं लौटे तो वे बड़े चिंतित हुए। बादशाह ने हुक्म दे दिया था कि सुबह लश्कर पटने से कूच करेगा। वे भूपेंद्र को विद्यालंकार के घर भेजकर यात्रा की तैयारी में जुट गए थे। संध्या हुई, छावनी में असंख्य मशालें जल गईं, रात्रि का प्रथम प्रहर भी बीत चला किंतु तब भी भूपेंद्र नहीं लौटा। असीम अब अत्यंत उद्विग्न हो उठे। उन्होंने घोड़ा निकाला और विद्यालंकार के घर की ओर चल पड़े।

वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि भूपेंद्र के द्वारा विद्यालंकार महाशय का संवाद पाकर दुर्गा और बहू यद्यपि आश्वस्त हो गई हैं किंतु भोजन अब तक किसी ने नहीं किया है। बड़ी बहू से मालूम हुआ कि तानपूरा, पखावज इत्यादि लेकर सुदर्शन मुन्नी के यहाँ गए हैं और संभवतः भूपेंद्र भी उधर ही गया है। स्त्रियों को ढाढस देकर वे स्वयं मुन्नी के घर की ओर अग्रसर हुए। मुन्नी के घर पर कोई नहीं था। पड़ोसियों से ज्ञात हुआ कि मुन्नी के माता पिता फौजदारी में गए हैं। सुनते ही असीम शहर की कोतवाली की ओर चल पड़े।

फौजदार ने उनका परिचय पाकर सुदर्शन को छोड़ दिया।

इक्यावनवाँ परिच्छेद

त्रिविक्रम

संध्या हो चली थी। पश्चिम की ओर बादल का एक छोटा सा टुकड़ा दिखाई पड़ा और देखते देखते वह सारे गगन-मंडल पर छा गया। हरिनारायण भयभीत हो गए। नाव की गति तेज हो गई। अंधकार जब धीरे धीरे चारों ओर से घनीभूत होने लगा तब वायु का वेग कुछ बढ़ चला। गंगा की धारा में छोटी बड़ी लहरें उठने लगीं। हरिनारायण ने नाव खेनेवालों से कहा—"आँधी उठ रही है, ऐसे में कहाँ आगे बढ़ रहे हो?"

पीछे से माँझी ने उत्तर दिया—"और एक कोस निकल चलने पर रास्ता मिलेगा। हवा तेज न होती तो दिन भर में एक कोस निकल जाते।"

"हवा का वेग धीरे धीरे बढ़ रहा है। ऐसी अवस्था में नाव आगे ले चलना ठीक नहीं। किनारे लगाओ।"

"यहाँ किनारा छिछला और पथरीला है, हवा के रुख पर यहाँ नाव किनारे लगाना जोखिम है।"

हरिनारायण फिर कुछ नहीं बोले। नाव पूर्ववत् चलती रही। वायु का वेग सहसा उग्रतर होने लगा। उसमें पड़कर नाव तीर की तरह

उड़ चली। हरिनारायण को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि खेनेवाले उस समय भी डाँड़ा चला रहे थे। अंधकार क्रमशः और अधिक घना हो गया था। तभी बूँदें गिरने लगीं। दूर पर दीपक का प्रकाश दिखाई पड़ा। पीछे से माँझी बोला—"नाव आँधी में पड़ गई है, पत्थरों की चपेट में आ गई तो चूर हो जायगी। पंडित जी थोड़ी शांति के साथ चुपचाप बैठे रहें तो और लोगों की भी जान बच सकती है।"

हरिनारायण बोले—"मेरी चिंता मत करो। तुम्हारी नाव डूबने पर भी मैं नहीं मरूँगा।"

दीपक का प्रकाश क्रमशः पास आने लगा। हरिनारायण ने देखा कि भारी बोझ से लदी हुई एक नाव आँधी में पड़कर बेकाबू हो गई है। उसके माँझियों ने दो दो लंगर डाले किंतु नाव बँध नहीं पाई। आँधी के वेग से मस्तूल टूट गया है मगर नाव से अलग नहीं हुआ है, फलतः नाव का संतुलन बुरी तरह बिगड़ गया है। रह-रहकर उसमें पानी भरता जाता है। पास आने पर उसके माँझी मल्लाह उछलकर हरिनारायण वाली नाव पर चढ़ आए। इस नाव के माँझी ने पूछा—"तुम्हारी नाव में कोई सवारी नहीं है?"

उन्होंने उत्तर दिया—"एक पागल ब्राह्मण है; वह न तो कुछ बोलता है और न उठता है।"

"है कहाँ वह?"

"नाव में ही है।"

नाव लौटी और डूबती हुई नाव के पास आ लगी। सबने देखा कि एक नग्न मनुष्य मूर्ति सामने ध्यान की मुद्रा में बैठी है।

माँझी ने पुकारा—"महाराज!"

कोई उत्तर नहीं मिला।

पुनः पुकार हुई—"अरे ओ महाराज ! नाव डूब रही है ।"

उस नग्न मूर्ति ने फिर भी कोई उत्तर नहीं दिया । तब उस नाव के माँझी ने कहा—"तुम किसको पुकार रहे हो ? यह ब्राह्मण सोलह आने पागल है । आज राजमहल से चले सात दिन हो गए । इस बीच संध्या समय एक चुल्लू पानी को छोड़कर उसे किसी ने कभी कुछ खाते नहीं देखा ।"

इस नाव के माँझी ने संकेत किया और चार मल्लाह मिलकर उस मनुष्य को उठा लाए । नाव आगे बढ़ी । सहसा बिजली की एक शुभ्र रेखा आकाश में यहाँ से वहाँ तक कौंध गई । उसके आलोक में सब लोगों ने भीत और विस्मित भाव से देखा कि एक बृहदाकार लहर ने आकर उस नाव को ग्रस लिया । दूसरी बार बिजली चमकने पर उसका कोई चिह्न भी नहीं दिखाई पड़ा ।

नाव पुनः लौटी । उलटी गति से बहनेवाली प्रचंड वायु के कारण बहुत धीरे धीरे नदी का ऊबड़खाबड़ पथरीला गर्भ पार करती हुई नाव जैसे ही किनारे लगी वैसे ही पीछे से लहर का ऐसा प्रचंड आघात लगा कि वह उछलकर भूमि पर आ गई । आघात इतना भीषण था कि वह सुदृढ़ नाव भी टुकड़े टुकड़े हो गई । आरोहियों में ऐसा कोई नहीं था जिसे इस आघात के फलस्वरूप कुछ न कुछ चोट न लगी हो । बिजली के प्रकाश में ही यह देखा गया कि कोई मरा नहीं है । अकस्मात् उनकी बगल में कोई बोल उठा—"हाँ, देख लिया । अभी लौटता हूँ । भगवन्, लगातार बीस वर्षों से आज्ञापालन करता आ रहा हूँ; इसमें कभी रत्ती भर भी इधर उधर नहीं किया है । केवल आज भाग्यचक्र के फेर में पड़कर विपरीत दिशा की ओर जाने की चेष्टा कर रहा था ।"

बिजली पुनः चमकी । हरिनारायण ने देखा कि नग्न मूर्ति ने आँखें

खोल दी हैं। गहन अंधकार में उसकी बातें सुनकर माँझी मल्लाह अत्यंत भयभीत हो रहे थे।

वह मनुष्य मूर्त्ति उठकर खड़ी हो गई और हरिनारायण का हाथ खींचती हुई बोली—"मेरे साथ आओ।"

हरिनारायण मंत्रमुग्ध की भाँति उसके पीछे पीछे चले। बिजली के आलोक में उन्हें जाते हुए देखकर माँझी बोल उठा—"कहाँ चले पंडित जी? मुझे तो हुक्म है कि आपको वापस पटना पहुँचाऊँ।"

हरिनारायण ने उत्तर दिया—"तब तुम भी आ जाओ।"

माँझी जब उनके पीछे पीछे चलने को प्रस्तुत हुआ तब सहसा एक महा विकराल विषधर सर्प फूत्कार करता हुआ झपट पड़ा। बिजली के प्रकाश में ही हरिनारायण ने देखा कि नाव के कर्मचारी प्राण लेकर उलटे पैर भाग रहे हैं।

हरिनारायण का हाथ थामे वह मनुष्य मूर्ति तेजी से आगे बढ़ने लगी। चारों ओर घटाटोप अंधकार छाया हुआ था, वृष्टि हो रही थी। हरिनारायण के कपड़े भीग गए। उन्हें यह ज्ञात नहीं हो रहा था कि किधर जा रहे हैं। दिगंबर मनुष्य पूर्ण परिचित की भाँति उस अज्ञात पथ पर दृढ़ भाव से आगे बढ़ रहा था। धीरे धीरे हरिनारायण के पैर शिथिल हो चले और वे लड़खड़ाने लगे। नग्न मूर्त्ति रुक गई। हरि-नारायण अपने पैरों पर खड़े रहने में भी असमर्थता अनुभव कर रहे थे। रास्ते के कीचड़ में ही वे बैठ गए। उनका साथी उन्हें वहीं छोड़कर आगे निकल गया। वे कितनी देर तक इस प्रकार बैठे रहे, यह उन्हें ठीक ठीक ज्ञात नहीं हो सका; किंतु जब उनकी चेतना लौटी तब उन्होंने देखा कि दो तीन आदमी मशाल लिए खड़े हैं और अन्य चार व्यक्ति उन्हें उठाकर डोली पर चढ़ा रहे हैं। डोली आगे बढ़ी

और थोड़ी देर पश्चात् किसी गावँ में एक ऊँची अट्टालिका के सामने पहुँचकर रुक गई।

शरीर आदि स्वच्छ करके वृद्ध हरिनारायण जिस समय दूध की तरह सफेद बिछौने पर आराम कर रहे थे उस समय घर के स्वामी ने आकर उनसे कहा कि आपके साथी आपसे मिलना चाहते हैं। साथी के आने पर हरिनारायण उसे पहचान नहीं सके। उन्होंने नाव पर तथा गंगा किनारे जो नग्न मूर्त्ति देखी थी यह व्यक्ति उससे बिलकुल भिन्न था। साफ सुथरा वस्त्र धारण किए यह सौम्य मनुष्य ही आँधी में डूबनेवाली नाव पर सवार था, इसपर उनसे किसी प्रकार विश्वास करते नहीं बनता था। फिर भी उन्हें जान पड़ा कि इसे पहले कहीं देखा अवश्य है। आगंतुक ने उन्हें अपनी ओर एकटक देखते देख कहा—"आपने मुझे पहचाना नहीं ?"

हरिनारायण थोड़े लज्जित हुए; बोले—"पहचानता क्यों नहीं, मगर जान पड़ता है कि पहले भी आपको कहीं देखा है।"

"और कहाँ देखा होगा—मैं भी बंगाली हूँ; निवास पूरब की ओर है, इधर तो थोड़े दिनों से ही आया हुआ हूँ ?"

सहसा हरिनारायण उठ बैठे और उस व्यक्ति का हाथ पकड़ते हुए बोले—"ठीक इसी प्रकार 'आया हुआ हूँ' एक और व्यक्ति भी कहा करता था। तुम वही तो नहीं हो ?"

हरिनारायण का मनोभाव देखकर वह व्यक्ति किंचित् संकुचित हुआ और बोला—"आप किस व्यक्ति के संबंध में कह रहे हैं ? किसी बात को कहने का ढंग बहुतों का एक समान होता है।"

हरिनारायण ने अपने दोनों हाथों में उस व्यक्ति के हाथों को लेते हुए कहा—"तुम झूठ बोल रहे हो। आज तीस वर्ष

हो गए, मगर तुम्हारे जैसा 'आया हुआ हूँ' कहते किसी को नहीं सुना। यही नहीं, अपने साठ वर्षों के जीवन में भी ऐसा उच्चारण अन्यत्र नहीं सुना। बोलो! छिपाओ मत। चाहकर भी छिपा नहीं पाओगे। मैं नरनारायण भट्टाचार्य का पुत्र हरिनारायण हूँ। बचपन के दिन एक ही गाँव में बीते हैं; युवावस्था में एक साथ विद्याध्ययन किया है; मुझसे भी छिपना चाहते हो त्रिविक्रम? तुम दूसरे कोई नहीं, निश्चित रूप से त्रिविक्रम ही हो।"

आगंतुक ने हरिनारायण को अपनी बाहों में भर लिया और कहा—"हाँ हरि, मैं वही त्रिविक्रम हूँ।"

बावनवाँ परिच्छेद

अपहरण

सुदर्शन लेटे हुए थे, नींद अभी आई नहीं थी कि बाहर कोई जोर से दरवाजा भड़भड़ाने लगा। दरवाजा खोलने पर उन्होंने देखा कि कोई अहदी है। उसने सुदर्शन से कहा—"एक विशेष कार्य से आपको एक बार छावनी तक चलना पड़ेगा। बादशाह सलामत प्रातःकाल दिल्ली के लिये प्रस्थान कर देंगे इसलिये अभी न चलने से फिर उनसे संभवतः भेंट न हो सकेगी। अमीर ने भी कहा है कि आपकी दिल्ली यात्रा की व्यवस्था उन्होंने कर ली है, भेंट होने पर सारी बातें ब्योरेवार आपसे कहेंगे।"

बादशाह फर्रुखसियर की फौज में असीम 'अमीर' उपाधि से संबोधित किए जाते थे।

सुदर्शन बिना ननुनच किए संदेशवाहक के साथ हो लिए। उस समय त्रियामा निशा का द्वितीय याम गत हो रहा था। उनके चले जाने पर ननद और भौजाई शयनागार से निकलकर दीपक लिए पूजागृह के समक्ष आ बैठीं। बादशाह की छावनी से तृतीय प्रहर की नौबत के स्वर उठने लगे। नौबत अभी समाप्त भी नहीं हुई थी कि दरवाजे पर पुनः कराघात होने लगा।

बहू बोलीं—"जा, दरवाजा खोल दे, तेरे भैया आए हैं।"

दुर्गा ने चुटकी ली—"कलमुहीं, तुझे संसार भर मेरा भैया ही दिखाई पड़ता है ?"

"भैया न होंगे तो तेरा कोई नागर होगा।"

"अच्छा भाई, ठहर, देखती हूँ किसका नागर है। बोली पहचानी हुई न होगी तो दरवाजा नहीं खोलूँगी।"

दीपक लिए दरवाजे के पास जाकर दुर्गा ने पूछा—"कौन है ?"

उत्तर मिला—"मैं हूँ।"

"मैं कौन ?"

"सुदर्शन भट्टाचार्य का मकान यही है न ?"

"हाँ यही है। तुम कहाँ से आते हो ?"

"मैं फौजदार के यहाँ से जरूरी काम से आ रहा हूँ। दरवाजा जल्दी खोल दो।"

"मालिक घर में नहीं हैं, सवेरे आना।"

"काम बहुत जरूरी है, देर करने से बड़ा नुकसान होगा, दरवाजा तुरंत खोल दो।"

"घर में इस समय कोई मर्द नहीं है इसलिये दरवाजा तो नहीं खुलेगा; तुम बाहर बैठो, मालिक के आने पर खोल दूँगी।"

लौटकर दुर्गा पूजाघर के सामने बैठ गई। बोली—"भाभी, भैया के लौटे बिना दरवाजा खोलना ठीक नहीं जान पड़ता, तुम्हारी क्या राय है ?"

"इसमें राय की कौन सी बात है। घर में कोई मर्द है नहीं; हम्हीं दो स्त्रियाँ हैं। अपना देश भी नहीं है कि टोला पड़ोस से किसी को बुला लाऊँ। रात आधी के अधिक हो गई है। ऐसे में भला दरवाजा खोलना ठीक होगा ?"

फौजदार के आदमी ने और दो तीन बार दरवाजा खड़खड़ाया किंतु कोई उत्तर न मिलने से जान पड़ता है लौट गया। थोड़ी देर बाद बड़ी बहू ने दुर्गा मे पूछा—"क्यों दीदी ?"

दुर्गा बोली—"क्या है ?"

"उन्हें अगर ये सब दरवाजे से ही पकड़ ले गए तब ?"

"हम लोग कर ही क्या सकेंगी ? सबेरे छोटे भैया को समाचार दूँगी। एक बार छिपकर देखूँ, वे सब गए या बैठे हैं ?"

"कहाँ से देखेगी ?"

"क्यों ? ऊपर से।"

"दीवार पर चढ़ेगी ?"

"हर्ज क्या है।"

"चढ़ पाएगी ?"

"मैं तो शायद न चढ पाऊँगी, मोटी जो हूँ; तू चढ़।"

दुर्गा दीपक रखकर बाहरी दरवाजे की ओर बढ़ी। उसी समय आँगन में किसी भारी वस्तु के गिरने का धमाका हुआ। बहू चीत्कार कर उठी। फिर वैसा ही धमाका हुआ। एक एक करके सात आठ आदमी दीवार फाँदकर हरिनारायण भट्टाचार्य के घर में कूद पड़े। उन्होंने शीघ्रतापूर्वक दुर्गा तथा बड़ी बहू के हाथ पैर बाँध डाले और बाहरी दरवाजा खोल दिया। बाहर आम के नीचे और आठ दस आदमी दो डोलियाँ लिए लिपे थे। सबने मिलकर दोनों स्त्रियों को डोली में डाल दिया और वहाँ से चलते बने। हरिनारायण के अगल-बगल रहनेवालों को आहट भी नहीं लगी कि उनकी बेटी और बहू दोनों का अपहरण हो गया।

हरिनारायण के मकान के पास एक पुरुष और एक स्त्री प्रतीक्षा कर रही थी; वे दोनों भी डोलियों के साथ साथ चले।

कुछ दूर निकल जाने पर स्त्री ने पुरुष से कहा—"नवीन भैया, मैं अकेली नहीं जा पाऊँगी। परदेश का मामला है। अपना राढ़ देश होता तो दूसरी बात थी। मैं औरत जात हूँ, इतना बखेड़ा सम्हालना भला मेरे बस की बात है? अब काम हो गया हैं, सो तुम भी देश लौट चलो। बड़े मालिक से अपना रुपया वसूल करके हम लोग इस झंझट से अलग हो जायँ। बड़े घर की बात ठहरी, कब क्या हो जाय, कौन जानता है। पटने में बैठे बैठे क्या करोगे?"

पुरुष बोला—"दोहाई है सरस्वती बहन, इतना चिल्ला-चिल्लाकर मत बोलो। तुम्हारी कृपा से पटने में नवीनचंद्र की भी इज्जत है। मैं ऐरा गैरा आदमी नहीं हूँ कुल सात ही दिन की तो बात है, केवल सात दिन की। अगर ये सात दिन किसी तरह बिता ले जाओ तो नवीनचंद्र को अपना बेदाम का गुलाम समझना। बाजार से जो जो चीज लेनी है, सब ले दूँगा। पालकवाला खेत तैयार कर दूँगा, लौकी और कुम्हड़े का मचान बाँध दूँगा।"

"अरे वह सब तो करोगे, मगर सात दिन तक पटने में रहकर क्या होगा?"

"अगला जन्म सुधारने का कुछ उपाय करूँगा। बहुत दिनों के बाद मनलायक गुरु का दर्शन मिला है। चूक गया तो इस जन्म में शायद फिर उनसे भेंट न होगी। गुरु जी की आज्ञा है। बस केवल सात दिन की बात है।"

सरस्वती निरुत्तर हो गई किंतु रास्ते भर न जाने क्या बुदबुदाती रही।

अफजल खाँ के बगीचे में जिस समय नौबतखाने से भैरवी के स्वर उठे उस समय दोनों डोलियाँ शहर से दूर पटने के उपकंठ में पहुँच चुकी थीं। पूर्व दिशा में आलोक की आभा दिखाई देने लगी थी। बाहर से जो लोग नित्य नगर में जीविकोपार्जन के लिये आया करते हैं, उन्होंने एक एक करके रास्ता चलना आरंभ कर दिया था। मार्ग चालू होते देखकर नवीन ने पालकी ढोनेवालों को पैर बढ़ाकर चलने का आदेश दिया। सरस्वती को उसने बड़ी बहू की डोली के साथ रखा और स्वयं दुर्गावाली डोली के साथ चलने लगा। इतने तड़के नगर से एक साथ दो दो डोलियों को जाते देखकर रास्ता चलनेवालों को आश्चर्य हो रहा था किंतु साथ में सशस्त्र आदमियों को देख किसी ने कुछ पूछा नहीं।

रास्ते के किनारे एक निम्न श्रेणी के मकान के सामने बैठी एक स्त्री हाथ मुहँ धो रही थी। निर्जन पथ पर सहसा इतनी भीड़ देख वह भयभीत होकर घर के भीतर भाग गई। नवीन और सरस्वती में से किसी ने उसे नहीं देखा। डोली के साथ साथ जिस समय सरस्वती और नवीन उस मकान के सामने से निकले और भीतर से उस स्त्री ने इन्हें देखा तो वह भय से काँप उठी। डोलियाँ अभी दृष्टि से ओझल नहीं हुई थीं कि वह स्त्री अपनी मालकिन के साथ घर से बाहर निकली और उस दल का पीछा करने लगी।

धीरे धीरे दिन चढ़ने लगा। धूप में कुछ देर चलते रहने के अनंतर मार्ग के किनारे एक पेड़ के नीचे डोलीवालों ने डोलियाँ उतारीं। पीछा करनेवाली दोनों स्त्रियाँ एक झाड़ी के पीछे छिप गईं। थोड़ी देर विश्राम कर लेने पर डोलीवालों ने फिर चलना आरंभ किया। वहाँ से तीन कोस निकल जाने पर किसी गावँ का किनारा मिला। डोलियाँ वहाँ बने हुए किसी धनिक के बगीचे के भीतर चली गईं। बगीचे के भीतर एक छोटा सा दोतल्ला मकान था जिसमें दोनों अपहृत स्त्रियों

को बंद करके डाकू लोग सरस्वती और नवीन को घेरकर खड़े हो गए। नवीन ने प्रत्येक को दो दो मुहरें दीं और उन्हें लेकर वे एक एक करके नगर की ओर लौट गए। नवीन ने कहीं से एक टूटी चिलम और थोड़ी तंबाकू ढूँढ़कर मकान के सामने आसन जमाया और सरस्वती आवश्यक वस्तुएँ खरीदने गावँ के बाजार की ओर निकल गई। कुछ समय के उपरांत पीछा करनेवाली दोनों स्त्रियाँ भी मकान के सामने से होकर आगे निकल गईं। उनमें से एक की चाल देखकर नवीन की दृष्टि कुछ देर तक जमी रही, किंतु वह उठा नहीं।

तीसरे प्रहर के लगभग जब सरस्वती चावल, दाल, हाँड़ी, लकड़ी इत्यादि लेकर लौटी तो नवीन ने पूछा—"सरस्वती बहन, दिन इतना बीत गया, ये दोनों क्या खाएँगी?"

सरस्वती ने कहा—"क्यों, कुछ बना लेंगी।"

"आज क्या वे उठ सकेंगी?"

"कहते तो तुम ठीक हो।"

"तुम एक बार देख आओ बहन!"

"यह मुझसे न होगा नवीन भैया। एक ही गावँ की हैं, उन्हें कैसे मुहँ दिखाऊँगी?"

"किसी तरह इन्हें नाव पर चढ़ा दिया जाय तो बखेड़ा दूर हो।"

"तो मैं चलती हूँ, तुम थोड़े दूध का प्रबंध कर देखो।"

तिरपनवाँ परिच्छेद

नाव पर

दूसरे दिन प्रातःकाल हरिनारायण और त्रिविक्रम बैठक में बैठे हुए थे। हरिनारायण मन ही मन कुछ संकल्प विकल्प कर रहे थे और त्रिविक्रम एक पुस्तक के पन्ने उलट पलट रहे थे। इतने में गृहस्वामी ने आकर कहा—"भगवन्, नौका तैयार है।"

उनकी बातों से हरिनारायण की विचार-शृंखला भंग हुई। उन्होंने जिज्ञासा की—"नौका? नौका क्या होगी?"

त्रिविक्रम बोले—"अरे भाई, नाव मैंने मँगवाई है।"

"क्यों? कहाँ जाओगे?"

"देश की ओर लौटूँगा।"

"कब प्रस्थान करोगे?"

"तुम भोजनादि से निवृत्त हो लो तब चलूँ।"

"मेरे लिये एक बैलगाड़ी का प्रबंध करना होगा।"

"बैलगाड़ी क्या होगी?"

"मैं वापस पटना जाऊँगा।"

"क्यों, पटने में क्या है?"

"कैसी पागलों सी बात पूछते हो ! मेरा बेटा, बहू, लड़की, सभी तो वहीं हैं ।"

"इस समय दो दंड दिन चढ़ा है न, क्यों ? तुम्हारा लड़का इस समय पटने से प्रस्थान कर रहा है। बहू और लड़की पटने से बहुत दूर चली गई हैं ।"

"यह कहते क्या हो तुम ? वे क्यों चली गईं, किसके साथ गईं ?"

"यह फिर जान जाओगे। इस समय जाने पर वहाँ किसी से भेंट नहीं होगी ।"

"फिर उनसे कब, कहाँ भेंट होगी ?"

"भेंट शीघ्र होगी। तुम तुरंत भोजन कर लो। डेढ़ प्रहर दिन चढ़े यात्रा का अच्छा मुहूर्त्त है ।"

"त्रिविक्रम, तुम कैसी बातें कर रहे हो, मेरी तो बुद्धि कुछ काम नहीं कर रही है। बालबच्चे पटने में हैं, मैं उन्हें छोड़कर कहाँ जाऊँ ?"

"तुम्हें बालबच्चों को छोड़ने के लिये कौन कह रहा है ? उनसे बहुत शीघ्र तुम्हारी भेंट होगी ।"

"तो फिर मुझे इस समय कहाँ जाना होगा ?"

"विधिनिर्दिष्ट पथ पर ।"

"किधर है वह पथ ?"

"पूर्व दिशा की ओर ।"

"तो चलो ।"

हरिनारायण और त्रिविक्रम उठे। गृहस्वामी ने सेवक की भाँति उनका अनुसरण किया। भोजनोपरांत दोनों व्यक्तियों ने पैदल ही गंगा तट की ओर प्रस्थान किया। किनारे पर एक छोटी सी नाव उनकी प्रतीक्षा कर रही थी। उनके बैठ जाने पर माँझी ने नाव खोल दी।

अनुकूल प्रवाह में जाकर नाव पूर्व दिशा को ओर बढ़ने लगी। संध्या समय जब माँझी नाव को किनारे लगाने का उद्योग कर रहा था, तभी एक मल्लाह बोल उठा—"बादशाही नाव !"

माँझी उठकर खड़ा हो गया। उसने देखा कि एक बहुत बड़ी नाव तीर की तरह उनकी ओर बढ़ी चली आ रही है।

बादशाही नाव में केवल दो आरोही थे किंतु मल्लाहों की संख्या पचास के लगभग थी। दूर से छोटी नाव को देखकर आरोहियों में से एक ने अपने माँझी से कहा—"माँझी, नाव रोकने के लिये कहो।"

दूर से ही माँझी चिल्लाया—"नाव रोको।"

पुकार सुनकर छोटी नाव के माँझी ने प्रवाह की ओर अपनी नाव का मुहँ करके लग्घी की टेक लगा दी। देखते देखते बड़ी नाव पहुँची और उसके माँझी ने पूछा—"कहाँ की नाव है ?"

"पटना की।"

"जाओगे कहाँ ?"

"राजमहल।"

"सवारी कितनी है ?"

"एक सन्यासी बाबा और एक बूढ़े ब्राह्मण हैं।"

उत्तर सुनकर बड़ी नाव के पूर्वोक्त आरोही ने कहा—"सवारियों से बाहर आने के लिये कहो।"

किंतु छोटी नाव का माँझी कुछ बोले, इसके पहले ही हरिनारायण बोल उठे—"यह तो असीम जान पड़ते हैं।"

इतना कहते कहते वे स्वयं बाहर आ गए। उन्हें देखते ही बड़ी नाव के दोनों आरोही हर्षोत्फुल्ल हो उठे। हरिनारायण ने उन्हें पहचान

कर कहा—"अरे! असीम, सुदर्शन! तुम लोग कहाँ से? कैसे पता लगा? सुदर्शन, तुम रोते क्यों हो?"

असीम बोले—"जिस नाव से आप आ रहे थे उसके मल्लाहों ने जाकर बताया कि आप एक नागा संन्यासी के साथ कहीं चले गए। वे आपके साथ जानेवाले थे मगर साँप के डर के मारे नहीं जा सके। आप शीघ्र पटना लौट चलें, बड़ी विपत्ति का सामना है।"

"तुम लोग तो अच्छे हो, फिर विपत्ति कैसी?"

"कल रात में कोई मेरा नाम बताकर सुदर्शन को बुला ले गया। सुदर्शन के चले जाने पर कुछ लोग जबर्दस्ती दुर्गा और बहू को उठा ले गए। फौजदार और कोतवाल तक को ढूँढ़ने पर कोई पता नहीं चला।"

वृद्ध ब्राह्मण सिर थामकर बैठ रहे। इसी समय भीतर से निकलकर त्रिविक्रम ने कहा—"हरिनारायण, तुम व्यर्थ चिंता मत करो, तुम्हारी बहू और बेटी का कोई अनिष्ट न होगा। वे दोनों सकुशल हैं।"

त्रिविक्रम की बातों पर हरिनारायण विषादपूर्वक हँसे और बोले—"तुम पागल हो गए हो त्रिविक्रम! तुम्हीं ने देश लौट चलने के लिये कहा था। कहा ही नहीं, तुमने तो मुझे लेकर प्रस्थान भी कर दिया। लेकिन अब देश लौटना मेरे लिये बिलकुल असंभव है।"

त्रिविक्रम बोले—"पर तुम पटना जा नहीं पाओगे; तुम्हें देश ही चलना है।"

"पागल की बातें! बेटी बहू को डाकू उठा ले गए। विदेश में बंधु-बांधव-विहीन पड़ा हूँ, जाति धर्म का नाश आसन्न है, और मैं देश

लौटूँ ? त्रिविक्रम, सचमुच क्या तुम्हारी बुद्धि एकदम भ्रष्ट हो गई है ?"

"देखो भाई, बुद्धि की भ्रष्टता और स्वच्छता मेरी समझ में अभी तक नहीं आई है, मगर इतना जान रखो कि त्रिविक्रम जो कुछ कह देता है वह प्रायः अन्यथा नहीं होता ।"

इसी समय असीम ने त्रिविक्रम के पास आते हुए कहा—"महा-राज, आपको तो पहले भी कहीं देखा है ।"

"हाँ, देखा है ।"
"किंतु आपका नाम स्मरण नहीं होता ।"
"मेरा नाम तो तुमने सुना नहीं था बेटा कि स्मरण रखते ।"
"किंतु आपका चेहरा पहचाना हुआ प्रतीत होता है ।"
"बताया न बेटा, कि मेरी तुम्हारी भेंट हो चुकी है ।"
"मगर कहाँ हुई है, यह स्मरण नहीं होता ।"
"जब समय आएगा, तब स्मरण भी हो जायगा ।"

असीम त्रिविक्रम से और कुछ न कहकर हरिनारायण से बोले—"विद्यालंकार जी, विलंब करने की कोई आवश्यकता नहीं है। संध्या हो चली है, आप इस नाव पर आ जाइए ।"

तत्काल त्रिविक्रम ने कहा—"बूढ़े आदमी हैं बेटा, इतनी ऊँची नाव पर चढ़ाकर क्या करोगे ? माँझियों से कह दो कि हमारी नाव को भी अपनी नाव में बाँध ले चलें। प्रवाह की ओर चलने में देर न होगी ।"

असीम ने विस्मित होकर पूछा—"प्रवाह की ओर ?"
"और क्या बेटा राजमहल उलटी ओर है ?"

"राजमहल ? मालिक क्या···?"

हरिनारायण बोल उठे—"तुम त्रिविक्रम को बकने दो असीम; चलो, मैं अभी लौटूँगा ।"

त्रिविक्रम हँसे; बोले—"कोई उपाय नहीं है हरि, यह बड़ी नाव भी पटना नहीं लौटेगी । तुम में से कोई भी पटना नहीं लौटेगा, सबको देश लौटना होगा ।"

असीम ने हँसते हुए कहा—"महाराज जी, अगर विद्यालंकार महाराज पर यह विपत्ति न भी आती तो भी मैं देश न लौटता । मैं सिपाही हूँ, स्वयं बादशाह मेरा पालन कर रहे हैं । मुझे तो अभी दिल्ली प्रस्थान करना होगा ।"

"प्रस्थान कर सकते हो, मगर पहुँचोगे कहाँ जाकर इसे कौन जानता है ?"

असीम ने कहा--"मैं तो सेवक हूँ, स्वामी जब जैसा आदेश देंगे, मुझे शिरोधार्य होगा । स्वामी का आदेश है कि तुम्हें दिल्ली चलना होगा, तो मुझे दिल्ली जाना ही पड़ेगा ।"

"स्वामी का सामर्थ्य ही कितना है कि तुम्हें दिल्ली ले जायँगे ? जानते हो, उस स्वामी के भी ऊपर एक स्वामी और हैं ?"

हरिनारायण उतावले होकर बोले—"त्रिविक्रम, इस समय बहू और बेटी की खोज में मैं तो पटना जा रहा हूँ । तुम आगे बढ़ो, मैं शीघ्र ही लौटूँगा । इस विपत्तिकाल में विशेष बाधा मत दो भाई ।"

त्रिविक्रम ने कहा—"मैं बिलकुल बाधा नहीं दूँगा, किंतु तुममें से किसी का पटना लौटना न होगा । बेटी बहू के लिये चिंतित मत होओ । वे पास ही हैं और शीघ्र ही उनसे तुम्हारी भेंट होनेवाली है ।"

"फिर वही पागलपन की बात! वे डाकुओं के चंगुल में पड़ी हैं, बिना उन्हें मुक्त किए कैसे चलूँ?"

"जिनके द्वारा उनकी मुक्ति होगी वह उनके साथ ही है। तुम लोग कोई भी उन्हें छुड़ा नहीं पाओगे—यहाँ तक कि प्रयत्न करने पर भी उनसे भेंट नहीं कर सकोगे।"

किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर हरिनारायण ने पूछा—"तो क्या करूँ?"

त्रिविक्रम ने कहा—"दोनों नावों को किनारे लगाओ, उतरना होगा।"

चौवनवाँ परिच्छेद

मुन्नी की जासूसी

जिस मकान में दुर्गा तथा उसकी भौजाई वंदी थीं उसके पास ही एक बड़ा सा तालाब था। तालाब के किनारे एक बड़ा पुराना पीपल का पेड़ था जो एक ओर लटककर तालाब के जल का स्पर्श कर रहा था। उसकी शाखा प्रशाखाओं ने फैल-फैलकर नए वृक्षों का रूप ग्रहण कर लिया था। अपनी वंदिनियों से कुछ आहार करने का आग्रह करने जब नवीन उनकी कोठरी के भीतर गया तब पीछा करनेवाली दोनों स्त्रियाँ उसी पीपल के झुरमुट की आड़ में बैठी विश्राम कर रही थीं।

कोठरी के भीतर जाने पर दोनों स्त्रियों में से किसी ने भी नवीन की ओर उलटकर देखा तक नहीं। नवीन ने पूछा—"माँ जी, आप लोग कुछ ग्रहण नहीं करेंगी?"

दोनों स्त्रियाँ सिर से पैर तक वस्त्रों में लिपटी थीं। वे हिलीं डुलीं भी नहीं, न कुछ उत्तर दिया। नवीन फिर बोला—"तीसरा पहर हो गया।"

फिर भी कुछ उत्तर नहीं मिला। तभी पीपल के नीचे बैठी स्त्रियों में से एक ने गाया—

प्रिय छोड़ चले, पूनम अँधियारी हो चली।

सपाट मैदान में जाता हुआ पथिक आकाश में बिजली चमकने पर जैसे चौंक पड़ता है, वैसे ही कंठस्वर सुनकर नवीन चौंक पड़ा और तुरंत उस कोठरी से बाहर निकल आया। द्वार बंद करके जब वह तालाब के किनारे आया तब गीत की कड़ी गूँज रही थी—

दिन सोने का, रात रजत की,
मनचाही सब बात जगत की,
पर चूक जरा सी गई, हाय ! सब खो चली।

नवीनदास का भय जाता रहा। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि मेरा यौवन लौटा आ रहा है। विघ्न बाधाओं की चिंता छोड़ वह पीपल के पेड़ की ओर अग्रसर हुआ। गायिका ने उसकी ओर देखा नहीं, वह एकाग्र मन से गाती रही—

प्रिय छोड़ चले पूनम अँधियारी हो चली।

गीत समाप्त होने पर नवीन ने व्यग्रतापूर्वक पूछा—"तुम,...आप यहाँ ?"

गायिका बोली—"मैं भिखारिन ठहरी बाबू साहब, रोज रोज एक जगह कहीं भीख मिलती है ? मुझे तो नित्य नई नई जगहों में जाना पड़ता है।"

"कल तुम आईं नहीं ?"

"भीख माँगने निकल गई थी। मगर मैंने आदमी भेज दिया था।"

"किसको ?"

"क्यों, मुन्नी बाई के हिंदू नौकर को ?"

"वह क्या तुम्हारा आदमी था ? मैं तो उसकी बात ही नहीं समझ सका। और चेहरा उसका कैसा विकट था !"

मुन्नी थोड़ा मुसकुराई। मुसकुराहट देखकर प्रौढ़ नवीनदास का माथा घूमने लगा। मुन्नी बोली—"बाबू साहब, अच्छे या बुरे चेहरे से आपको क्या करना है। आपको जाना है मुन्नी बाई के मकान तक और उसे राजी करके चार पैसा पैदा करने का उपाय करना है। बुरे चेहरेवाले आदमी से ही अगर आपका काम बनता है तो अच्छे चेहरे वाले को लेकर क्या कीजिएगा ? आपको क्या पता कि मुन्नी बाई का वह काफिर गुलाम उसकी नाक का बाल है। पटनावालों का कहना है कि मुन्नीबाई और उस गुलाम में कोई अंतर नहीं है।"

"मैं यह सब क्या जानूँ बीबी साहब। मैं तो तुम्हारे नौकर की तरह तुम्हारे आसरे खड़ा था। जब तुम नहीं आईं तब उस हब्शी गुलाम को भी लौटा दिया।"

"आपने अच्छा नहीं किया बाबू साहब। इन सब मामलों में मिजाज दिखाने से काम नहीं बनता।"

"तुम इस समय वापस पटना जाओगी ?"

"नहीं, आज नहीं जाऊँगी; आज तो देखती हूँ यहीं रहना होगा।"

"मुझे भी शायद रहना पड़ेगा। चलो, तुम्हारा डेरा देख आऊँ।"

"भिखारिन का डेरा कैसा बाबू साहब ! जहाँ साँझ हुई वहीं डेरा। कोई मसजिद होगी तो उसमें पड़ रहूँगी, या नहीं किसी कब्र पर सिर टेककर रात काट दूँगी।"

मुन्नी के साथवाली स्त्री ने कहा—"एक मसजिद यहीं पास में है। आज रात में वहीं रहा जाय तो कैसा हो ?"

मुन्नी ने आग्रहपूर्वक कहा—"चलो, देख आया जाय।"

उनमें से किसी ने नवीन से कुछ कहा नहीं मगर वह उनके पीछे पीछे हो लिया।"

तालाब के उस पार विस्तृत अमराई के बीच में एक पुरानी मसजिद थी। थी तो वह छोटी, पर दो तल्ले की थी। नीचे खंडवाले मेहराबों में दरवाजे लगाकर उन्हें भी एक कोठरी का रूप दे दिया गया था।

पहले मुन्नी ऊपर चढ़ गई। उसने देखा कि मसजिद के भीतर दो तीन खजूर की चटाइयाँ, दो तीन मिट्टी के बरतन और कुरानशरीफ की एक फटी पुरानी प्रति पड़ी है। नीचे आकर मुन्नी ने देखा कि चारों ओर चार चार मेहराब बने हैं जिनमें एक को छोड़कर बाकी सब बंद कर दिए गए हैं। भीतर दो तीन ताबूत, मुहर्रम की ताजिया का एक ढाँचा और खजूर की एक पुरानी झाड़ू है। मुन्नी ने झाड़ू उठाई और कोठरी की सफाई में जुट गई। नवीन हड़बड़ाकर उसके हाथ से झाड़ू लेने गया, किंतु उसने दिया नहीं। नवीन ने तब ताजिए का ढाँचा उठाया और उसे कोठरी के एक कोने में रख आया। अवसर पाकर मुन्नी ने अपनी संगिनी को कोठरी से बाहर चली जाने का संकेत किया और स्वयं झाड़ू लगाती लगाती कोठरी के द्वार की ओर बढ़ने लगी। नवीन एक बड़ा सा ताबूत एक ओर से खिसकाकर दूसरी ओर ले जाने की चेष्टा कर रहा था। मुन्नी बिजली की तरह कोठरी से निकली और दरवाजा बाहर से बंद कर लिया। उसने संगिनी से कहा—"तू यहीं बैठी रह, गाँव से कोई आदमी आए तो उससे कह देना कि फरीद खाँ ने हुक्म दिया है कि बिना मेरे आए दरवाजा हरगिज न खोला जाय।"

नवीन भीतर दरवाजे के पास आकर कहने लगा—"बीबी साहब, ओ बीबी साहब! अरे दरवाजा क्यों बंद कर लिया?"

उसकी बातों का उत्तर दिए बिना मुन्नी साँस रोककर भागी।

भोजन बनाते बनाते नवीन को खोज खबर लेने आकर सरस्वती ने देखा कि घर में कोई नहीं है। वैष्णवी बड़बड़ाने लगी—"यह बुड्ढा एकदम सठिया गया है। ब्राह्मण की दो दो स्त्रियों को व्यर्थ पकड़ लाया है; तीन पहर दिन बीता, उनके खाने का ठिकाना तक नहीं, अपने भी बिना खाए पिए न जाने कहाँ गायब हो गया।"

सामने खेत में एक कृषक हल चला रहा था। वैष्णवी ने उससे नवीन के बारे में पूछा। उसने नवीन को तालाब की ओर जाते देखा था इसलिये पीपल के पेड़ की ओर इंगित कर दिया। वैष्णवी ने चावल की हाँडी में पानी डाला, गीला गमछा सिर पर रखा और नवीन की खोज में पीपल की ओर चली।

मुन्नी ने दूर से देखा कि सरस्वती घर से बाहर जा रही है। वह दौड़कर दूसरी ओर से घर के भीतर घुसी और एक एक करके सब कोठरियाँ देख लेने पर बंद कोठरी के पास आई। मुन्नी का कंठस्वर सुनकर नवीन इतना विचलित हो गया था कि वह ताला लगाना तक भूल गया था। द्वार खोलने पर उसने देखा दुर्गा और बहू उस समय भी पड़ी हुई हैं। उसने पुकारा—"बहिन जी, ओ बहिन जी! जल्दी उठिए! डरिए मत, मैं हूँ मुन्नी। उस आदमी को एक जगह बंद कर आई हूँ और सरस्वती बाहर गई है। वह तुरंत लौटेगी। जल्दी उठिए और भागिए यहाँ से।"

दोनों उठीं। उनका हाथ पकड़े मुन्नी जिधर से आई थी उधर ही से बाहर हो गई।

उस समय दिन का चौथा प्रहर आरंभ हो चुका था।

पचपनवाँ परिच्छेद

नवीन की मुक्ति

सायंकाल पर्यंत गाँव के चारों ओर ढूँढ-खोजकर सरस्वती हताश हो लौट आई और चूल्हे की बुझी हुई अग्नि को पुनः जलाकर भोजन बनाने में जुट गई। भोजन बन जाने पर आहार करते करते उसे स्मरण हुआ कि दोनों ब्राह्मण स्त्रियों ने अभी तक कुछ ग्रहण नहीं किया है। स्वभाव से सरस्वती कठोरहृदया नहीं थी। दुर्गा और बड़ी बहू की दशा का स्मरण होते ही भोजन की ओर से उसे अरुचि हो गई। उस समय अँधेरा हो रहा था। चिड़िया उड़ गई है और पिंजड़ा खाली पड़ा हुआ है, इसे वह जान नहीं पाई। अँधेरे में सूनी कोठरी के दरवाजे पर खड़ी होकर बारबार पुकारने पर भी जब उसे उत्तर नहीं मिला तब उसने कोठरी के भीतर जाकर चारों ओर टटोलना आरंभ किया। ढूँढना समाप्त होने पर उसने अपने मन में सोचा कि धूर्त नवीनदास मुझे धोखा देने के लिये दोनों स्त्रियों को लेकर भाग गया। दुःख और क्रोध से गरजती हुई सरस्वती घर से बाहर निकली।

उसी दिन सायंकाल एक बुड्ढा मुसलमान अकेले उस पुरानी मसजिद में आया। उसकी दृष्टिशक्ति जवाब दे चुकी थी और बुढ़ापे के कारण श्रवणशक्ति भी समाप्तप्राय थी। कान के पास जाकर गला फाड़-

कर चिल्लाए बिना उसको कुछ सुनाई पड़ना असंभव था। यह वृद्ध व्यक्ति जब मसजिद के पास पहुँचा तब उसके पैरों की आहट सुनकर बंदी नवीनदास ने चिल्लाना आरंभ किया। किंतु नापित-कुल-तिलक का अभाग्य था कि उनकी दहाड़ का लेश मात्र भी उस वृद्ध के कानों में प्रविष्ट नहीं हुआ। मसजिद के पास आकर वृद्ध जब सीढ़ी पर चढ़ने लगा तब हताश हो नवीन जोरों से किवाड़ पीटने लगा। प्रचंड आघात से किवाड़ों के साथ साथ उस पुरानी मसजिद की दीवार भी हिल उठी। दृष्टि-श्रुति-विहीन वृद्ध ने इस कंपन का अनुभव किया। वह सीढ़ियों से नीचे उतर आया और दरवाजे के सामने खड़े होकर कंपन का कारण ढूँढने की चेष्टा करने लगा। किंतु कुछ समझ न सकने के कारण जल्दी जल्दी गावँ की ओर वापस चला गया।

गाँव की सीमा पर एक युवक से भेंट होने पर वृद्ध ने उसे अपने लौट आने का कारण बताया। युवक मुसलमान था, दिन डूबने पर कंधे पर हल लादे घर लौट रहा था। पहले वह वृद्ध की बात पर उस पुरानी मसजिद तक जाने में सहमत नहीं हुआ किंतु अंत में कुतूहलवश वृद्ध के साथ लौट पड़ा। ये लोग जब मसजिद के पास पहुँचे और नवीनदास ने इनके पदशब्द सुने तो वह पुनः चिल्ला-चिल्लाकर पुकारने लगा। वृद्ध ने तो उसका चिल्लाना नहीं सुना किंतु किसान युवक उसे सुनते ही भय से जड़वत् खड़ा हो गया। बहुत अनुनय विनय करने पर भी वृद्ध उसे दरवाजे के पास नहीं ला सका।

मुन्नी ने जिस समय नवीनदास को कोठरी में बंद किया था उस समय प्रौढ़ नापित को पहले किंचित् मनस्तोष हुआ था। उसकी धारणा थी कि मुन्नी धीरे धीरे मेरी ओर अनुरक्त हो रही है और यह कारा-वास केवल उस अनुराग का पहला लक्षण है। किंतु एक दंड समय

बीत जाने पर भी बीबी साहब ने जब दरवाजा नहीं खोला, यहाँ तक कि उसके इतने कातर अनुरोध का कुछ उत्तर तक देने के लिये वह द्रवित नहीं हुई तब नवीन के मन में संदेह का उदय हुआ। अब उसने अपने छुटकारे की खोज करना स्वयं आरंभ किया। मसजिद के नीचे चारों ओर जो तीन तीन दरवाजे थे उनमें दुर्भाग्यवश ग्यारह दरवाजे स्थायी रूप से बंद रहनेवाले थे। बाहर जाने का एकमात्र दरवाजा बाहर से बंद था। दरवाजा खोल न सकने पर नवीन भीतर से उसे तोड़ने की चेष्टा करने लगा और इसी चेष्टा में उसने दोनों ताबूत तोड़ डाले। फिर भी दरवाजा नहीं टूटा तो वह उच्च स्वर से चिल्लाने लगा। चिल्लाते चिल्लाते उसका कंठ और तालु सूख गया, तब जाकर वह चुप हुआ। नवीन जैसे ही चुप हुआ था वैसे ही वृद्ध मुसलमान पहली बार मसजिद तक आया था।

किसान युवक को साथ लेकर वृद्ध जिस समय लौटा उस समय तक नवीन का गला बैठ चुका था। अंधकार तथा निर्जन स्थान में उसके विकृत कंठ के चीत्कार ने युवक को भयभीत कर दिया। चिल्लाने पर भी जब उसे उत्तर नहीं मिला तब वह दरवाजा पीटने लगा। दरवाजे पर पहली चोट पड़ते ही युवक 'जिन, शैतान!' केवल ये दो शब्द कहता हुआ साँस रोके भाग खड़ा हुआ। वृद्ध ने यद्यपि उसकी बात नहीं सुनी, फिर भी उसकी चेष्टा से समझ गया कि वह बहुत अधिक भयभीत हो गया है। इसलिये वह भी वहाँ व्यर्थ रुका नहीं, चला गया।

किसान युवक जिस समय गाँव की सीमा पर पहुँचा उस समय कोई बाहरी हिंदू गाँव में से निकलकर कहीं जा रहा था। उसने युवक से पूछा—"भाई, इस गाँव में कोई मुसाफिरखाना है?"

युवक ने कुछ सुने बिना कहा—"शैतान ! जिन !" और अन्य किसी प्रश्न की प्रतीक्षा किए बिना जल्दी जल्दी भाग गया।

आगंतुक कहीं बाहर का रहनेवाला था और अपना परिचय देने जा रहा था। युवक को भागते देख उसने स्वगत भाव से कहा—"इस गाँव के जिन और शैतान जान पड़ता है यहाँ के रहनेवालों की अपेक्षा अधिक दयालु हैं, इसलिये मनुष्य न मिलने पर जिन या शैतान के ही पास रहने में कोई दोष नहीं है।"

कुछ दूर जाते जाते उसे वही वृद्ध मुसलमान मिला। उससे उसने यथासंभव नम्रतापूर्वक पूछा—"जिन कहाँ है साहब ?"

वृद्ध ने कुछ सुना तो नहीं किंतु मंत्रमुग्ध व्यक्ति की तरह दाहिने हाथ की तर्जनी से मसजिद की ओर निर्देश कर दिया। आगंतुक बिना कुछ और जिज्ञासा किए उसके बताए हुए स्थान की ओर बढ़ गया।

उसकी आहट सुनकर नवीनदास पहले की तरह चीत्कार करने और दरवाजा पीटने लगा, किंतु आगंतुक बिना घबड़ाए मसजिद की सीढ़ी पर चढ़ गया। क्लांत एवं विकृतकंठ नवीनदास जब चुप हो गया तब आगंतुक ने धीरे धीरे दरवाजे के पास जाकर पूछा—"दोस्त, तुम क्या सचमुच शैतान हो ?"

प्रश्न सुनकर नवीन हक्का बक्का हो गया, उससे कुछ उत्तर देते नहीं बना। थोड़ी देर बाद आगंतुक ने पुनः पूछा—"क्यों दोस्त, जवाब क्यों नहीं देते ? तुम सचमुच शैतान हो ? मुझे इस समय शैतान की ही जरूरत है।"

नवीन इस बार भी उसके प्रश्न का तात्पर्य नहीं समझ सका किंतु हिम्मत करके वह बोला; उसने कहा—"मैं शैतान नहीं, आदमी हूँ; तुम दरवाजा खोल दो, तुम्हें मुनासिब ईनाम मिलेगा।"

आगंतुक ने हँसकर कहा—"जितने जिन होते हैं, सब ऐसा ही कहते हैं। उसके बाद छोड़ देने पर हड्डी पसली तोड़कर चले जाते हैं। मुझे जितना बेवकूफ समझ रहे हो जिन साहब, उतना बेवकूफ मैं नहीं हूँ। किस देश के जिन हो तुम ?"

नवीन ने समझा कि आगंतुक मेरे साथ हँसी कर रहा है, इसलिये उसने कहा—"मेरा घर बंगाल में है।"

"हूँ। सुना है मुसलमान आदमी बंगाल में जाते ही भूत हो जाता है। इसीलिये दिल्ली में बंगाल को दोजख कहते हैं। तुम जब मसजिद में बंद हो तो जरूर मुसलमान के भूत हो। और मैं ठहरा हिंदू; सो दरवाजा खोल देने पर बिना हड्डी पसली तोड़े छोड़ोगे थोड़े ही—साथ साथ मुझे भी अपना चेला बना लोगे। हरे, हरे, दोस्त! तुम्हारे खुदा तुम्हारा भला करें।"

आगंतुक को उठकर जाते देख नवीन ने पहले तो अनुनय विनय किया, उसके बाद रोने लगा। लेकिन आगंतुक भी अपने निश्चय पर अटल था, बोला—"मैं गरीब घर का हूँ, पंजाब से बिहार में चार पैसे का रोजगार करने जरूर आया हूँ, मगर प्राण देने नहीं। प्राण ही चले गए तो पैसे का क्या होगा ?"

व्याकुल होकर नवीनदास धीरे धीरे सौदे का मोल बढ़ाने लगा। एक अशरफी से क्रमशः बढ़ते बढ़ते सौदा पाँच अशरफियों पर जाकर पट गया। तब आगंतुक बोला—"दोस्त, शैतान की अशरफी आदमी के हाथ में आने पर हवा होकर उड़ तो नहीं जायगी ? एक नमूना बाहर फेंको, देखूँ जरा।"

"आकुल होकर नवीनदास ने एक अशरफी दरवाजे के नीचे डाल दी। आगंतुक ने उसे लेकर दबाकर, बजाकर, नाना प्रकार से परीक्षा

करके देखा और बोला—"देखो भाई जिन, पाँच अशर्फियों के लालच में दरवाजा खोलने को राजी तो हो गया हूँ, पर दरवाजा खोल देने पर तुमने अगर अशरफी न दी तो ?"

नवीन जितने देवी देवताओं को जानता था उनके नाम ले-लेकर कसम खाने लगा, लेकिन आगंतुक उसपर भी नहीं पिघला। उसने कहा—"ये सब तो हिंदुओं के देवता हैं, तुम ठहरे मुसलमान के भूत !"

नवीन बोला—"दुहाई है धर्म की, मैं हिंदू हूँ।"

"तोबा, तोबा ! औरंगजेब बादशाह के बाद हिंदू का भूत भूलकर भी मसजिद के पास नहीं फटकता।"

'फिर कैसे तुम्हें विश्वास होगा ?"

"नगद तीन अशरफी बयाना निकालो, और बाकी दो भी दरवाजे के नीचे सरकाए रहो।"

एक एक करके नवीन ने और दो अशर्फियाँ सरकाईं। तीन अशरफियाँ हाथ लग जाने पर आगंतुक ने कहा—"जिन साहब, इसमें कोई संदेह नहीं कि तुम अमीर थे। जो हो, तुम जब जिन हो—यानी मुसलमान के भूत—और मैं हिंदू हूँ, तब सावधानी रखना ही कर्त्तव्य है। तुम थोड़ा ठहरो, ये तीनों अशरफियाँ मैं एक आदमी को दे आऊँ।"

उसकी बातें सुनकर नवीन चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगा। उसके रोने चिल्लाने पर कान दिए बिना आगंतुक लंबे लंबे डग भरता हुआ चला गया।

———

छप्पनवाँ परिच्छेद

फरीद का गृहत्याग

बजड़ा और नाव किनारे लग गई। आरोही नीचे उतरे। उस स्थान पर राजमहल का मार्ग नदी तट के किनारे किनारे बल खाता हुआ चला गया था। हरिनारायण इत्यादि ने दूर से ही देखा कि एक रथ बहुत तेजी के साथ पटने की ओर चला जा रहा है। रथ की साज-सज्जा अत्यंत मूल्यवान थी और उसका सारथी कोई संभ्रांत व्यक्ति प्रतीत हो रहा था। दूर से लोगों को आते देख सारथी ने कहा— "मुन्नी जान, नदी की ओर से बहुत से आदमी आ रहे हैं।"

रथ के भीतर से मुन्नी बोली—"रथ रोक दो!"

सारथी बोला—"बाप रे बाप! फरीद खाँ यह काम नहीं कर सकेगा।"

"क्यों फरीद?"

"बेगानी जगह ठहरी, मैं अकेला आदमी हूँ। मेरे हाथ से अगर सात बादशाहत के बराबर पटने की यह दौलत लुट गई तो मुँह दिखाने लायक भी न रहूँगा।"

"बातें रहने दो, रथ रोको।"

"जो हुक्म जनाब का।"

रथ रुका। मुन्नी रथ से नीचे उतरी। नदीतट की ओर से जो लोग आ रहे थे उन्हें देखकर मुन्नी उल्लास से चीख उठी—"या अल्लाह! हे भगवान्! तुम धन्य हो! फरीद, मैं पूरे एक हफ्ते तक तुम्हारी महफिल में मुजरा करूँगी। बहन, नीचे उतरो, तुम्हारे बाबू जी और भाई साहब आ रहे हैं।"

उधर असीम कह रहे थे—"भाई साहब, गेरुआ वस्त्र पहने मुन्नी की तरह कोई स्त्री वहाँ खड़ी है न?"

थोड़ी देर ध्यानपूर्वक देखकर सुदर्शन ने कहा—"मालूम तो ऐसा ही पड़ता है। छोटे राय! यह लड़की भला यहाँ क्यों आई?"

हरिनारायण बोले—"मुन्नी बाई ही है; हम लोगों को बुला रही है।"

सब लोग जल्दी जल्दी रथ की ओर बढ़े। दुर्गा को रथ से नीचे उतरते देख वृद्ध विद्यालंकार ने दौड़कर उसे अपनी गोद में उठा लिया। अंधकार उस समय गाढ़ा होता आ रहा था। फरीद खाँ ने रथ के दीपक जला दिए और सब लोग उसके चारों ओर बैठ गए। मुन्नी के मुँह से पूरा वृत्तांत सुनकर असीम ने कहा—"अब आप लोग क्या करेंगे?"

त्रिविक्रम बोले—"सब लोग इसी समय मुर्शिदाबाद के लिये प्रस्थान करेंगे।"

हरिनारायण विस्मयपूर्वक बोले—"तुम फिर वही बात कहते हो?"

त्रिविक्रम—"वही तो तुमसे बराबर कहता आ रहा हूँ।"

हरिनारायण—"जाऊँगा क्योंकर?"

त्रिविक्रम—"क्यों, कन्या और बहू तो मिल गईं?"

हरि—"बरतन भाँड़े ?"

असीम—"विशेष कुछ बाकी नहीं बचा। नवीन जो कुछ छोड़ आया था उसे पड़ोसियों ने आपस में बाँट लिया।"

मुन्नी—"रात में पटना लौटना ठीक नहीं, गुंडे फिर हमला कर सकते हैं।"

हरि—"बरतन भाँड़ा जब कुछ बचा ही नहीं तब पटना जाकर क्या होगा ? त्रिविक्रम, तुम्हारा ही कहना ठीक है, हम लोग अब मुर्शिदाबाद के लिये प्रस्थान करेंगे।"

त्रिवि--"तो फिर विलंब करने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसी समय यात्रारंभ कर देना उचित है।"

हरि--"असीम, तुम कहाँ जाओगे ?"

त्रिवि--"बहुत दूर--सूती के मुहाने तक !"

असीम--"चलिए, आपलोगों को कुछ दूर तक पहुँचा दूँ। बादशाह इलाहाबाद के लिये प्रस्थान कर चुके हैं और भूपेन भी फौज के साथ गया है।"

त्रिवि—यही तो मैं भी कह रहा हूँ भाई ! विवाह के समय मुझ को ही···।"

असीम—"विवाह ! यह आप कहते क्या हैं ?"

मुन्नी—"रास्ते में देर करने का काम नहीं है। पटने के आस पास की जगहें अच्छी नहीं हैं।"

सब लोग उठ खड़े हुए। मुन्नी ने त्रिविक्रम के पास जाकर पूछा—"आप क्या फरमाते हैं ? ये बंगाली राजा साहब क्या शादी करने के लिये जा रहे हैं ?"

त्रिविक्रम हँसने लगे। थोड़ी देर बाद उन्होंने उत्तर दिया—"जरूर। आप भी उनके साथ साथ आएँगी।"

"कभी नहीं।"—कहती हुई मुन्नी अलग चली गई।

चलते चलते सहसा हरिनारायण ने पूछा—"मुन्नी कहाँ गई?"

सब लोगों ने देखा कि मुन्नी और फरीद खाँ उन लोगों के साथ नहीं हैं।

असीम बोले—"फरीद खाँ भी नहीं दिखाई देते।"

त्रिविक्रम बोले—"वे दोनों रथ पर वापस चले गए। रात अधिक हो चुकी है, अब उन्हें ढूँढने जाने से काम नहीं होगा।"

सब लोग नाव पर आरूढ़ हुए। बजड़ा और नाव राजमहल की ओर अग्रसर हुई।

त्रिविक्रम के पास से हटकर मुन्नी ने फरीद खाँ का वस्त्र खींचकर संकेत किया और धीरे धीरे दोनों अंधकार में लुप्त हो गए। फरीद ने अनुभव किया कि वे दोनों दूसरे रास्ते पर जा रहे हैं। धीरे धीरे दोनों रथ के पास लौट आए। फरीद ने पूछा—"अब कहाँ चलना है?"

मुन्नी ने विस्मयपूर्वक कहा—"क्यों, पटना?"

फरीद ने प्रसन्नतापूर्वक सलाम बजाते हुए कहा—"जो हुक्म जनाब का।"

"यहाँ से शहर कितनी दूर है?"

"आठ दस कोस होगा।"

"कब तक पहुँच जायँगे?"

"सूर्योदय के पहले।"

रथ चलने लगा। प्रायः दो दंड के बाद रथ रोककर फरीद खाँ ने पूछा—"मुन्नी बीबी, जाग रही हो?"

मुन्नी बोली—"हाँ। मैं तो सोई ही नहीं। तरह तरह की चिंताओं के कारण नींद नहीं आई।"

"तुमसे एक बात पूछने के लिये रथ रोका है। अगर इजाजत दो तो पूछूँ।"

"ऐसी कौन सी बड़ी बात है फरीद भाई कि रथ रोकना पड़ा?"

"मुन्नी बीबी, तुम्हारे लिये तो वह बात जरा सी है, मगर मेरे लिये बहुत बड़ी है—इस सारी दुनिया के बराबर बड़ी है।"

"मुझसे नाराज तो नहीं हो गए फरीद भाई? इन दो तीन बरसों के भीतर तुमने मुझे कभी 'मुन्नी बीबी' कहकर नहीं पुकारा था!"

"बिलकुल ठीक है। देखो मुन्नी, एकाएक मुझे एक बात याद आ गई जिसकी वजह से मेरी आँखों में यह दुनिया बदली हुई दिखाई देती है। बहुत दिनों से किसी कोने में जिस स्वर की धीमी धीमी भनक आ रही थी वह जैसे एकबारगी झंकार कर उठा और उसके साथ ही सारे शरीर में जैसे बिजली की धारा प्रवाहित हो गई। मन का वेग सँभाल न सकने के कारण रथ रोक दिया। एक बात पूछूँ मुन्नी?"

"पूछो।"

"निःसंकोच होकर उत्तर देना।"

"दूँगी।"

"देखो मुन्नी, इतने दिनों तक अपनी जिंदगी किस तरह काटी है, यह इस समय अच्छी तरह याद नहीं आ रहा है। कोई पूछे कि तुमने इतने दिनों तक क्या क्या किया तो जान पड़ता है उसे कुछ जवाब न दे पाऊँगा। मेरे पिता और पितामह ने जिस प्रकार की जिंदगी बिताई थी, वैसी जिंदगी तो मैने पहले बिताई नहीं। मुन्नी, जान पड़ता है जिंदगी की रफ्तार में तब्दीली करने का वक्त आ गया है। यह तब्दीली

बिलकुल आसानी से होनेवाली नहीं है; और शायद उसे मैं अकेला कर नहीं सकूँगा। बोलो, मेरी मदद करोगी?"

"कैसे फरीद भाई?"

"इस कैसे का जवाब एक बात में न दे पाऊँगा। मुन्नी, मेरा मन कह रहा है कि जिंदगी की राह में अगर कदम कदम पर तुम्हारे साथ का सहारा मिलता रहेगा तो मेरे पैर कभी डगमगाएँगे नहीं। तुम्हारे जैसा साथी पाने का मुझे कोई हक नहीं है, क्योंकि मैं शराबी और लंपट हूँ—मन की चंचलताओं को अपने बस में करने की कोशिश मैंने कभी नहीं की। मेरे मुकाबिले में तुम साक्षात् देवी हो—यह जानते हुए भी तुमसे यह बात पूछ रहा हूँ। मुझसे जैसे कोई कह रहा है कि तुम्हारा सहारा मिले बिना जिंदगी की शुरू शुरू की तूफानी चाल में कोई फर्क नहीं आ सकेगा।"

"फरीद, तुम्हें मालूम है कि मैं कौन हूँ और यह भी मालूम है कि तुम खुद क्या हो?"

"जानता हूँ–तुम रूप और गुण की देवी हो और मैं शराबी, आवारा, लंपट हूँ।"

"जानते हो, तुम एक अमीर के लड़के हो; तुम्हारे पिता हिंदुस्तान के नामी वीर और बादशाह आलमगीर के नामी कर्मचारी हैं और मैं हिंदू तवायफ के मुसलमान जार की लड़की हूँ; पेट के लिये पटने की गली गली में शरीर बेचती फिरती हूँ? फरीद, मैं भला तुम्हारी जिंदगी की लायक साथी हूँ?"

"हाँ मुन्नी, एक बार नहीं सौ बार नहीं हजार बार हाँ। मैं जानता हूँ कि मैं कौन हूँ। पुत्र होने से ही किसी को पिता का दरजा नहीं मिल जाता—उसके लिये वैसी लियाकत हासिल करनी पड़ती है। जिंदगी के

महज थोड़े से शुरू के दिन तुम्हारे साथ गुजरे हैं; हमेशा के लिये अगर तुम्हारा साथ मिलता है तो एक दिन हिंदुस्तान में मैं भी अपने पिता के लायक पुत्र के रूप में अपना परिचय दे सकूँगा, वरना नहीं। मुन्नी, पैदाइश की बातें भूल जाओ। मैं मुसलमान हूँ, मेरे मजहब में हिंदुओं जैसी रोक टोक नहीं है। बोलो, मुझे भी इंसान बनने दोगी ?"

मुन्नी से उत्तर देते नहीं बना। थोड़ी देर बाद फरीद ने पुनः पुकारा—"मुन्नी बीबी !"

रुँधे गले से मुन्नी ने कहा—"क्या है भाई ?"

"मेरे सवाल का जवाब तुमने नहीं दिया ?"

मुन्नी सहसा रथ के बाहर निकल आई और उसने फरीद के दोनों हाथों को अपने हाथों में लेते हुए कहा—"फरीद, यह नहीं हो सकता। तुमने मुझे जो इज्जत दी है, इस दुनिया में वेश्या की लड़की को वह इज्जत कितने आदमी दे सकते हैं ? लेकिन मैं उस इज्जत के काबिल नहीं हूँ—मैं उस इज्जत को किसी तरह भी सँभाल नहीं सकूँगी ? भाई फरीद, मैं भाई की तरह तुम्हारी मुहब्बत करती हूँ। मैं जानती हूँ कि मेरी वजह से तुमने कितनी मलामतें सही हैं; कितने इलजामों, कितनी अफवाहों को तुमने हँसकर उड़ा दिया हैं; किन किन विपत्तियों और मुसीबतों के आगे सीना भिड़ाकर तुमने मुझे बचाया है। फरीद भाई, तुम्हारे ऋण से मेरा उद्धार नहीं हो सकता। तुम मेरे बड़े भाई हो। जिंदगी में कभी भाई का प्यार नहीं पाया था—दो बरसों से उस जगह तुम्हें बिठा रखा है। जब तक जी रही हूँ तब तक छोटी बहन की तरह अपने दिल के किसी कोने में थोड़ी जगह दे सको तभी अपने को भाग्यशाली समझूँगी।"

फरीद चुपचाप सब बातें सुनता रहा। अंतिम वाक्य सुनकर उसे

रोमांच हो आया और थोड़ी देर चुप रहने के पश्चात् उसने कहा—"बहुत अच्छा, जो हुक्म बीबी साहब का!"

मुन्नी रथ के भीतर जाकर बिछौने पर गिर गई। एक दंड के बाद जब उसने सिर उठाकर देखा तब रथ सूना था। वह विह्वल होकर पुकारने लगी—"फरीद, फरीद, फरीद भाई, फरीद खाँ।"

दूर पर्वतों से टकराकर उसकी पुकारों की क्षीण प्रतिध्वनियाँ वापस लौट आईं। दूसरे दिन प्रातःकाल फरीद खाँ का सुसज्जित और सूना रथ पटना लौट आया।

सत्तावनवाँ परिच्छेद

सती का वचन

गंगा का निर्जन तट है। विस्तृत, शुभ्र, रेतीला मैदान झिल्लियों की झनकार से गुंजायमान है। टूटे घाट की सीढ़ी पर बैठी हुई एक तरुणी मनोयोगपूर्वक माला गूँथ रही है। निकटवर्त्ती गाँव के किसी धनिक के यहाँ रोशनचौकी बज रही है। रह-रहकर उसके स्वर युवती को अन्यमनस्क कर दे रहे हैं। दिन का दूसरा प्रहर बीत चुका है और तटवर्ती शुष्क बालुका-राशि तप्त हो गई है। वाद्यध्वनि सुनकर तरुणी बीच बीच में विरक्त होकर माला गूँथना बंद कर दे रही है, और थोड़ी देर बाद पुनः शीघ्रतापूर्वक अधिकाधिक कनेर के फूल धागे में पिरो रही है।

पास में एक कुत्ता चोट खाकर भूँकने लगा। तरुणी अत्यंत विरक्तिपूर्वक सुई और धागा दूर हटाकर उठ खड़ी हुई। गाँव की ओर से परिपूर्ण थाल लिए एक प्रौढ़ा स्त्री आ रही थी। उससे तरुणी ने खिन्न स्वर में पूछा—"मेरे कुत्ते को मार क्यों दिया काकी?"

प्रौढ़ा बोली—"मारती न तो मुझे छू जो देता।"

"तो क्या होता?"

"हाय रे मेरे करम! तुझे कैसे समझाऊँ? कुत्ते का छुआ कहीं खाया जाता है?"

जिस कुत्ते को ढेले से मारा गया था वह इतनी देर में लौटकर तरुणी के पीछे खड़ा हो गया था। उसे देखकर तरुणी पुचकारती हुई उसके सिर पर हाथ फेरने लगी। कुत्ते ने भी अपनी पूँछ हिलाकर कृतज्ञता प्रकट की। प्रौढ़ा की दृष्टि घाट पर रखे हुए कनेर तथा शेफाली को पुष्पराशि की ओर गई। उसे देखकर उसने पूछा—"माला शैल के लिये गूँथ रही है?"

तरुणी कुपित होकर बोली—"शैल के लिये क्यों गूथूँगी? मैं अपने लिये गूँथ रही हूँ।"

"क्यों? तू क्या करेगी माला गूँथकर?"

प्रश्न सुनकर तरुणी का मुख सहसा लज्जा से आरक्त हो उठा। सिर का कपड़ा थोड़ा आगे सरकाती हुई उसने कहा—"आज वे आएँगे न?"

प्रौढ़ा अवसादपूर्वक हँसी; बोली—"तेरा सिर आएगा। तेरे भाग्य में इतना दुःख बदा था! इन फूलों को नष्ट मत कर सती, माला गूँथकर शैल को दे आ।"

प्रौढ़ा की बातें सुनकर तरुणी क्रुद्ध हो गई। सिर का कपड़ा दूर हटाकर बोली—"क्यों दूँ शैल को? उसके ब्याह के दिन दूँगी।"

प्रौढ़ा ने हँसते हुए कहा—"गुस्सा क्यों करती है, आज ही न शैल का ब्याह है?"

"कभी नहीं।"

"पगली, कहीं की! ऐसा कुवाक्य नहीं कहते। सुन; नौबत, रोशनचौकी बज रही है।"

"बजने दो; शैल का विवाह आज नहीं होगा। काकी, वह देखो पच्छिम की ओर बादल उठ रहे हैं। यह देखो, तूफान आ गया। अरे उधर देखो, नाव डूब गई, सब बराती डूब गए।"

"चुप, चुप; अरे, ऐसी बात नहीं कहते सती, पागल हो गई है ? रक्षा करो प्रभो, रक्षा करो। मैं चली बेटा, तुझसे फूल की चर्चा करके नाहक मरने गई।"

"जाना मत काकी; यह जो बालू का स्वच्छ मैदान देख रही हो न, यह अभी जल से भर जायगा और इसी पीपल के नीचे वर की नाव टकराकर चूर चूर हो जायगी।"

प्रौढ़ा रणक्षेत्र से पीठ दिखाकर पलायित हो गई। उसने देखकर भी नहीं देखा कि जाते समय कुत्ते ने छू लिया। तरुणी पुनः माला गूँथने लगी। गाँव का बाजा बंद हो गया था और वहाँ कोलाहल बढ़ने लगा था। एक एक करके कई मालाएँ तैयार हो गईं। तब अपनी गोरी गोरी बाहों पर शुभ्रवर्ण मालाएँ धारण करके वह सुंदरी गंगा तट से लौट गई।

गाँव में ईंट के बने एक मकान के सामने बैठकर एक प्रौढ़ सज्जन भोजनोपरांत हुक्का पी रहे थे। तरुणी उन्हें देखकर रुकी और सिर का घूँघट खींचती हुई उसने पुकारा—"बाबू जी !"

विश्वनाथ चक्रवर्ती बोले—"क्या है, बेटी ?"

लज्जावनत लड़की बोली—"बाबू जी, आज वे आएँगे न ?"

पिता ने चकित होकर पूछा—"वे कौन बेटी ?"

सिर नीचा किए किए, पैर के अँगूठे से भूमि पर कुछ लिखती सी लड़की ने कहा—"तुम्हारे जामाता।"

लड़की की बात सुनकर उन्होंने हुक्का नीचे रख दिया और एक बार गहरी साँस लेने के उपरांत उसे फिर उठाया। कुछ देर बाद लड़की ने पूछा—"बाबू जी, मछुए को बुला लाऊँ ?"

अन्यमनस्क विश्वनाथ चक्रवर्ती ने पूछा—"मछुआ क्या होगा बेटी ?"

"क्यों, मछली पकड़ेगा ? बहुत से लोग आएँगे।"

"बहुत से लोग कहाँ से आएँगे ?"

"क्यों ? उन्हीं के साथ।"

विश्वनाथ ने दूसरी ओर मुहँ फेरकर पुनः दीर्घ निःश्वास लिया। लड़की ने आग्रहपूर्वक पुनः पूछा—"बुलाऊँ मछुए को ?"

रुँधे हुए कंठ से विश्वनाथ चक्रवर्ती बोले—"जा, माँ से पूछ ले।"

लड़की प्रसन्न होकर भीतर गई। विश्वनाथ की पत्नी उस समय भोजनोपरांत कोठरी के सामने बैठी आराम कर रही थीं। लड़की उनके गले से लिपटती हुई बोली—"माँ, मछुए को बुलाने जाऊँ न ?" लड़की के रूखे सूखे बालों की लटें माथे पर से पीछे की ओर हटाकर माता ने स्नेहपूर्वक जिज्ञासा की—"क्यों बेटी ?"

"आज वे आएँगे न ?"

"वे कौन ?"

लाड़ली बेटी ने मानवश मुहँ फिराकर कहा—"क्यों, तुम्हारे जामाता।"

माता की दोनों आँखें जल से भर गईं। उन्होंने अवरुद्ध कंठ से कहा—"घर में मछली है।"

"उतने से नहीं होगा, उनके साथ बहुत से आदमी आएँगे माँ!"

माँ कुछ उत्तर न दे सकीं। अपनी चिरदुःखिनी पुत्री को छाती से लगाकर वे आँसू गिराने लगीं। लड़की ने तब उनकी आँखें पोंछते हुए कहा—"माँ, लोग कहते हैं कि मैं पागल हूँ; मगर मैं कहाँ पागल हूँ ? तुमने मुझे कभी झूठ बोलते सुना है ?"

अट्ठावनवाँ परिच्छेद

सती को पति-प्राप्ति

चारों ओर घोर अंधकार छाया हुआ था। तूफान के भयंकर गर्जन के कारण और किसी प्रकार का शब्द सुनाई नहीं पड़ता था। टूटे हुए वृक्षों और फूस की झोपड़ियों के गिर पड़ने के कारण गाँव का सँकरा मार्ग प्रायः अवरुद्ध हो गया था। उस भयंकर तूफानी रात में सती अकेली उसी रास्ते गंगातट तक आई। उस समय जैसे किसी इंद्रजाल के कारण गंगा का वह सूखा तट लुप्त हो गया था। गंगा का जो प्रशांत वक्ष सनातन से नन्हीं नन्हीं लहरियों से शोभित रहा करता था वह अकस्मात् मानों किसी मादक उत्तेजना के कारण उन्मत्त हो गया था। भीषण झंझावात के कारण नदी का जल प्रशस्त मैदान का उल्लंघन करके घाट की सीढ़ियों पर टक्कर मार रहा था। बिजली कौंधने से सहसा दसो दिशाएँ आलोकित हो उठीं; दूसरे ही क्षण वज्रनिर्घोष करता हुआ बिजली का प्रहार एक वृक्ष के ऊपर हुआ। किंचिन्मात्र भयभीत हुए बिना सती घाट की सबसे ऊँची सीढ़ी पर खड़ी रही।

फिर बिजली चमकी और आकाश मानों हजारों टुकड़ों में विभक्त हो गया। उसके प्रकाश में सती ने देखा कि एक प्रकांड तरंग ने एक नाव को ऊपर उछालकर पुनः गंभीर जल में पटक दिया और वह चूर चूर हो गई। थोड़ी देर बाद लहरें दो एक शव और लकड़ी के

बहुत से टुकड़ों को किनारे लगाकर लौट गईं। सती की इच्छा हो रही थी कि वह दौड़कर जाय और देखे कि कौन कौन लोग मरे हैं किंतु किसी अदृष्ट शक्ति ने आकर उसकी गति में बाधा दे दी।

धीरे धीरे वायु का वेग मंद पड़ा। मूसलाधार वृष्टि होने लगी। सती के कपड़े भीग गए, फिर भी वह वहीं खड़ी रही। थोड़ी देर पश्चात् कुछ दूरी पर मनुष्यों के पदशब्द सुनाई पड़े और उसका हृदय प्रसन्नता से नाच उठा। वह उल्लसित भाव से उन शब्दों की ओर जल्दी जल्दी अग्रसर हुई। एक साथ तीन आदमी आ रहे थे। उनमें से एक ने पूछा—"तुम लोगों को क्या कुछ भी दिखाई नहीं देता है ?"

दूसरा व्यक्ति बोला—"महाराज, बहुत देर से केवल अंधकार ही देख रहा हूँ।"

पहले व्यक्ति ने पुनः पूछा—"क्यों राय जी, यह जगह आपने नहीं पहचानी ?"

तीसरे व्यक्ति ने उत्तर दिया—"कैसे पहचानूँगा ?"

"यह देखिए गंगा जी का घाट है, पास ही तालाब है जिसके टूटे फूटे घाट पर एक स्यार खड़ा है। गाँव में प्रकाश नहीं है; जान पड़ता है बहुत से मकान गिर गए हैं।"

इसी समय दूसरे व्यक्ति ने पूछा—"महाराज, आपको ये सब चीजें क्या सचमुच दिखाई पड़ रही हैं ? मुझे तो यह सब कुछ जादू जैसा जान पड़ता है।"

"जादू नहीं है सुदर्शन ! बहुत दिनों से मैं केवल अंधकार को ही देखता आ रहा हूँ, इसलिये मेरी आँखों के आगे अंधकार भी दिवा-लोक के समान उज्ज्वल हो जाता है।"

दूर से ही उक्त अंतिम बात सती के कानों तक पहुँची थी और उसे सुनते ही उसे रोमांच हो आया था। उसने कंपित वाणी से जिज्ञासा की—"अंधकार में भी देखनेवाले, कौन हो तुम ?"

उसका प्रश्न सुनकर उस सूचीभेद्य अंधकार में भी तीनों व्यक्ति खड़े हो गए। सती ने पुनः प्रश्न किया—"कौन हो तुम अंधकार में देख सकनेवाले ?"

त्रिविक्रम ने उत्तर नहीं दिया। उन्हें चुप देखकर असीम ने साहस करके कहा—"हम लोग अँधेरे में रास्ता भूल गए हैं माँ जी, आप अगर आ सकें तो हमारे पास चली आवें।"

सती ने पुनः जिज्ञासा की—"तुममें से अँधेरे में जो देख सकते हैं वे कहाँ हैं ?"

त्रिविक्रम फिर भी चुप रहे। सती तब असीम के पास आकर बोली—"बाबू जी, कल आपका विवाह होगा; उधर मुरदा पड़ा हुआ है, उसे मत छूइएगा।"

बिजली फिर चमकी। तीव्र प्रकाश में असीम तथा सुदर्शन ने देखा कि वह स्त्री तरुणी और रूपवती है तथा विवाह के वस्त्र धारण किए हुए है। प्रकाश में त्रिविक्रम को देखकर सती ने उन्हें प्रणाम किया।

असीम ने पूछा—"आप कौन हैं माँ जी ?"

उत्तर मिला—"मैं सती हूँ।"

"इस भीषण रात्रिवेला में आप कहाँ जा रही हैं ?"

"स्वामी के पास।"

"आपके स्वामी कहाँ है ?"

सती ने त्रिविक्रम की ओर इंगित करके कहा—"ये ही मेरे स्वामी हैं।"

लंबी साँस लेकर त्रिविक्रम ने पूछा—"तो तुम्हीं मेरी नियति हो ?"

सती ने कहा—"यह मैं क्या जानूँ; मैं विश्वनाथ चक्रवर्त्ती की लड़की हूँ, इस गाँव में आकर आप मेरे साथ ब्याह कर गए थे।"

"तुम्हें कैसे पता चला कि मैं तुम्हारा पति हूँ ?"

"वही बता गए हैं।"

"वही कौन ?"

"आधी रात को श्मशान में जाने पर वह मेरे साथ बातें करते हैं, लेकिन मैं कभी उन्हें देख नहीं पाती।"

"उन्होंने क्या कहा ?"

"आज कहते थे कि आधी रात के बाद रास्ता भूलकर आप इस जगह आएँगे। उन्हीं के कहने पर मैं आपको रास्ता दिखाकर लिवा ले चलने के लिये आई हूँ।"

वर्षा का वेग बढ़ चला। त्रिविक्रम ने पूछा—"इस समय कहाँ जाना होगा ? मेरे साथ बहुत से आदमी हैं, उन्हें टिकाने की भी व्यवस्था करनी है।"

सती को रंच मात्र आश्चर्य नहीं हुआ। उसने कहा—"यह बात भी उन्होंने बता दी थी। सब लोगों का प्रबंध हो गया है। आपके मित्र अपनी लड़की और बहू के साथ उधर रुके हुए हैं। आप लोग मेरे साथ चलें, गाँव में पहुँचकर आदमी भेज दूँगी।"

अँधेरी रात में तीनों व्यक्ति सती के पीछे पीछे विश्वनाथ चक्रवर्ती के घर पहुँचे।

घर में जाकर सती ने पिता से कहा—"बाबू जी, वे लोग आ गए।"

विश्वनाथ ने आश्चर्यान्वित होकर तीनों व्यक्तियों की ओर देखा। उनके आश्चर्य का कारण समझते हुए त्रिविक्रम ने प्रणाम करके कहा—"मैं ही आपका जामाता त्रिविक्रम हूँ।"

विश्वनाथ का विस्मय फिर भी दूर नहीं हुआ। वे बोले—"बेटा, एक ही दिन तुम्हें देखा था इसलिये पहचान नहीं सका। प्रमाण पाए बिना कैसे तुम्हें जामाता के रूप में अंगीकार करूँ?"

त्रिविक्रम ने हँसकर कहा—"साक्षी, प्रमाण, सब कुछ संग ले आया हूँ। मेरे एक मित्र अपनी लड़की और बहू के साथ प्रायः एक कोस पर रुके हुए हैं। आप उन्हें यहाँ बुलवाने की व्यवस्था कर दें। जामाता न सही, मुझे अतिथि समझें—विपत्ति का मारा भूला भटका ब्राह्मण मात्र।"

विश्वनाथ ने गाँव के दो व्यक्तियों को बुलवाया, दो तीन मशालें तैयार कराईं और उन्हें हरिनारायण की खोज में भेज दिया। असीम और सुदर्शन भी उनके साथ गए। रात्रि के तृतीय प्रहर में लड़की और बहू के साथ हरिनारायण विद्यालंकार ने विश्वनाथ चक्रवर्ती के घर आश्रय लिया।

उसी समय विश्वनाथ के पड़ोसी मित्र-परिवार के घर बड़ा रोना-पीटना मचा। कोई आकर समाचार दे गया कि वर की नाव डूब गई, वर का तथा एक बाराती का शव घाट के पास मिला है।

———

उनसठवाँ परिच्छेद

वृद्ध वैष्णव

रथ से उतरकर मुन्नी पागलों की तरह फरीद खाँ को ढूँढ़ने लगी किंतु अँधेरी रात तथा निर्जन स्थान में उसे फरीद का कोई चिह्न तक नहीं मिला। तत्पश्चात् जिधर उसकी आँखें उठीं उधर ही वह चल पड़ी। चलते चलते एक प्रहर के पश्चात् दूर पर उसे एक प्रकाश दिखाई पड़ा। वह उसी को लक्ष्य करके आगे बढ़ी। पास पहुँचने पर उसने देखा कि एक जनशून्य मंदिर के भीतर दीपक जल रहा है। भीतर जाकर दरवाजे से पीठ सटाकर मुन्नी सो गई।

जब उसकी आँख खुली तब तक सूर्योदय नहीं हुआ था। जगने पर उसने देखा कि एक मोटा ताजा दीर्घाकार वृद्ध दूर खड़ा उसकी ओर देख रहा है। वह हड़बड़ाकर उठी और सिर का वस्त्र ठीक किया।

वृद्ध बोला—"डरने की कोई बात नहीं है बेटी, मैं बुड्ढा आदमी ठहरा; रास्ता चलते चलते तुम्हें अकेली देखकर ठहर गया। इस उम्र में, इतना रूप लिए अकेली कहाँ जा रही हो बेटी? तुमने गेरुआ कपड़ा अवश्य धारण किया है, किंतु संन्यासिनी तो तुम नहीं हो क्योंकि भोग के चिह्न तुम्हारे सारे शरीर से फूटे पड़ रहे हैं। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि घर छोड़े तुम्हें थोड़े ही दिन हुए हैं।"

मुन्नी को ढूँढने पर भी कोई उत्तर नहीं सूझा। तब तक वृद्ध ने पुनः कहा—"बेटी मैं तुम्हारे पितामह की उम्र का हूँ, मुझसे संकोच मत करो। तुम्हारी उँगली में हीरे की जो अँगूठी है उसका मूल्य एक हजार रुपए से कम न होगा। तुम धनी घर की बहू हो, अगर पति से झगड़ा करके चली आई हो तो चलो मैं तुम्हें वहाँ पहुँचा दूँ। मेरे साथ चलने पर तुम्हें कोई दोष न देगा।"

अब मुन्नी को उत्तर देने के लिये बाध्य होना पड़ा। उसने सिर नीचा किए किए धीरे धीरे कहा—"मेरे स्वामी नहीं हैं।"

"तो क्या तुम विधवा हो?"

"नहीं, मेरा विवाह नहीं हुआ है।"

"बहुत अच्छा, तो चलो तुम्हें तुम्हारे पिता के यहाँ पहुँचा आऊँ।"

मुन्नी बड़े संकट में पड़ गई। उस समय उसे फ़रीद खाँ की चिंता लगी हुई थी। बचपन से ही सुख में पला धनिक पुत्र फरीद खाँ उसके लिये अकेला कहाँ चला गया? थोड़ी देर भी उसका समाचार न मिलने से उसके माता पिता कितने व्याकुल हो जाते हैं। न मालूम, आज सायंकाल तक उनकी क्या दशा होगी। मुन्नी उस समय केवल यही सोच रही थी कि मैं किस प्रकार फ़रीद खाँ को समझा-बुझाकर, शांत करके घर वापस पहुँचा दूँ। वृद्ध वैष्णव की बातें उस समय उसे अच्छी नहीं लग रही थीं।

वृद्ध उसके मन का भाव कुछ कुछ समझ रहा था; समझकर वह हँसा। बोला—"बेटी, बुड्ढे की बात कड़वी लग रही है, यह मैं समझ रहा हूँ, किंतु करूँ क्या? मैं तुम्हें इस निर्जन स्थान में अकेली छोड़कर जा नहीं पाऊँगा। गोपाल जब तक तुम्हें सुमति नहीं देते तब तक तुम्हारे ही साथ रहूँगा।"

वृद्ध की अंतिम बात सुनते ही सहसा मुन्नी बोल उठी—"गोपाल कौन ?"

वृद्ध ने चकित होकर पूछा—"बेटी, तुमने हिंदू कन्या होकर गोपाल का नाम नहीं सुना ? मैं तो बंगाली हूँ। मगर इस देश में भी उन्हें 'गोपाल जी' कहकर स्मरण करनेवालों की कमी नहीं है। तुम शायद पंजाबी हो। बेटी, जो गोपाल हैं, वही गोविंद हैं, वही श्रीचंद हैं, वही पांडुरंग हैं, वही पार्थ-सारथी हैं।"

मुन्नी संकुचित हो गई क्योंकि ये समस्त नाम उसके लिये अपरिचित थे। उसने नतमस्तक होकर कहा—"बाबा, मैं हिंदू नहीं, मुसलमान हूँ।"

वृद्ध वैष्णव ने अत्यंत विस्मित होकर पूछा—"तो गेरुआ वस्त्र क्यों धारण किया है बेटी ?"

मुन्नी और भी संकुचित होकर बोली—"मैं हिंदू होना चाहती हूँ।"

वृद्ध खिलखिलाकर हँस पड़े। मुन्नी ने पुनः कहा—"बाबा, मैं तवायफ की लड़की, तवायफ हूँ। यह पेशा छोड़ने के लिये ही संन्यासिनी हुई हूँ।"

वृद्ध ने कहा—"यह बड़ी अच्छी बात है बेटी, मगर धर्म का मार्ग तो मुसलमानों में भी है; फिर अपना धर्म क्यों छोड़ना चाहती हो ? हम लोगों के शास्त्र में कहा है कि अपने धर्म में मर जाना भी श्रेयस्कर है! जो गोपाल हैं, वही परमेश्वर हैं और वही अल्लाह हैं। नाम के अंतर और उपासना के रूप में भेद होने से कुछ आता जाता नहीं। देखो बेटी, मैं वृद्ध हो गया हूँ, सारे दाँत गिर गए हैं, आँखों से भी ठीक ठीक दिखाई नहीं देता। इस संसार में रहते बहुत दिन हो चुके।

जीवन में बहुत कुछ गँवाना और सीखना पड़ा है। इसलिये सब कुछ देख न सकने पर भी अनुभव से समझ लेता हूँ। बेटी, मुझसे छिपाती क्यों हो ? बिना किसी गंभीर कारण के आदमी अपना धर्म नहीं छोड़ता।"

वृद्ध की बातें सुनकर मुन्नी का हृदय द्रवित हो गया। वह रो पड़ी। उसे रोते देख वृद्ध ने स्नेह सहित कहा—"रोओ बेटी, जी भर कर रोओ; प्राणों का कष्ट और मन का मैल बिना आँसुओं के नष्ट नहीं होता।"

धूप तब तक अच्छी तरह निकल आई थी। वृद्ध वैष्णव मुन्नी के पास आकर बैठ गया और अपना हाथ मुन्नी के मस्तक और पीठ पर फेरने लगा। बहुत देर तक रो चुकने के बाद मुन्नी जब शांत हुई तब वृद्ध ने एक एक करके सारी बातें उसके भीतर से बाहर निकलवा लीं। सब कुछ सुन लेने पर वृद्ध ने कहा—"बेटी, तुम्हारी समस्या बड़ी जटिल है। तुम्हीं बताओ, मैं क्या करूँ ? मायापति की कृपा के बिना इस मायाजाल से मुक्त होना संभव नहीं है।"

मुन्नी को शांत करके वृद्ध ने लोटे में रस्सी बाँधकर कुएँ से पानी निकाला और स्वयं हाथ मुहँ धोकर मुन्नी को भी पानी दे दिया। फिर मंदिर के द्वार पर बैठकर वृद्ध ने गले से लटकती हुई चाँदी की एक डिबिया निकाली और उसमें से स्फटिक की बनी हुई गोपाल की मूर्त्ति निकालकर पूजा करने लगा। मुन्नी मनोयोगपूर्वक उसकी बातें सुनने लगी। वृद्ध ने गोपाल को धमकाते हुए कहा—"बच्चू, तुमसे तो अब पार पाना संभव नहीं। देखता हूँ तुम अंत में मार खाए बिना नहीं रहोगे। पृथ्वी के समस्त अनिष्टों की जड़ तुम्हीं हो। इसको साँसत करने में तुम्हें कौन सा सुख मिल रहा है, बोलो ? अनादि काल से

लेकर अब तक तुम्हें सीधे रास्ते चलना नहीं आया। अब इसका कुछ उपाय करो। मुसलमान वेश्या की लड़की से कोई संभ्रांत हिंदू विवाह नहीं करेगा, इसे क्या तुम नहीं जानते?"

बगल में खड़ी खड़ी मुन्नी तन्मय होकर वृद्ध की बातें सुन रही थी। उसकी बातें समाप्त होने पर उसने आग्रह सहित पूछा—"बाबा, गोपाल ने क्या बताया?"

वृद्ध ने कुछ उत्तर न देकर मूर्ति को चाँदी की डिबिया के भीतर बंद कर दिया और उसे गले में पहनने के बाद बोला—"बेटी, गोपाल ने विशेष कुछ नहीं बताया, इतना ही कहा कि तुम कल से निराहार हो, कुछ खा लो।"

मुन्नी बोली—"यहाँ क्या मिलेगा? गावँ में चलकर कुछ खरीद लूँगी।"

"गावँ यहाँ से बहुत दूर है। इस समय गोपाल का प्रसाद ग्रहण करो।"

वृद्ध ने अपनी झोली में से दो मुट्ठी चूर्ण निकला और पीपल के पत्ते पर एक मुट्ठी चूर्ण मुन्नी को देकर स्वयं प्रसाद पाने लगा। प्रसाद समाप्त होने पर वह बोला—"बेटी, तुम इस समय पूरब की ओर जाना चाहती हो न?"

मुन्नी बोली—"हाँ।"

"मन के वेग का किसी तरह दमन नहीं कर सकोगी?"

"अभी तो नहीं कर पा रही हूँ बाबा।"

"कैसे करोगी बेटी? हम लोग कहते अवश्य हैं कि मैं दमन करता हूँ, तुम भी करो; किंतु वस्तुतः होता वही है जो गोपाल कराते हैं। इस समय पूरब की ओर जाने से तुम्हारे प्रियपात्र का अमंगल होने की

आशंका है। किंतु जिन्होंने उसे तुम्हारा प्रिय बनाया है वे ही जब उसका अमंगल करा रहे हैं तब कौन उसे दूर करेगा? दिन बहुत चढ़ आया है, चलो किसी गाँव की ओर चलें।"

दोनों व्यक्ति मंदिर छोड़कर गाँव की खोज में चले। उस समय फरीद खाँ एक तेज घोड़े पर सवार होकर प्रयाग के पथ पर आगे बढ़ रहा था।

साठवाँ परिच्छेद

संकट से उद्धार

रात बीतते बीतते हरिनारायण को लेकर जिस समय असीम और सुदर्शन घर लौटे उस समय तूफान समाप्त हो गया था और आकाश स्वच्छ हो रहा था। हरिनारायण ने आकर देखा कि त्रिविक्रम विश्वनाथ के चंडीमंडप में बैठकर किसी प्रौढ़ व्यक्ति के साथ बातें कर रहे हैं। सती आकर दुर्गा तथा सुदर्शन की पत्नी को अंतःपुर में लिवा ले गई। कपड़े बदलकर सब लोग त्रिविक्रम के पास आकर बैठ गए।

प्रौढ़ व्यक्ति कह रहा था—"अब क्या पैसे का बल है? पिता-पितामह के समय जो कुछ था उसका दसवाँ हिस्सा भी अब नहीं रह गया। और पैसा ही रहता तो क्या होता महाराज! गाँव में हम लोगों के संबंध के योग्य कोई पात्र नहीं है, इसलिये मेरे लिये और कोई उपाय नहीं रह गया है। वाग्दत्ता कन्या का विवाह नहीं हुआ, यह सुनकर कौन कुलीन पात्र मेरी लड़की से ब्याह करेगा? और 'अलक्षणा' नाम सुनकर तो सभी लौट जायँगे।"

प्रौढ़ सज्जन बराबर अपनी बात कहते जा रहे थे और त्रिविक्रम कुछ उत्तर न देकर धीरे धीरे हँस रहे थे। उन्हें हँसते देखकर विश्वनाथ ने पूछा—"बेटा, तुम हँसते क्यों हो?"

त्रिविक्रम बोले—"भाग्यचक्र का विलक्षण परिवर्त्तन देखकर।"

प्रौढ़—"महाराज, शैल जिस दिन डूब गई थी उस दिन भी आपने बहुत सी बातें बताई थीं। उस समय यह नहीं समझा था कि शैल के कारण ही मेरी इतनी दुर्दशा होगी। अब तो जाति जा रही है। इसका क्या उपाय है?"

त्रिविक्रम—"मित्र महाशय, तुम्हारी जाति नहीं जायगी।"

विश्वनाथ—"आज की रात समाप्त होते ही तो जाति चली जायगी?"

त्रिविक्रम—"नहीं जायगी।"

असीम—"क्या करने से आपकी जाति बची रहेगी?"

विश्व०—"आज रात तक कोई दूसरा पात्र मिल जाय तो जाति की रक्षा हो सकती है। क्यों सर्वेश्वर?"

सर्वेश्वर—"समाज की बातें तो भाई साहब आप सब जानते ही हैं। इस विषय में ब्राह्मणों और कायस्थों का समाज बराबर है।"

असीम—"अगर आज रात्रि में विवाह न हुआ तो क्या आपकी कन्या का फिर कभी विवाह ही न होगा?"

त्रिवि०—"तृतीय प्रहर में जो दूसरा लग्न था वह भी बीत गया। भगवान की इच्छा! कल गोधूलि वेला में भी विवाह का योग है।"

असीम—"मित्र महाशय को यदि आपत्ति न हो तो मैं उनकी कन्या के साथ विवाह करने के लिये प्रस्तुत हूँ।"

सर्वे०—"आप, तुम!"

त्रिवि०—"ये कानूनगो हरनारायण राय के भाई और भूतपूर्व कानूनगो हरिनारायण राय के पुत्र असीमचंद्र राय हैं।"

सर्वे०—"बेटा, तुम तो अपने घर के हो। तुम्हारे पितामह श्री नारायण राय ने हम लोगों के वंश को कन्यादान दिया था।"

वृद्ध ने उठकर दोनों हाथों से असीम को थाम लिया और ऊँचे स्वर से रोते रोते कहा—"बेटा, तुम्हारे सिवा अब और कोई चारा नहीं है। तुम्हीं मेरी डूबती नाव के रखवारे हो।"

इसी समय त्रिविक्रम पुनः हँसे। उन्हें हँसते देख विश्वनाथ और हरिनारायण ने पूछा—"हँसते क्यों हैं ?"

त्रिविक्रम बोले—"फिर बताऊँगा।"

हरिनारायण ने असीम से कहा—"देखो, मित्र महाशय इस समय घोर विपत्ति में पड़े हुए हैं। संकटग्रस्त का उद्धार करना ही महान् व्यक्तियों का कर्त्तव्य है। तुमने उच्च कुल में जन्म ग्रहण किया है, इसलिये तुमने जो कुछ निश्चय किया है वह सर्वथा उपयुक्त है। जान पड़ता है, मित्र महाशय का उद्धार करने के लिये ही भगवान ने आज हम लोगों को यहाँ भेजा है।"

सुदर्शन ने सोत्साह कहा—"तो फिर विवाह ही पक्का रहा।"

सर्वेश्वर बोले—"महाराज, मेरे लिये दूसरी गति नहीं है।"

"तो फिर लड़की देख ली जाय।"

त्रिविक्रम ने कहा—"लड़की पहले ही देख चुके हो !"

हरिनारायण ने कहा—"विधिपूर्वक पूजन करना और उसे आशीर्वाद देना होगा। भूपेंद्र के पास या मुर्शिदाबाद समाचार भेजने का तो कोई उपाय नहीं है। असीम, सब कुछ तुम्हीं को अकेले करना होगा।"

सर्वेश्वर ने गद्गद होकर कहा—"तो मैं खबर कर आऊँ ?"

हरिनारायण बोले—"जाओ।"

सर्वेश्वर के चले जाने पर त्रिविक्रम ने असीम से पूछा—"राय जी कोई बात याद आती है ?

असीम ने चकित होकर उत्तर दिया—"कहाँ, कुछ तो नहीं ?"

"कैसे याद आएगी !"

"आप कहते क्या हैं, कुछ समझ में नहीं आता।"

"आ जायगा, मगर अभी नहीं; धीरे धीरे सब कुछ याद आएगा।"

तभी कौवे बोलने लगे। सुनकर हरिनारायण और विश्वनाथ उठे। विद्यालंकार ने हँसी की—"क्यों, ससुराल पहुँचकर नित्यकर्म भी भूल गए ?"

त्रिविक्रम ने भी हँसते हँसते कहा—"नित्यकर्म के पहले एक नवीन कर्म करना है। तुम गंगातट की ओर चलो, मैं आ रहा हूँ।"

त्रिविक्रम के उठने पर विश्वनाथ ने जिज्ञासा की—"बेटा, रास्ता तो नहीं भूलोगे ?"

त्रिविक्रम ने हँसते हुए कहा—"विवाह के पहले कई बार इस गाँव की गली गली से भिक्षा ले गया हूँ।"

हरिनारायण और विश्वनाथ के बाहर चले जाने पर त्रिविक्रम दूसरे मार्ग से घर के बाहर निकले। उस समय पूरब की ओर प्रकाश अवश्य दिखाई देने लगा था, किंतु अँधेरा पूरी तरह दूर नहीं हुआ था। गाँव के सीमांत पर पहुँचकर त्रिविक्रम ठिठके। पीछे किसी के आने की आहट मिली। मुड़कर उन्होंने देखा कि एक स्त्री उनका पीछा कर रही है। पास आनेपर उन्होंने उससे पूछा—"तुम क्यों आई ? डरो मत, मैं भागूँगा नहीं। भागना ही होता तो स्वेच्छा से आकर अपने को पकड़वाता नहीं।"

स्त्री सती थी। वह बोली—"मैं आपको पकड़ने नहीं आई हूँ। आप जहाँ जा रहे हैं वहाँ मुझे भी चलना होगा।"

त्रिविक्रम ने आश्चर्य से पूछा—"तुम्हें क्यों जाना होगा ?"

"यह नहीं जानती।"

"तुमसे किसने कहा?"

"जो बातें करता है।"

"वह कौन है सती?"

"यह तो नहीं जानती; वह कहाँ से आकर किधर से बता जाता है, यह भी नहीं कह सकती।"

एकसठवाँ परिच्छेद

बाबा हरिदास

प्रातःकाल सर्वेश्वर मित्र के मकान के सामने पुनः नौबत बजने लगी। नौबतखाने के जो बाँस रात की भयंकर आँधी से उखड़ गए थे उन्हें लोगों ने फिर खड़ा कर दिया। गिरे हुए वृक्षों को हटा-बढ़ाकर वह स्थान पुनः स्वच्छ कर दिया गया। देखते देखते मित्र-परिवार के घर की शोभा लौट आई। भीतर स्वयं हरिनारायण पुरोहित के आसन पर विराजमान होकर वैवाहिक पूजनादि का आयोजन कर रहे थे। सुदर्शन उनकी सहायता कर रहे थे। फलतः त्रिविक्रम को बाध्य होकर समधी का कर्त्तव्य करना पड़ा।

गावँ की बात ठहरी। घटना दो सौ वर्ष पहले की है। विपुल व्यय करने पर भी समधी महाशय को वर की मर्यादा के अनुरूप गहने कपड़े नहीं मिले। पता चलने पर हरिनारायण बड़े दुःखी हुए। बालबंधु को इस प्रकार दुःखी होते देख त्रिविक्रम को चिंता हुई। इतने में मुँह लटकाए सती उनके पास आकर खड़ी हुई। उसे देखकर त्रिविक्रम ने पूछा--"उदास क्यों हो सती?"

सती कुछ उत्तर न देकर रो पड़ी। सबके सामने लड़की को रोते देख विश्वनाथ ने प्यार से पूछा—"क्या हुआ है बेटी, रोती क्यों हो?"

सब लोगों ने मिलकर सती को आश्वस्त किया। वह बोली—"गावँवाले कहते थे कि वे मेरे पति नहीं, झूठे और विश्वासघाती हैं। वे लोग बाबू जी को जाति से बाहर कर देंगे।"

लड़की की बातें सुन लेने पर विश्वनाथ बोले—"यह आशंका मेरे मन में भी हुई थी। लेकिन विवाह की गवाही साक्षी सब कुछ वर्तमान है। जिस समय विवाह हो रहा था उसी समय यज्ञेश्वर चट्टोपाध्याय बदला लेने की घात में था। वह कुछ कर नहीं सका इसलिये तभी से मेरे ऊपर क्रुद्ध है। इसकी चिंता मत करो बेटी; जामाता को जब अपने यहाँ बुलाया है तब उन्हें जाने कैसे दूँगा? तुम निश्चिंत रहो।"

पिता से आश्वासन पाकर सती प्रसन्न हो गई। इसके अनंतर त्रिविक्रम ने उससे कहा—"एक ताम्रकुंड में जल भरकर पिछवाड़े वाले शिवालय में ले चलो, मैं अभी आता हूँ।"

हरिनारायण ने पूछा—"क्यों, कहाँ चले?"

"वर के गहने लेने।"

"शिवालय में कौन सा गहना मिलेगा? शिव जी का विवाह समझ लिया है क्या कि सूखे बेलपत्रों से वर का शृंगार करोगे?"

"इसका ब्योरा बाद में बताऊँगा भाई; तुम श्राद्धमंत्र आरंभ करो, मैं अभी आया।"

शिवालय में जाकर त्रिविक्रम ने देखा कि सती पूजा की सब व्यवस्था करके एक ओर खड़ी है। उसे देखकर उन्होंने कहा—

"सती, अभी पूजा का समय नहीं हुआ है। तुम शुद्ध होकर आई हो न?"

सती ने सिर हिलाकर सहमति सूचित की। त्रिविक्रम ने कहा—"तुम इस आसन पर बैठकर ताम्रकुंड के जल की ओर देखती रहो।"

सती ने पूछा—"आप नहीं बैठेंगे ?"

"मैं इस कुशासन पर बैठता हूँ।"

मंदिर के दरवाजे बंद करके पति-पत्नी आसनों पर बैठे। अकस्मात् त्रिविक्रम ने ताम्रकुंड के जल में फूँक मारी। फूँकते ही जल में आग लग गई। सती काँप उठी। तत्काल त्रिविक्रम ने उसके ललाट का स्पर्श किया। आधा दंड बीत गया और मंदिर में धीरे धीरे धुआँ भर गया।

त्रिविक्रम ने पूछा—"सती, क्या देख रही हो ?"

सती बोली—"ताम्रकुंड में अग्नि जल रही है। उसमें एक चित्र है...नहीं, जंगल है, घनघोर जंगल। जंगल में एक सीधा रास्ता चला गया है। उस पर एक आदमी चल रहा है। वह काला कलूटा, कुरूप और विकटाकार है। लाल रंग का वस्त्र पहने है। वह लौटा। यह तो कालीप्रसाद है। ऊपर की ओर देख रहा है।"

त्रिविक्रम बोले—"सती, तुम कालीप्रसाद के पास जाओ।"

उत्तर मिला—"डर लगता है !"

"जानती हो, तुम कौन हो ?"

"जानती हूँ। मैं तुम्हारी स्त्री सती हूँ।"

"और कौन हो ?"

"मैं शक्ति हूँ।"

"फिर तुम्हें डर किस बात का ?"

"कुछ नहीं।"

"तुम कालीप्रसाद के पास जाओ।"

"पहुँच गई। क्या कहूँ ?"

"कहो कि मुझे कुछ गहनों की आवश्यकता है। माँ के भंडार में जो गहने हैं उन्हीं को ले आने के लिये कहो।"

"कालीप्रसाद पूछ रहा है कि गहने लेकर कहाँ आऊँ।"

"उससे कहो कि संध्या के पहले इसी गाँव में विश्वनाथ चक्रवर्ती के यहाँ पहुँचा दे।"

"कह दिया। अब क्या करूँ?"

"लौट आओ। सती, क्या देख रही हो?"

"कालीप्रसाद जंगल के रास्ते से जा रहा है। जंगल में एक टूटा फूटा मंदिर है। मंदिर के सामने एक मुरदा पड़ा हुआ है—दो स्यार बैठे हुए हैं। कालीप्रसाद मंदिर के भीतर चला गया। मुरदे पर उसने जवाकुसुम का एक फूल फेंका। कालीप्रसाद मुरदे के ऊपर बैठ गया। दोनों स्यार बैठे हुए हैं।"

"सती, मंदिर के भीतर देखो।"

"देख रही हूँ।"

"क्या दिखाई देता है?"

"पत्थर की मूर्ति है।"

"किसकी मूर्त्ति है?"

"समझ में नहीं आता, बड़ा अँधेरा है।"

"सती अंधकार को दूर करो।"

"कैसे करूँ, मैं तो नहीं जानती?"

"अच्छी तरह ध्यान से देखो।"

"देख रही हूँ।"

"क्या देख रही हो?"

"मंदिर में एक नीला दीपक जल रहा है। भीतर सिंहवाहिनी पार्वती हैं।"

"मूर्त्ति का मुख देखो।"

"देख रही हूँ—माँ हँस रही हैं।"

त्रिविक्रम का चेहरा उदास हो गया। उन्होंने ताम्रकुंड के जल को पुनः फूँका। आग बुझ गई; क्षणमात्र में धुआँ भी लुप्त हो गया। सती ने आँखें मलते हुए जिज्ञासा की—"मैं क्या कर रही हूँ?"

त्रिविक्रम बोले—"कुछ नहीं; चलो, घर चलें।"

शिवालय का द्वार खोलकर बाहर आने पर सती ने देखा कि पोपले मुँह और श्वेत केश वाले कोई वृद्ध वैष्णव एक अपूर्व रूपवती तरुणी वैष्णवी का हाथ पकड़े खड़े हैं। उन्हें देखकर त्रिविक्रम हँसे। सती ने पूछा—"आप हँसे क्यों?"

त्रिविक्रम बोले—"नियति! अभी सब बातें समझ नहीं सकोगी। फिर बताऊँगा।"

इसी समय वृद्ध ने वैष्णवी से कहा—"बेटी, वृद्धावस्था का शरीर ठहरा। कल की आँधी और तूफान के बाद बिना दो एक दिन विश्राम किए अब और चल नहीं सकूँगा।"

इतना कहकर वृद्ध शिवालय के सामने बैठ गया। पीछे फिरकर वैष्णवी ने देखा कि त्रिविक्रम और सती अभी तक खड़ी हैं। उसे पीछे देखते देखकर वैष्णव ने भी उलटकर देखा।

त्रिविक्रम को देखकर वह बोला—"महाराज, बहुत वृद्ध हो गया हूँ। उठकर प्रणाम करते नहीं बनता। क्षमा कीजिएगा। कल रात्रि में बड़े कष्ट का सामना करना पड़ा। दो एक दिन सुस्ताए बिना चलना फिरना संभव नहीं है। क्या यहाँ वैष्णवों की बस्ती है?"

धूप तब तक कड़ी हो गई थी। निराश्रित वृद्ध को देखकर सती का मन दयार्द्र हो गया। वह बोली—

"बाबा, वैष्णवों की बस्ती तो नहीं है, मगर तुम मेरे साथ चलो, मेरे घर पर ठहरना।"

वृद्ध बोला—"साक्षात् अन्नपूर्णा स्वरूपिणी तुम कौन हो माँ जो इस वृद्ध बालक का दुःख देखकर द्रवित हो रही हो ?"

वृद्ध उठकर लकड़ी के सहारे खड़ा हो गया। त्रिविक्रम तब भी धीरे धीरे हँस रहे थे। उन्हें देखकर वृद्ध को रोमांच हो आया और उसने दाहिने हाथ का संपुट आँखों के उपर ले जाते हुए कहा—"अयँ ! मैं स्वप्न तो नही देख रहा हूँ ! महाराज, वृद्ध हो चुका हूँ; आँखों से अच्छी तरह दिखाई नहीं देता ! मुझसे छल मत करना; तुम वही तो नहीं हो?"

त्रिविक्रम ने हँसते हुए कहा—"हरिदास ! मैं वही हूँ ! तुम्हारी आँखों ने तुम्हें धोखा नहीं दिया।"

सहसा वृद्ध शिवालय के ऊपर चढ़ गया और त्रिविक्रम के पैरों पर गिर पड़ा। वह बोला—"महाराज, इस वृद्धावस्था में बड़ी जटिल परिस्थिति में पड़ गया हूँ, उबारो महाराज !"

त्रिविक्रम ने वृद्ध को हाथ पकड़कर उठाया और बोले—"हरिदास, परिस्थितियाँ जो उत्पन्न करते हैं वे ही उनका निवारण भी करते हैं—तुम और हम तो केवल उनके हाथ की कठपुतली हैं।"

हरिदास ने कहा—"महाराज, इस वृद्धावस्था में और परदेश में गोपाल ने इस युवती कन्या को गले में बाँध दिया है। इसे लेकर क्या करूँ महाराज ? धर्म कर्म सब भूल गया। सत्तर वर्ष की अवस्था में फिर से गृहस्थी सम्हालनी पड़ रही है। यह कैसा गोरखधंधा है महाराज ?"

"गोपाल अपनी कन्या की देखभाल स्वयं कर रहे हैं, हरिदास ! तुम तो निमित्त मात्र हो। बुड्ढे होकर इतने दिनों की शिक्षा दीक्षा क्या सब भूल गए ?"

"भूलना ही पड़ा, महाराज ! अब तो गोपाल की और परलोक की चिंता को भूलकर इसी की चिंता है कि इसे क्या खिलाऊँ, कहाँ दूर करूँ, कैसे इसकी रक्षा हो ।"

"यही वैष्णवी माया है, हरिदास ! इतने दिनों तक विष्णु की उपासना करके क्या इतना भी नहीं समझ सके ? गोपाल अपने सेवक के द्वारा भक्त का उद्धार करा रहे हैं । लड़की भक्त प्रतीत होती है । तुम्हारे योग्य लड़की है । चिंता मत करो हरिदास, गोपाल तुम्हारे साथ छल कर रहे हैं ।"

"महाराज, तुम्हारे जैसा मानसिक बल तो मेरे पास है नहीं, मैं ठहरा दीन हीन वैष्णव !"

"क्या कहा, बल नहीं है ? हरिदास ! सोनागाँव में जिस साल महामारी फैली थी उस साल की याद है ?"

वृद्ध लज्जा से नतमस्तक हो गया । सती ने त्रिविक्रम से कहा—"अब धूप में खड़े मत रहो, मैं भी इस लड़की को लेकर चल रही हूँ ।"

हरिदास ने पूछा—"ये कौन हैं ?"

त्रिविक्रम ने कहा—"ये मेरी पत्नी हैं ।"

हरिदास ने अत्यंत आश्चर्यान्वित होकर कहा—"पत्नी ! यह कैसी छलना है महाराज ! आपकी पत्नी !"

"मायापति की माया को कौन समझ सकता है हरिदास ?"

"महाराज, फिर गृहस्थाश्रम ?"

"महामाया की जैसी आज्ञा; नियति पर किसका वश है ?"

वृद्ध कुछ देर चुपचाप खड़ा रहने के पश्चात् सती के पीछे पीछे चला गया । त्रिविक्रम भी शिवालय से लौटकर सर्वेश्वर मित्र के घर गए ।

विश्वनाथ चक्रवर्त्ती के चंडीमंडप में हरिनारायण मंत्रपाठ करा रहे थे और असीम उसकी आवृत्ति करते चलते थे। अकस्मात् हरिनारायण को कंठावरोध हो गया, सरस्वती और दुर्गा भी स्तंभित हो गईं। वृद्ध विश्वनाथ इस आकस्मिक विपत्ति का कारण न जानने के कारण चकपकाकर चारों ओर देखने लगे। असीम के पिंडयुक्त हाथ आधी दूर तक आकर रुक गए। हरिनारायण के हाथ से ताड़पत्र की पुस्तक भूमि पर गिर पड़ी और सुदर्शन के मुहँ से हलकी सी चीख निकल गई। वृद्ध वैष्णव का हाथ पकड़े सती दरवाजे पर ठिठकी खड़ी थी; इनके पीछे वैष्णव की तरुणी कन्या भी थी।

असीम मन के अनजाने वेग से पुकार उठे—"मुन्नी!"

बासठवाँ परिच्छेद

दूत

दोपहर का भोजन करने के उपरांत क्षीणकाय हरनारायण राय लंबे चौड़े पलंग के एक कोने में खोए खोए से पड़े तंबाकू पी रहे थे और निद्रासुख की प्रतीक्षा कर रहे थे। गृहिणी की भारी भरकम काया को ढोनेवाले चरणों की ध्वनि से उनकी मुँदी हुई आँखें खुल गईं।

कमरे में आकर गृहिणी ने पूछा—"सुनते हो, सो गए क्या?"

हरनारायण बोले—"क्यों?"

"उसका कोई समाचार नहीं मिला।

"क्या कहती है?"

"कहती तो बहुत कुछ है, पर जौहरी के बिना कैसे मालूम हो कि कितना सच है, कितना झूठ। बुलाऊँ उसे?"

हरनारायण ने हाँमी भर दी। मुहूर्त्त मात्र में सरस्वती ने आकर प्रणाम किया और तरह तरह से नमक मिर्च लगाकर नवीन के विश्वास-घात की बातें कह गई। नवीन कहाँ गया और दुर्गा कहाँ चली गई, यह वह नहीं बता सकी। तब हरनारायण ने पूछा—"कुछ नया समाचार सुना है, सरस्वती?"

अत्यंत विनीत भाव से सरस्वती ने कहा—"नहीं हुजूर, मैं तो अभी चली आ रही हूँ।"

"तुम्हारे छोटे राय का विवाह है; समधी बने हैं भट्टाचार्य, तुम्हारे विद्यालंकार महाराज।"

सरस्वती ने कहा—"अच्छा!"

हरनारायण ने देखा कि धूर्ता सरस्वती इस संबंध में अपना मनोभाव व्यक्त नहीं कर रही है तो वे स्वयं प्रस्ताव उपस्थित करने के लिये बाध्य हुए। वे बोले—"देखो सरस्वती, लड़की और बहू अगर इतने दिनों तक बराबर डाकुओं के हाथ में पड़ी रहतीं तो सूती गावँ के मुहाने पर निश्चिंत होकर बैठा हरिनारायण विद्यालंकार असीम के विवाह की व्यवस्था कभी न करता, चाहे वह कितना ही बड़ा पंडित क्यों न हो। जिस प्रकार से भी हो, दुर्गा और सुदर्शन की स्त्री नवीन के हाथों से निकलकर उन लोगों के पास पहुँच गई हैं। यह भी हो सकता है कि नवीन रुपए मारकर उन लोगों के साथ मिल गया हो। सरस्वती, तुम एक बार ठीक ठीक पता लगा सकती हो?"

जीवन संग्राम का परिचय पाकर सरस्वती दूरदर्शिका हो चुकी थी। हरनारायण का प्रश्न सुनते ही उसे दूर से रुपयों की गंध मिली और वह तुरंत सावधान हो गई। उसने कहा—"हजूर, बड़े कष्ट का रास्ता है। हम लोग दुखिया हैं इसीलिये सब कुछ सहन हो जाता है। और जैसा देशकाल हो गया है उसमें खरचा पूरा नहीं पड़ता।"

राजनीति के कुशल खिलाड़ी हरनारायण समझ गए कि सरस्वती रुपए पैसे की बात कह रही है। उन्होंने तुरंत कहा—"उसकी चिंता मत करना सरस्वती, जो कुछ खरच बरच होगा सब मैं दूँगा और ठीक ठीक समाचार ले आने पर नगद एक सौ रुपया ईनाम भी मिलेगा।"

रुपयों की बात सुनकर सरस्वती का हृदय तत्काल द्रवित हो गया। वह बोली—"हुजूर का हुक्म क्या टाल सकती हूँ? कब जाना होगा?"

"आज का दिन बीत जाने दो, कल सवेरे कोई छोटी नाव लेकर रवाना हो जाना। सवारीवाली नाव से जाने पर तो बहुत दिन लगेंगे।"

आज्ञा लेकर सरस्वती उठ खड़ी हुई। गृहिणी भी रुपए देने के लिये उसके साथ ही कमरे से बाहर निकलीं।

बाहर आकर गृहिणी ने सरस्वती को अपने पीछे पीछे आने के लिये संकेत किया। प्रकांड अट्टालिका को अपने पदभार से प्रकंपित करती हुई राय गृहिणी ने दो तीन बड़ी बड़ी दालानों को पार किया। सरस्वती छाया की भाँति उनके पीछे पीछे चल रही थी। अंत में गृहिणी ने कोठी के दूसरी ओर बने एक छोटे से कमरे में प्रवेश किया और संकेत से सरस्वती को भी भीतर बुलाया। सरस्वती उस समय दरवाजे पर खड़ी होकर आगा पीछा कर रही थी क्योंकि गृहिणी की काया ने उस छोटी सी कोठरी को एकदम छेक लिया था और सरस्वती यह निश्चय नहीं कर पा रही थी कि उसके भीतर और एक आदमी के लिये स्थान निकल सकेगा या नहीं। गृहिणी की आज्ञा मिलने पर सरस्वती भीतर जाने के लिये बाध्य हुई। उसके भीतर जाने पर गृहिणी ने दरवाजा बंद कर दिया।

हरनारायण की पत्नी ने हाथी की सूँड़ जैसी अपनी दाहिनी बाहँ सरस्वती के कंधे पर रखते हुए कहा—"देख वैष्णवी बहन, मेरा एक काम करेगी?"

सरस्वती ने राय-गृहिणी की बाहँ के भार और विनय से यथोचित रूप में नत होते हुए कहा—"यह कैसी बात बहू जी, उपकार क्या करूँगी, मैं तो आपकी गुलाम हूँ, आपका ही नमक खाकर···।"

राय-पत्नी वाग्युद्ध में नवशिक्षिता नहीं थीं; उन्होंने बाधा देते हुए कहा—"देख सरस्वती, मैं जो कह रही हूँ उसे अगर तू पूरा कर आई तो मैं अपने गले का यह हार उतारकर तेरे गले में डाल दूँगी।"

हाथी के सिक्कड़ जैसा मोटा हार देखकर दरिद्र वैष्णवी का सिर चकरा गया। उसने आग्रह-सहित कहा—"क्यों न करूँगी बहू जी, जरूर करूँगी। आदमी के किए यदि हो सकेगा तो सरस्वती अवश्य उसे पूरा कर आएगी।"

गृहिणी संतोषपूर्वक हँसीं। सरस्वती को मानों साक्षात् स्वर्ग मिल गया। तब गृहिणी बोलीं—"देख, छोटा भाई मेरा देवर जरूर है लेकिन हमेशा से उसका व्यवहार सौत सरीखा रहा है। जब तक वह यहाँ रहा, ऐसा कोई दिन नहीं बीता जब मुझे रोना न पड़ा हो। मगर मैं इसकी चिंता नहीं करती; अपने दरवाजे पर कुत्ता भी शेर हो जाता है। छोटे राय ने विवाह कर लिया है इसलिये उसे काबू में करना अब कठिन नहीं होगा। नई बहू कैसी है, उसकी मति-गति, बात-व्यवहार कैसा है, इसका पता लगाकर दुर्गावाली बात उसके कान में डाल दे तो मेरा कलेजा ठंढा हो। कैसे उसके कान में यह बात पहुँचेगी, इसका जिम्मा तेरा। हमेशा से वह मुझे जैसी आग में जलाता रहा है, वैसी ही आग वहाँ लगा आना सरस्वती। ऐसी आग लगाना कि बिना चिता की आग में मिले वह ठंढी न हो। समझ गई न?"

सरस्वती बोली—"मुझसे जो कुछ बन पड़ेगा, जरूर करूँगी बहू जी। मगर अभी तो वह नई बहू ठहरी, इतना ऊँचा नीचा समझ सकेगी?"

"एक दिन में न समझेगी तो दो चार महीने में तो समझ जायगी। न हो, फिर एक बार चली जाना, रास्ते का खर्च मैं दे दूँगी।"

इतना कहकर गृहिणी ने बक्स खोलकर सरस्वती को एक एक करके पचास रुपए गिन दिए। सरस्वती प्रणाम करके विदा हुई।

रास्ते में चलते चलते सरस्वती सोचने लगी कि एकबारगी हरनारायण राय इतने मुक्तहस्त क्यों हो गए। अवश्य इसके भीतर कोई न कोई भेद है। ऐसा न होता तो दीन हीन भाई की खोज खबर के लिये हरनारायण क्यों ढेर के ढेर रुपए खर्च करते। बुद्धिमती वैष्णवी समझ गई कि क्षमताशाली हरनारायण को संतुष्ट रखने पर भविष्य में उसे रुपए पैसे की चिंता नहीं रहेगी। सहसा उसे स्मरण हुआ कि हरनारायण को नवीन पर संदेह हुआ था और इस संदेह को अगर बढ़ा-चढ़ाकर पुष्ट कर दिया जायगा तो नापित नवीनदास फिर कभी उसके लाभ में हिस्सा नहीं ले सकेगा। मुर्शिदाबाद लौटने के पहले नवीन के ऊपर सरस्वती का क्रोध दिन पर दिन बढ़ता ही गया था क्योंकि उसकी दृढ़ धारणा थी कि लाभ का मेरा अंश भी हड़प जाने के लिये ही नवीन बंदियों को लेकर पटना से मुर्शिदाबाद भाग गया है। यहाँ आकर जब उसने सुना कि नवीन अभी लौटा नहीं तब उसका संदेह दूर अवश्य हो गया किंतु क्रोध नहीं गया। लंबे प्रवास से लौटकर सरस्वती घर की सफाई आदि में जुट गई।

ठीक इसी समय हरिनारायण विद्यालंकार स्नानार्थ गंगा का प्रशस्त बालुका तट पार करके जल के भीतर प्रविष्ट हो रहे थे। उसी समय यात्रियों की एक बड़ी सी नाव किनारे पर आकर लगी। उसपर एक अरोही बैठा हुआ था। हरिनारायण को देखकर वह नाव के भीतर चला गया। हरिनारायण उसे देख नहीं सके। दूसरे आरोही नौका से उतरकर गाँव की ओर चले गए किंतु पूर्वोक्त आरोही नहीं उतरा, अस्वस्थता का बहाना करके सिर से पैर तक चादर ओढ़े पड़ा रहा। स्नान करके हरिनारायण के चले जाने पर उसने दूर से उनका अनुसरण किया।

तिरसठवाँ परिच्छेद

अलंकार

"वह कौन है ?"

प्रश्न सुनकर दुर्गा और बड़ी बहू स्तंभित हो गईं। बहुत देर तक कोई उत्तर न मिलने पर नववधू ने पुनः पूछा—"वह कौन है ? इस तरह क्यों देख रही है ?"

दुर्गा का ध्यान टूटा और उसने अपनी भौजाई की ओर देखा। उसका देखना नववधू की दृष्टि से छिपा नहीं। दुर्गा ने कहा—"हम लोग क्या जानें भाई कि वह किस तरह देख रही है। किसकी ओर देखती है वह ?"

शैल बोली—"क्यों, उनकी ओर ! तुम लोग तो जैसे कुछ जानती ही नहीं हो ? मालूम होता है उन्हें निगल जायगी। मैं सब समझती हूँ।"

अंतिम बात सुनकर दुर्गा हँसने लगी। उसे हँसते देख बड़ी बहू ने कहा—"हँसती क्यों हो भाई; उसके शरीर में आग लगी है, वही कह रही है।"

शैल ने पुनः पूछा—"यह स्त्री और कितने दिन रहेगी ? ठहरो, मैं बाबू जी से कहकर उसे अभी बिदा कराती हूँ।"

इतना कहकर वह क्रोध में भरी, आभूषणों को झनकारती हुई दूसरी कोठरी में चली गई। दुर्गा हँसते हँसते लोट पोट हो गई। बड़ी बहू ने बड़ी कठिनाई से हँसी रोककर कहा—"हँस मत भाई, नहीं वह अभी लौट आएगी।"

दुर्गा बोली—"भाभी, हँसी तो अब रुक नहीं रही है। भैया की जोड़ी तो अब जाकर मिली है।"

"हाँ भाई, भैया के उपयुक्त गुरु मिली है। अभी से इतना शासन! मैं तो ब्याह के बाद दो तीन वर्षों तक दूसरों के सामने उनकी चर्चा भी नहीं कर पाती थी।"

"तुम तो छोटी सी थीं तभी ब्याह हो गया था, मगर शैल तो सयानी है।"

"हुआ करे! मगर अभी से इतना बढ़ना चढ़ना अच्छा नहीं है।"

दूर से पैरों की आहट सुनकर दोनों ने दूसरी चर्चा छेड़ दी। कुछ देर के अनंतर एक दासी ने आकर कहा—"बहू जी, मालिक बुला रहे हैं।"

ननद और भौजाई ने चंडीमंडप में आकर देखा कि हरिनारायण एक ओर बैठे हुए हैं और वृद्ध वैष्णव उनके सामने बैठा तंबाकू पी रहा है। दोनों को देखकर हरिनारायण ने कहा—"बेटी, बड़ी विपत्ति में पड़कर तुम लोगों को बुलाया है। मुन्नी किसी प्रकार यहाँ से जाना नहीं चाहती। बाबा जी लौट जाने के लिये तैयार हैं मगर मुन्नी उनके साथ जाने के लिये राजी नहीं है। आदमियों को साथ करके मैं उसे पटने तक पहुँचाने के लिये प्रस्तुत हूँ लेकिन वह वहाँ भी नहीं जाना चाहती।"

पिता की बातें सुनकर दुर्गा किंचित् हँसकर बोली—"बाबू जी, मुन्नी के कारण हम लोग भी बड़े संकट में पड़ गई हैं।"

बहू ने अपना घूँघट थोड़ा आगे कर लिया किंतु हरिनारायण ने इसकी ओर कोई लक्ष्य नहीं किया और कहा—"कैसा संकट बेटी ?"

"नई बहू कहती है कि मुन्नी दिन रात भैया की ओर टकटकी लगाए रहती है। अपने पिता के पास वह इसकी शिकायत करने गई है।"

दुर्गा की बात सुनकर हरिनारायण भी किंचित् हँसे और बोले—"देखो बेटी, इस मामले में थोड़ी तुम लोगों की सहायता की आवश्यकता है। मुन्नी को किसी प्रकार यहाँ से खसकाना होगा।"

दुर्गा बोली—"बाबू जी, मुन्नी का मिजाज कब कैसा रहता है सो कहा नहीं जा सकता। अगर ठीक रहा तो समझाने बुझाने से शायद मेरी बात मान ले, नहीं तो उसे राजी करना मेरे बस की बात नहीं है। देखिए, एक बार चेष्टा करती हूँ।"

दुर्गा और बड़ी बहू उठकर चली गईं। इसी समय त्रिविक्रम ने आकर कहा—"देखो हरि, तुम जिन कागजपत्रों की बात कह रहे थे उन्हें एक बार देख लेना चाहिए। राय साहब का विवाह हो गया, अब वे बादशाह के पास जाना चाहते हैं। उन्हें शीघ्र ही जाना पड़ेगा। मैं सोच रहा हूँ कि तुम्हें साथ लेकर मुर्शिदाबाद चला चलूँ।"

हरिनारायण बोले—"कागजपत्र तो साथ में ही हैं, अभी लाता हूँ, किंतु हम लोग यदि मुर्शिदाबाद चले चलेंगे तो दुर्गा और बहू कहाँ रहेंगी ?"

पीछे से किसी स्त्री ने कहा—"वे लोग तो यहीं रहेंगी।"

हरिनारायण ने पीछे मुड़कर देखा कि सती खड़ी है।

त्रिविक्रम ने पूछा—"तुम कब आई ?"

"अभी। जरा घाट की ओर चली गई थी। रास्ते में सुना कि कोई आदमी हम लोगों को ढूँढ़ता फिर रहा है। उसे भी देख आई हूँ, तिनू की दूकान में वह टिका हुआ है।"

त्रिविक्रम बोले—"ठीक है। हरि, तुम कागजपत्र निकालो मैं तब तक एक चक्कर लगा आऊँ। सती, तुम मेरे साथ आओ।"

पति-पत्नी के बाहर जाने पर सती को बिना घूँघट निकाले देख गाँववालों ने निंदा करनी आरंभ की। सती ने उसे सुनकर भी नहीं सुना। गाँव के छोर पर पहुँचकर सती बोली—"मुझे कोई बुला रहा है।"

त्रिविक्रम ने हँसकर पूछा—"कौन बुलाता है सती ?"

"वही, जो पुकारता है, बातें करता है। लेकिन किसी दिन उसे देख नहीं पाई ?"

"तुम्हें कहाँ बुला रहा है ?"

' इसी श्मशान की ओर।"

"चलो, मैं भी चलता हूँ।"

दोनों स्त्री पुरुष पेड़ों की छाया के नीचे नीचे नदी तट के रास्ते श्मशान पहुँचे। वहाँ तट पर एक अत्यंत प्राचीन इमली का वृक्ष तूफानवाले दिन टूटकर गंगा में गिर पड़ा था। उसका बृहदाकार तना ऊँचे तट से लेकर नदी के गर्भ तक एक प्रशस्त पुल की तरह पड़ा हुआ था। त्रिविक्रम जिस समय वहाँ पहुँचे उस समय वृक्ष की शाखाओं में से गीदड़ की बोली के स्वर सुनाई पड़े। सुनते ही त्रिविक्रम स्थिर होकर खड़े हो गए। तत्काल पास के पीपल पर से एक मनुष्य कूदकर नीचे आया और उसने दोनों को प्रणाम किया।

बहुत दूर से और एक मनुष्य पति-पत्नी का पीछा करता हुआ श्मशान तक आया था। वह पीपल पर से कूदनेवाले मनुष्य को देखते

ही मूर्छित होकर गिर पड़ा। उसके गिरने का धमाका सुनकर त्रिविक्रम हँसे। पीपलवाला व्यक्ति कालीप्रसाद था। उसने चाँदी की एक बड़ी सी पेटी सती के हाथों में देकर कहा—"माँ, माँ ने इसे आपको पहनने के लिये दिया है।"

सती ने विस्मयपूर्वक पेटी को खोलकर देखा कि वह चाँदी के बने हीरे और मोतियों से युक्त अलंकारों से परिपूर्ण है। सन् ईसवी की अठारहवीं शताब्दी के आरंभ में गौड़ देश के गृहस्थ की कन्या को वैसे आभूषण कभी दृष्टिगोचर नहीं होते थे। सती गृहस्थ घर की लड़की थी। आभूषणों तथा रत्नों की चकाचौंध से वह किंचित् काल के लिये विस्मयाभिभूत हो गई। तदनंतर उसने पूछा—"इसे लेकर मैं क्या करूँगी?"

त्रिविक्रम ने कहा—"क्यों, पहनना।"

"लोग हँसेंगे तो?"

"हँसेंगे क्यों? मैं दे रहा हूँ, तुम पहनोगी, इसमें कौन सा दोष है?'

"हमारे गावँ में ऐसे गहने किसी के पास नहीं हैं।"

"सती, हम लोगों को जहाँ जाना है वहाँ तुम्हारी जैसी सभी स्त्रियाँ ऐसे ही गहने पहनती हैं।"

भक्तिमती पत्नी ने पति की आज्ञा शिरोधार्य की।

इसके पश्चात् सती जब प्रकृतिस्थ हुई तब उसने देखा कि जो मनुष्य गहने ले आया था वह नहीं है। उसने स्वामी से पूछा—"जो ले आया था वह कहाँ चला गया?"

त्रिविक्रम बोले—"वह नौकर ठहरा, उसका काम हो गया इसलिये चला गया। आवश्यकता पड़ने पर फिर आएगा। अब चलो, लौट चलें।"

जो आदमी कालीप्रसाद को देखकर मूर्छित हो गया था वह जहाँ गिरा था वहाँ पहुँचने पर त्रिविक्रम ने सती से पूछा—"सती, यही आदमी हम लोगों का पता लगा रहा था न?"

सती बोली—"हाँ।"

"तुम गावँ को लौट जाओ, मैं बाद में आऊँगा।"

सती परम निश्चिंत मन से अलंकारों की पेटी लिए अपने घर लौट गई।

मूर्छित व्यक्ति के सिरहाने एक पेड़ की डाल पर त्रिविक्रम बैठ गए। कुछ देर पश्चात् उस व्यक्ति ने आँखें खोलीं, किंतु त्रिविक्रम को देखते ही डर के मारे उन्हें फिर बंद कर लिया। त्रिविक्रम हँसने लगे।

चौंसठवाँ परिच्छेद

मुन्नी को बिदाई

"मुन्नी।"

"हुजूर?"

"मुझे 'हुजूर' क्यों कहती हो?"

"आप अमीर ठहरे। खुदा ने आपको बुलंद किया है। मैं गरीब आपको 'हुजूर' न कहूँगी तो और क्या कहूँगी?"

गावँ की सीमा पर एक बड़ा प्राचीन पीपल का वृक्ष था जिसने अपनी शाखा प्रशाखाओं का विस्तार बहुत दूर तक कर रखा था। उसके नीचे मुसलमानों की बहुत सी कब्रें थीं, किंतु पीपल ने उनको धीरे धीरे आत्मसात् कर लिया था, केवल एक कब्र शेष रह गई थी। संध्या होने के पहले असीम और सुदर्शन उसी पर बैठे हुए थे। नीचे हरी हरी घास पर मुन्नी ने आसन जमाया था।

सुदर्शन ने पूछा—"तुम इधर क्यों आई मुन्नी?"

मुन्नी ने हँसकर उत्तर दिया—"उस्ताद जी, मैं धर्म की दुहाई देती हूँ, वेश्या के लिये यदि कोई धर्म है तो उस धर्म की दुहाई है, वेश्या को अगर ईश्वर का नाम लेने का अधिकार है तो हिंदुओं के

भगवान् और मुसलमानों के खुदा की दुहाई है, मैं इच्छापूर्वक, जान-बूझकर इधर नहीं आई।"

असीम ने कहा—"मुन्नी, भाई साहब शायद तुम्हारी बातों पर विश्वास नहीं कर रहे हैं, मगर मुझे तुम्हारा विश्वास है।"

मुन्नी—"मुझपर तो हमेशा से जनाब की मेहरबानी रही है।"

असीम—"फिर 'जनाब' ?"

मुन्नी—"जनाब की और मेरी हालत में जो अंतर है उसे क्या भूला जा सकता है ?"

सुदर्शन—"देखो बाई जी, कहते हुए मुझे बड़ा संकोच हो रहा है, तुमने इस समय इधर आकर मुझे—नहीं, बाबू जी को बड़े संकट में डाल दिया है।"

मुन्नी—"उस्ताद जी, सच बात तो यह है कि मैं तुम्हारे ही लिये यहाँ आई।"

सुदर्शन—"अरे रे, असीम ! यह लड़की क्या बकती है। इसने तो फिर वही राग छेड़ा।"

असीम—"भाई साहब, आप शांत रहिए। मुन्नी आपको बना रही है और आप बन रहे हैं। डरिए मत। आपका धर्म नष्ट नहीं होगा। मुन्नी ?"

मुन्नी—"हुजूर !"

असीम—"फिर ?"

मुन्नी—"मैं भला गुस्ताखी कर सकती हूँ हुजूर !"

असीम—"अच्छी बात है, जो चाहो सो कहो।"

मुन्नी—"हुक्म हुजूर !"

असीम—"अब तुम कहाँ जाओगी ?"

मुन्नी—"जिधर ये दोनों आँखें ले जायँ।"

असीम—"किसके साथ जाओगी?"

मुन्नी—"यह आसमान, तारे, चाँद, पेड़, पौधे, चिड़ियाँ। मेरी जैसी स्थिति में साथी की कमी कहाँ पड़ती है जनाब?"

असीम—"मुन्नी, तुम युवती हो, असाधारण सुंदरी हो। इस घोर दुर्दिन में बिना किसी साथी के तुम्हारा अकेले जाना क्या उचित होगा?"

मुन्नी—"हुजूर, गहने जेवर उतारकर फेंके जा सकते हैं, लेकिन रूप को तो नकाब की तरह उतारकर अलग नहीं किया जा सकता। दुनिया की हवा के साथ मन की हवा भी बदल जाती है। मगर जिन्होंने यह चेहरा दिया है, बिना उनके बदले इसे और कोई बदल जो नहीं सकता।'

असीम—"मैं क्या तुम्हें वैसा करने के लिये कह रहा हूँ?"

मुन्नी—"हुजूर, हुक्म देकर सब कुछ कराया जा सकता है मगर मन को तो नहीं बदला जा सकता।"

असीम—"मुन्नी, मैं क्या तुम्हें हुक्म दे रहा हूँ?"

मुन्नी—"हुजूर, यह जबान हर वक्त दुरुस्त नहीं रहती। देखती हूँ, आप इसे काबू में नहीं रहने देंगे। आदमी का मन तो उड़ता हुआ पंछी ठहरा, उसे पकड़ना बड़ा कठिन है। जो मन को पकड़ने की कोशिश करता है उसकी निगाह ऊपर की ओर रहती है, इसलिये वह विपत्ति में भी गिरता है। पानी में गिरे, गड्ढे में गिरे, ठोकर खाय; वह खुद तो नीचे देखकर चलता नहीं, उड़ते हुए पंछी के पीछे पीछे दौड़ता फिरता है।"

असीम—"तुमसे बातों में पार नहीं पाऊँगा। मुन्नी, मैं अनुरोध करता हूँ कि तुम लौट जाओ।"

मुन्नी—"जनाब की बेगम साहबा बाँदी पर नाराज हैं, यह बात बाँदी के कानों तक पहुँच चुकी है। खुदावंद, बंदानेवाज, हम लोग तवायफ ठहरीं, मेहनत करके पेट पालती हैं। हम लोगों की निगाह भला कभी ऊपर उठ सकती है? हुजूर का हुक्म है तो जरूर लौट जाऊँगी, लेकिन लौटकर कहाँ जाऊँगी सो नहीं कह सकती।"

असीम—"यह कैसी बात मुन्नी? लौट जाने से मेरा मतलब है कि अपने पिता के पास चली जाओ।"

मुन्नी—"कहा न जनाब कि मन उड़ता हुआ पंछी है। बेगम साहबा बाँदी पर नाराज हैं। इसलिये बाँदी भी बुलंदअख्तर की निगाहों से हटी जा रही है।"

असीम—"मुन्नी, मैं फिर कहता हूँ कि तुम पटना लौट जाओ।"

मुन्नी—"जो हुक्म खुदावंद।"

असीम—"पहेली मत बुझाओ।"

मुन्नी—"तोबा तोबा, हुजूर से ऐसी गुस्ताखी करूँगी!"

असीम—"मुन्नी, मैं प्रार्थना करता हूँ, तुम पटना लौट जाओ।"

मुन्नी—"यह कैसी उलटी पुलटी बात मेहरबान! मुगल सलतनत के अमीर कहीं रास्ते के कुत्ते से 'प्रार्थना' करते हैं? पटने में तो अमीर लोग चलते रहते हैं और दीन, अनाथ, भिखारी लोग लात खाकर कुत्ते की तरह भाग जाते हैं। दुखी दरिद्र अन्न के अभाव में जिस समय हाहाकार करते रहते हैं उस समय अमीरों के महलों में मदिरा और संगीत की धारा में आनंद बहा करता है। जनाब, आप

वही अमीर हैं और मैं वही भिखारिणी हूँ। मुझसे प्रार्थना करना क्या आपको शोभा देता है। आपने हुक्म दिया है, मैं तामील करने की कोशिश करूँगी।"

सहसा असीम के गालों पर से बहकर आँसू की दो बूदें नीचे गिर पड़ीं। मुन्नी ने देख लिया। उसने दोनों हाथों से असीम के दोनों पैर पकड़ लिए और बोली—"आप रो रहे हैं? मेरी दुनिया के दौलत! क्यों रोते हैं? आपको भला कौन सा दुःख है? आप जो कहेंगे, मैं वही करूँगी। मैं अभी पटना वापस जाती हूँ। रोइए मत। आँखें पोंछ कर एक बार हँस दीजिए, आपको खुश और हँसमुख देखकर मैं चली जाऊँगी।"

आँखें पोंछकर असीम बोले—"मुन्नी, मेरी आँखों में आँसू इसलिये नहीं आए कि तुम जाना नहीं चाहतीं। तुम क्या थीं, कैसी स्थिति में थीं, और मेरी भूल के कारण क्या हो गईं, यही सोचकर मेरी आँखें गीली हो गई थीं।"

मुन्नी उठकर खड़ी हो गई और असीम के पास से हटकर बोली—"ऐसा मत सोचिए कि आपके कारण मेरी अवस्था हीन हुई है। आप की वजह से आज मैं कितनी ऊँची उठ गई हूँ, इसे आप क्या जानें। मेरे दिलेर, आप सोच रहे हैं कि मैं क्या से क्या हो गई। साटन और मखमल का पेशवाज न पहनकर, हीरे और मोतियों के गहने न पहनकर, यह गेरुआ धारण करने से मैं छोटी हो गई हूँ, ऐसा ख्याल मत कीजिए। लोगों की आँखों में इस वेश में मैं भले ही छोटी लगूँ, लेकिन आप नहीं जानते कि इस वेश में मैं अपनी निगाहों में कितनी ऊँची उठ गई हूँ। मुझपर अब मेरा ही अधिकार है। अब 'तू' कहकर बुलाते ही मुझे रास्ते के कुत्ते की तरह उठकर लोगों के पास नहीं जाना पड़ता। जिससे मन ही मन घृणा करती हूँ, उससे रुपयों के लिये हँस-हँसकर

बोलना नहीं पड़ता। यह कितना बड़ा सुख है, इसमें कितनी उच्चता है, इसे वेश्या के सिवा दूसरा कोई नहीं समझ सकता। जनाब, मुन्नी तवायफ अब चली, आप अमीर और बादशाह के प्रिय पात्र होकर इस दुनिया के रास्ते पर अडिग भाव से आगे बढ़ें। वेश्या की कन्या अब कभी आपकी पवित्र देह को स्पर्श करने की इच्छा नहीं करेगी।"

अकस्मात् वृक्ष की उस शीतल और शांत छाया को मुखरित करते हुए किसी ने दृढ़ कंठ से कहा—"छिः बेटी, यही तुम्हारा संयम है?"

सबने मुड़कर देखा कि कब्र के पास ही हरिनारायण खड़े हैं।

पैंसठवाँ परिच्छेद

नवीन की शास्ति

"नवीन, तुम्हारी मूर्छा दूर हो चुकी है, यह मैं देख रहा हूँ। अब आँखें मूँदकर पड़े रहने में कोई लाभ नहीं है।"

नवीन तुरंत अत्यंत विनीत, शांत और शिष्ट भक्त की भाँति उठकर, साष्टांग प्रणाम करके, हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। त्रिविक्रम ने पूछा—"नवीन, आज फिर तुमने मेरा पीछा क्यों किया?"

नवीन ने उत्तर देने की चेष्टा की, किंतु जिह्वा और कंठ के सूख जाने से शब्दों का उच्चारण नहीं कर सका। उसकी यह अवस्था देखकर त्रिविक्रम ने कहा—"बैठ जाओ, इतने भयभीत क्यों होते हो? मैं तुम्हारा अनिष्ट नहीं करूँगा।"

थोड़ा साहस बढ़ने पर नवीन ने अस्फुट स्वर से आर्त्तनाद किया। तब त्रिविक्रम बोले—"गहनों के लोभ से आए थे? तुम तो जानते हो कि तुम्हारे जैसे सैकड़ों हजारों नवीन भी चाहें तो मेरा अंगस्पर्श नहीं कर सकते।"

नवीन घबड़ाकर बोला—"नहीं, नहीं।"

"फिर किसलिये मेरा पीछा किया था?"

नवीन चुप रहा। उसे निरुत्तर देख त्रिविक्रम ने हँसकर कहा—"प्रामाणिक महाशय, सोचते हो कि चुप लगा जाने से छुटकारा मिल जायगा ?"

नवीन की दुष्ट बुद्धि ने उस समय तक भी उसका साथ नहीं छोड़ा था। वह सोच रहा था कि दिन में किसी प्रकार भी जल में आग नहीं लग सकेगी। और अगर लगे भी तो जो कुछ कबूल करना होगा, उसके बाद देखा जायगा। जब तक निरुपाय नहीं हो जाता तब तक चुप लगाए रहने में ही कल्याण है। उसका मनोभाव समझकर त्रिविक्रम बोले—"सोचते हो कि दिन है, क्यों ? उधर देखो, पानी बढ़ा चला आ रहा है।"

देखते देखते नवीन सूखी भूमि पर हाथ पैर चलाकर तैरने लगा। उसे प्रतीत होने लगा कि नदी का जल अकस्मात् उफन पड़ा है और उसे बहाए लिए जा रहा है। त्रिविक्रम बोले—"वह देखो, कितना बड़ा घड़ियाल है !"

सुनते ही नवीन भय से चीत्कार कर उठा। उसने स्पष्ट देखा कि एक प्रकांड घड़ियाल उसे ग्रसने चला आ रहा है। भय के कारण नवीन पुनः मूर्छित हो गया।

दूसरी बार जब उसकी मूर्छा दूर हुई तो उसने देखा कि पहले वह जिस सूखी भूमि पर गिरा था इस बार भी वहीं है और त्रिविक्रम थोड़ी दूर पर सूखे हुए वृक्ष की डाल पर बैठे हैं। उसे आँखें मलते देखकर त्रिविक्रम ने कहा—"क्यों नवीन, कैसा जी है ?"

दो बार गिरने से नवीन को काफी चोट लग चुकी थी। वह धीरे धीरे उठा और दोनों हाथों से त्रिविक्रम के पैर मजबूती से पकड़ लिए। त्रिविक्रम ने पूछा—"क्यों ? अब हुआ विश्वास ?"

उसने अत्यंत विनीत भाव से उत्तर दिया—"आज्ञा ?"

"सारी बातें कबूल करोगे ?"

"जो आज्ञा; अवश्य करूँगा। प्राणों से बढ़कर और है ही क्या ? अब तो आप ही बचाएँ तो बचूँ और मारें तो मरूँ।"

"तुम कौन हो ?"

"मैं कानूनगो हरनारायण का भेदिया हूँ ?"

"मेरा पीछा क्यों कर रहे हो ?"

"आपका पीछा नहीं कर रहा हूँ। आपके साथ जो स्त्रियाँ थीं उनका पीछा कर रहा था।"

"क्यों ? उन्होंने तुम्हारी कोई हानि की है ?"

"नहीं, लेकिन कल उन्हें हरिनारायण विद्यालंकार के साथ देखा था। सोचा था कि उनके द्वारा विद्यालंकार महाशय के बारे में खबर मिलेगी।"

"तो तुम हरिनारायण विद्यालंकार का समाचार चाहते हो ?"

"कानूनगो ने मुझे उन्हीं की खोज में मुर्शिदाबाद से काशी भेजा था।"

"क्यों ?"

"हरिनारायण विद्यालंकार कानूनगो के घोर शत्रु हैं। उनको वश में न करने से हरनारायण राय की बड़ी हानि होने की आशंका है !"

"तुम्हें यह कैसे मालूम हुआ कि हरिनारायण इस गाँव में हैं ?"

"वे गंगा में स्नान कर रहे थे—नाव पर से उन्हें देखकर मैं उतर पड़ा।"

"अब क्या करोगे ?"

"आपकी जो आज्ञा।"

"और अगर मैं कोई आज्ञा न दूँ ?"

"तो फिर जैसे भी होगा कानूनगो के छोटे भाई असीम राय को विद्यालंकार से अलग कराऊँगा।"

"उसके बाद ?"

"जिस प्रकार संभव होगा, विद्यालंकार को दूर करूँगा।"

"वह अगर दूर न होना चाहें तो ?"

"छल से, बल से, कौशल से, जैसे भी होगा, करूँगा। कानूनगो की आज्ञा है कि आवश्यक होने पर..."

"ब्रह्महत्या करोगे ?"

"इसमें भी कोई आपत्ति नहीं है।"

त्रिविक्रम हँसकर बोले—"नवीन, हरिनारायण मेरे बाल्यबंधु हैं। बचपन में ढाका में हरनारायण राय, हरिनारायण विद्यालंकार और मैं एक ही साथ खेला करते थे। कानूनगो हो जाने से हरनारायण की यथेष्ट उन्नति हुई है। देखो नवीन, तुम जब मेरे हाथों में पड़ गए हो तो हरिनारायण विद्यालंकार का बाल भी बाँका नहीं कर पाओगे। मेरी आज्ञा है कि तुम मुर्शिदाबाद लौट जाओ। हरनारायण के लिये मैं एक पत्र दे रहा हूँ—उसे दे देने पर तुम्हारे सारे दोष क्षमा हो जायँगे। तुम इसी समय गावँ छोड़कर चल दो। यहाँ रहने पर घड़ी भर के भीतर ही पागल हो जाओगे। चलो, मैं पत्र दे रहा हूँ, उसे लेकर तुरंत प्रस्थान कर दो।"

त्रिविक्रम और नवीन ने गंगातट का परित्याग कर ग्रामसीमा में प्रवेश किया। विश्वनाथ चक्रवर्ती के घर में नवीन को दूर ही से प्रवेश करते देख दुर्गा और बहू को रोमांच हो आया। हरिनारायण उस समय भी चंडीमंडप में वृद्ध वैष्णव से बातें कर रहे थे। नवीन को देखकर वे उठकर जाने लगे थे किंतु त्रिविक्रम के संकेत से पुनः बैठ गए। त्रिविक्रम ने कागज कलम लेकर एक छोटा सा पत्र लिखा और

उसपर मुहर करके नवीन को दे दिया। प्रणाम करके नवीन उठा। त्रिविक्रम ने विद्यालंकार से कहा—"अरे हरि! हरनारायण को सूचित कर रहा हूँ कि मैं फिर से संसारी हो गया हूँ और शीघ्र ही तुमसे मिलूँगा।"

कुछ उत्तर न देकर हरिनारायण धीरे से मुसकुरा पड़े।

चंडीमंडप में बैठकर त्रिविक्रम असीम के साथ कागजपत्र देखने लगे। वृद्ध वैष्णव थोड़ा हट गया। इसी समय असीम के श्वसुर आ पहुँचे। हरिनारायण उन्हें देखकर किंचित् हँसे। वे बोले—"विद्यालंकार महाशय, लड़की तो रो पीटकर आफत मचाए हुए है। आप कोई उपाय नहीं करेंगे तो मेरा घर में रहना मुहाल हो जायगा। कहती है, इस वैष्णव के साथ कोई सुंदरी युवती आई हुई है जो दिन रात जमाई बाबू की ओर आँखें फाड़-फाड़कर देखा करती है और जमाई बाबू की चाल-ढाल भी ठीक नहीं दिखाई देती।"

हरिनारायण ने विस्मय का भाव दिखाते हुए कहा—"सच? किंतु मित्र महाशय, असीम तो वैसा लड़का नहीं है। मगर जब आपकी लड़की इतनी दुःखी है तो मुझे लड़के को समझाना पड़ेगा। देखिए, इन मामलों में स्त्रियों के परामर्श के अनुसार चलने से काम नहीं होता। आप अगर बहू को दो एक दिन तक शांत रख सकें तो मैं असीम से कुछ न कहकर उस औरत को चलती करूँगा।"

मित्र महाशय ने कहा—"देखिए, जमाई बाबू ने एक प्रकार से दया करके मेरी जातिरक्षा की है। विवाह हुए अभी दो ही तीन दिन हुए हैं। इसी बीच उनसे मेरा कुछ कहना उचित नहीं। लेकिन आप जानते हैं, शैल मेरी बड़े प्यार की बेटी है—एकलौती संतान है। उसकी आँखों में आँसू देखकर मैं विचलित हो जाता हूँ।"

"सो तो है ही, सो तो है ही। आप निश्चिंत रहें, मित्र महाशय; जैसे भी होता है, मैं उस स्त्री को बिदा करता हूँ।"

मित्र महाशय संतुष्ट होकर चले गए। त्रिविक्रम अब तक एकाग्र मन से कागजपत्र देख रहे थे। उन्होंने सिर उठाया, बोले—"हरि, चेष्टा बेकार है। यह नई बहू संसारयात्रा में कदम कदम पर स्वामी को नागपाश में बाँधेगी। मुन्नी तो उपलक्ष्य मात्र है, तुम कुछ कर नहीं सकोगे।"

हरिनारायण ने थोड़ा हँसते हुए कहा—"यही अगर अदृष्ट का लेख है तो मैं और क्या कर सकूँगा? किंतु एक बार प्रयत्न करने में ही कौन सी हानि है? तुम कागजपत्र देखो, मैं अभी आया।"

छाछठवाँ परिच्छेद

वापसी

असीम के दोनों पैर छोड़कर मुन्नी दूर हट गई। असीम और सुदर्शन किंकर्त्तव्यविमूढ़ बने खड़े रहे—बहुत देर तक उनमें से किसी के मुहँ से कोई बात नहीं निकली। तदनंतर मुन्नी बोली—"बाबू जी, मैं आपका उपदेश भूली नहीं हूँ—अपना संयम और व्रत मैंने नहीं छोड़ा। केवल देवता की आँखों में आँसू देखकर एक क्षण के लिये मैं अचेत हो गई थी। खुदा की कसम खाकर कहती हूँ बाबू जी कि मैं अपने मन से इस देश में नहीं आई।"

हरिनारायण ने पूछा—"असीम, क्या तुम रो रहे थे?"

असीम ने कहा—"रोया तो नहीं था, पर मुन्नी की दशा देखकर मेरी आँखें गीली अवश्य हो गई थीं।"

हरिनारायण—"बेटी, इस प्रकार अदनी सी बात पर अचेत होने से तो तुम्हारे व्रत की रक्षा नहीं होगी। तुम्हारा व्रत बड़ा कठिन है। तुम अगर सचमुच असीम राय के प्रति देवता की तरह भक्ति करती हो तो तुम्हें अपने चित्त को और कठोर बनाना पड़ेगा।"

मुन्नी—और कठोर कैसे करूँ?

हरिनारायण—देखो बेटी, आदमी अपने मन को जिस प्रकार मोड़ेगा, उसी प्रकार का आकार वह धारण करेगा। तुम अगर चेष्टा

करो तो असीम की आँखों में आँसू देखना तो दूर रहा, स्वयं उसे मृत्यु की यंत्रणा से छटपटाते देखकर भी स्वच्छंद भाव से मुहँ मोड़कर चली जा सकती हो।"

मुन्नी—"यह तो बहुत कठिन बात है बाबू जी।"

हरि०—"क्या करूँ बेटी, मेरे भगवान और तुम्हारे खुदा ने तुम्हारे अदृष्ट में जो कुछ लिख रखा है उसे काटने की शक्ति जो आदमी में नहीं है। विधाता जीवन के आरंभ में ही तुमसे क्यों इस प्रकार विमुख हुए हैं इसे कैसे जानूँ बेटी? मनुष्य के भाग्य का जो विधान करनेवाले हैं उन्होंने हमारे भाग्य में क्या लिख रखा है, इसे वे ही जानते हैं; मैं तो केवल वही बात कह रहा हूँ जो मुझे उचित प्रतीत होती है। देखो बेटी, अगर अपने प्रिय पात्र का मंगल चाहती हो तो उसकी छाया भी स्पर्श मत करो। उसे जिस दिशा की ओर जाते देखो, तुम उससे विपरीत दिशा की ओर गमन करो। उसे स्वयं इच्छा करके देखने की चेष्टा मत करो। उसकी बात पर न तो कान दो और न उसके स्वरूप का ध्यान करो।"

मुन्नी—"बाबू जी, सब कुछ कर सकूँगी, लेकिन अंतिम बात मुझसे न हो सकेगी।"

हरि०—"चेष्टा करोगी तो धीरे धीरे वह भी होने लगेगा।"

मुन्नी—"चेष्टा करूँगी। इस समय क्या करना होगा?"

हरि०—"प्रातःकाल पटना लौट जाओ।"

मुन्नी—"मैं अभी जाने का विचार कर रही थी।"

हरि०—"साँझ हो गई है बेटी, इस समय जाने से लोग तरह तरह की बातें करेंगे। अभी जाने की आवश्यकता नहीं है। प्रातःकाल मैं तुम्हारे साथ आदमी कर दूँगा।"

मुन्नी—"मेरे पिता अगर अपने यहाँ मुझे न रहने दें तो?"

हरि०—"पटने में तुम्हें रहने की चिंता नहीं करनी होगी।"

मुन्नी—"नहीं जानती बाबू जी कि वहाँ क्या होगा। यह ठीक है कि पटने में तवायफ मुन्नी बाई को जगह की कमी न होगी, लेकिन भिखारिन मुन्नी को कोई जगह देगा या नहीं इसमें संदेह है।"

हरि०—"देखो बेटी, जिन्होंने जीवन दिया है वे ही उसकी रक्षा की व्यवस्था भी करते हैं। उनके चरणों में भक्ति रहेगी तो स्थान का अभाव नहीं होगा। अब घर चलो, मैं तुम्हारी पटना यात्रा की तैयारी किए देता हूँ।"

सब लोग विश्वनाथ चक्रवर्ती के घर लौट आए। त्रिविक्रम उस समय भी चंडीमंडप में बैठे कागजपत्र देख रहे थे। वृद्ध वैष्णव उनके सामने बैठा हुआ था। हरिनारायण को देखते ही उन्होंने कहा—"क्यों हरि, भाग्यचक्र की गति रुकी?"

हरिनारायण ने हँसकर उत्तर दिया—"अब कौन सी छलना की रचना करोगे?"

"छलना मुझे नहीं तुम्हें हुई है भट्टाचार्य! मैंने अच्छी तरह समझ बूझ लिया है, किसी प्रकार कोई बात बनती नहीं। विधाता की इच्छा के बिना भाग्यचक्र की गति रुकती नहीं। देखो, इसी गाँव में तुमने जिस समय संपन्न गृहस्थ की तरह नाव से काशीयात्रा आरंभ की थी उस समय मैं अधबुझी चिता की अग्नि में अत्यंत निकृष्ट अन्न पकाकर पेट पाल रहा था। वही मैं हूँ जो आज यह दिव्य अंगराग, वस्त्राभूषण धारण किए निपट संसारी बना हुआ हूँ। अभी एक वर्ष भी नहीं बीता है। तुम सोचते हो कि मैंने प्रयत्न नहीं किया? तूफान आ रहा है और उसमें पड़कर नाव डूब जायगी, यह सोचकर ही नाव पर सवार हुआ था। चाहता था कि मृत्यु हो जाय; लेकिन विधाता की इच्छा दूसरी थी। नाव तुम्हारे सामने ही डूब गई, लेकिन मैं मरा नहीं।"

इसी समय वृद्ध वैष्णव ने कहा—"ठीक कह रहे हैं महाराज; वृंदा-वन छोड़कर देश को लौट रहा था, सोच रहा था कि अपने नंदगोपाल को उपयुक्त हाथों में दिए बिना मरने की भी फुरसत नहीं मिलेगी, लेकिन गोपाल की इच्छा दूसरी ही थी। देश को तो लौटा नहीं, उलटे भवजाल में उलझ गया।"

हरिनारायण ने जिज्ञासा की—"क्यों बाबा जी, देश न लौटिएगा तो कहाँ जाइएगा ?"

"कहाँ देश लौटना होता है महाराज। गोपाल की इच्छा ! जिस रास्ते ले जायँगे उसी रास्ते जाना होगा।"

त्रिविक्रम हँसकर बोले—"हरिदास, वृद्धावस्था में देख रहा हूँ गोपाल से खूब मन मिलाकर चल रहे हो ?"

वृद्ध वैष्णव व्यस्त भाव से बोला—"कहाँ महाराज, मैं दीन, हीन, महापातकी ठहरा, मेरी क्या बिसात !"

सहसा त्रिविक्रम की आँखों में दो बूँद आँसू आ गए। वे बोले—"हरिदास, तुम्हारा ही मार्ग ठीक है। मैं तो इतने प्रयत्न पर भी उसे नहीं पा सका। न जाने महामाया मुझे क्यों फिर से संसार में खींच लाई ?"

"उसे भी शीघ्र ही जान जाइएगा महाराज। माँ अपने पुत्र के द्वारा भक्त की सेवा करा रही हैं। आप जैसे साधक को विपथ पर जाते देख माँ क्या स्थिर रह सकेंगी ?"

हरिनारायण विरक्तिपूर्वक बोले—"तुम लोगों ने यह कौन सा पुराण आरंभ कर दिया ?"

त्रिविक्रम बोले—"इस यात्रा में संभवतः और कुछ ज्ञात नहीं हुआ।"

वैष्णव बोला—' कहते क्या हैं महाराज, इस संसार के बंधन में रहकर जो कुछ ज्ञात हुआ है वही चरम सत्य है। दो चार दिनों में जब आँखें बंद हो जायँगी तब जानिएगा कि भाई भाई में अधिक भेद नहीं है।''

हरिनारायण ने कहा—''अब परमार्थ की चर्चा बंद करके स्वार्थ की चर्चा करो। कागजपत्र देख लिया ?''

त्रिविक्रम बोले—''देख लिया है; सब ठीक है।''

''असीम और भूपेंद्र ने अपना सब कुछ हरनारायण के नाम लिख दिया है।''

''कोई हर्ज नहीं। दानपत्र में विक्रय का अधिकार नहीं है। सब कुछ देवोत्तर है। ये तीनों भाई केवल सेवाधिकारी हैं। सोचता हूँ, मैं भी दो एक दिन में मुर्शिदाबाद चलूँ। असीम और सुदर्शन तो स्थल मार्ग से इलाहाबाद जायँगे। हरिदास चल नहीं सकेंगे, इसलिये हमें नाव से जाना होगा। कैसा रहेगा ?''

''बिलकुल ठीक।''

सरसठवाँ परिच्छेद

रूप की औषधि

हकीम शहीदुल्ला की आकृति विलक्षण थी। यौवन बीते बहुत दिन हो गए थे। बचपन और युवावस्था में भाग्यलक्ष्मी के साथ उनका अल्पकालीन साक्षात्कार रहा और युवावस्था बीतने पर अलक्ष्मी ने उनके चेहरे पर चिरस्थायी अप्रसन्नता का भाव अंकित कर दिया था। जान पड़ता है इसी कारण अच्छा चिकित्सक होने पर भी जो रोगी एक बार उन्हें देख लेते थे वे दुबारा उनके पास नहीं आते थे। हकीम शहीदुल्ला की आय बिलकुल नगण्य नहीं थी क्योंकि उन्होंने दिल्ली के एक प्रसिद्ध हकीम से चिकित्सा शास्त्र का अध्ययन किया था और इसका अभिमान उन्हें कभी भूलता नहीं था। किंतु उनका व्यय आय से बहुत अधिक था इसलिये उनके दिन बड़े कष्ट में व्यतीत होते थे। लोग तो यहाँ तक कहा करते थे कि आय के लिये हकीम साहब को बहुधा असत् उपायों का अवलंबन करना पड़ता है।

पटना उस समय बहुत बड़ा शहर था इसलिये नगर में हकीमों का अभाव नहीं था। इनमें कोई अत्यंत धनवान था, कोई अत्यंत दरिद्र। अपनी उत्तम चिकित्सा के लिये कोई अत्यंत विख्यात था और किसी को जाननेवाले उँगलियों पर गिने जा सकते थे। लोग कहते थे कि

चिकित्सा व्यवसाय में निपुण होते हुए भी असत् उपायों का अवलम्बन करने के कारण हकीम शहीदुल्ला को यश नहीं मिलता था। लोगों की यह धारणा सही हो या गलत, जो लोग प्रकाश्य रूप से चिकित्सकों की सहायता किसी कारण नहीं ले सकते थे उनमें से अनेक लोग हकीम शहीदुल्ला के पास आते थे। इसलिये हकीम साहब के यहाँ रोगियों की संख्या दिन की अपेक्षा रात में अधिक रहा करती थी।

कृष्णपक्ष की रात्रि है। गृहस्थों के घर और दूकानों में असंख्य दीपकों के होते हुए भी पटना शहर के राजपथ में अंधकार है। हकीम साहब के रोगी तीव्र आलोक के प्रति विरक्त थे इसलिये उनके घर के प्रवेशद्वार पर अँधेरा था और उसी अँधेरे में चार पाँच रोगी सिमटे हुए खड़े थे। हकीम साहब का नौकर उनमें से एक एक को बुला ले जाता था। जो लोग भीतर जाते थे वे इस मार्ग से फिर नहीं निकलते थे। धीरे धीरे यह अँधेरा प्रवेशमार्ग प्रायः जनशून्य हो गया और केवल एक प्रौढ़ा स्त्री बच रही। नौकर आकर उसे भी जब भीतर लिवा ले गया तब द्वार पर कोई शेष नहीं रहा। प्रौढ़ा ने जैसे ही भीतर कोठरी में प्रवेश किया वैसे ही बुर्का ओढ़े एक स्त्री ने शीघ्रतापूर्वक द्वार के भीतर पैर रखा। नौकर और प्रौढ़ा स्त्री ने एक के बाद एक करके कई कोठरियाँ पार कीं और उनके पीछे पीछे वह नवागंतुका स्त्री भी चलती गई। भीतर एक कोठरी में हकीम साहब एक मैले से बिस्तर पर बैठे हुए थे। भीतर छोटे बड़े आधारों पर हकीम साहब के चिकित्सा व्यवसाय का साज-सरंजाम सजा हुआ था। भीतर जाकर प्रौढ़ा ने उन्हें सलाम किया और खड़ी रही। हकीम साहब के चेहरे पर अप्रसन्न भाव देखकर उसे कुछ कहने का साहस नहीं हुआ। हकीम साहब तंबाकू का सेवन कर रहे थे। उन्होंने रोगिणी की ओर देखे बिना ही पूछा—"बीमार हो ?"

प्रौढ़ा ने व्यस्ततापूर्वक कहा—"हकीम साहब, मैं नहीं, मेरी लड़की बीमार है।"

"लड़की कहाँ है?"

"वह आना नहीं चाहती, जनाब!"

"तो दवा कैसे होगी?"

"इसीलिये तो आपके पास आई हूँ। सुना है, इस तरह की बीमारी की दवा आपके सिवा पटने में दूसरा कोई नहीं कर सकता।"

हकीम साहब ने मुँह फिराकर देखा और वृद्धा को बैठने का संकेत करके जिज्ञासा की—"लड़की की उम्र क्या है?"

वृद्धा हटकर भूमि पर बैठते हुए बोली—"बीस बाईस बरस होगी।"

"कौन सी बीमारी है?"

"सो तो पटने का कोई हकीम नहीं बता सका। मैं हाल बताती हूँ, आप खुद देखिए कि कौन सी बीमारी है। मेरी लड़की तवायफ है। देखने में सुंदर है। अभी नई उमर है, इसलिये खुदा की मेहरबानी से रोजगार में चार पैसे की आमदनी थी। बुढ़ापे में मेरे दिन भी लौट रहे थे। एकबारगी कहाँ से क्या हो गया, नहीं जानती। एक काफिर को देखकर लड़की बिलकुल पागल हो गई। उसे देखने के बाद से लड़की ने नाच मुजरा करना बंद कर दिया और पागलों की तरह रास्ते रास्ते घूमने लगी। आरजू मिन्नत कुछ भी नहीं सुनती। लोगों ने कहा, किसी शैतान का साया है। रोजे पर कितने ही मंत्र पढ़े, उस्ताद ने आकर झाड़ फूँक की, लेकिन किसी का कोई असर नहीं हुआ। आप के सिवा पटने के जितने मशहूर हकीम हैं, सबको दिखाया लेकिन कोई नहीं बता सका कि क्या बीमारी है। करीब एक महीना हुआ, न जाने

कहाँ चली गई थी। आज सुबह लौटी है। इसीलिये मैं आपकी खिदमत में आई हूँ।''

हकीम साहब ने हुक्के की नाल में मुँह लगाकर कहा—''बीमारी बहुत कड़ी है, लगकर दवा करनी पड़ेगी, नहीं तो नतीजा कुछ नहीं होगा।''

प्रौढा ने रोते रोते कहा—''हुजूर, मैं बड़ी गरीब हूँ। दवा और झाड़ फूँक करते कराते जो कुछ पास में था सब खर्च हो चुका। किसी तरह कुछ चीजें बेच बाचकर ये दो अशर्फियाँ जुटा पाई हूँ। बेटी मेरी अच्छी हो गई तो जैसे भी होगा दो अशर्फियाँ और नजर करूँगी।''

''दो अशर्फियाँ तो एक हफ्ते की दवा के लिये ही होंगी। दो तीन हफ्तों तक दवा खाए बिना कोई नतीजा नहीं निकलेगा।''

हकीम साहब की बातें सुनकर प्रौढ़ा कातर होकर रोने लगी। बोली—''हुजूर माँ बाप हैं; मैं गरीब लाचार ठहरी।''

हकीम शहीदुल्ला आदमी पहचानते थे। उन्होंने सोचा कि मोल भाव अधिक करने से शिकार हाथ से निकल जायगा। वे बोले—''अच्छा दो अशर्फियाँ निकालो; एक हफ्ते बाद फिर आना।''

वृद्धा बोली—''लेकिन वह दवा तो खाना ही नहीं चाहती ?''

हकीम साहब ने पूछा—''खाना खाती है ?''

''जी।''

उन्होंने सफेद रंग का कोई चूर्ण वृद्धा को दिया और बोले—''यह दवा मीठे शरबत के साथ पिला देना। दो तीन दिनों तक उसे बेहोशी सी रहेगी। उसी हालत में रोज सुबह यह दूसरी दवा दूध के साथ देना। होश आने पर वह दवा खाने से फिर कभी इनकार नहीं करेगी।''

वृद्धा ने दो अशर्फियाँ देकर दवा ले ली। नौकर आकर उसे दूसरे रास्ते से लिवा ले गया। इसी समय दूसरी स्त्री ने कमरे में प्रवेश किया।

अभ्यास के अनुसार हकीम साहब ने उससे पूछा—"बीमार हो ?" स्त्री ने उन्हें सलाम करके कहा—"हुजूर, मुझे रूप की बीमारी है। रूप किस तरह खत्म होगा, क्या आप बता सकते हैं ?"

वीणा विनिंदक कंठस्वर सुनकर हकीम शहीदुल्ला ने गरदन घुमाकर देखा। बुर्के के भीतर से भी उसकी सुगठित देहयष्टि स्पष्ट झलकती थी। हकीम साहब की निगाहें छोटी छोटी जूतियों में पड़े हुए उसके नन्हें नन्हें पैरों पर जाकर जम गईं। उन कुंदनवर्ण चरणों को देखकर हकीम साहब की चिरस्थायी अप्रसन्नता थोड़ी देर के लिये दूर हो गई। वे प्रसन्न होकर उस स्त्री से बोले—"बैठो।"

थोड़ी दूर पड़े हुए फटे से गलीचे पर उसके बैठने के उपरांत हकीम साहब ने पूछा—"तुम्हें रात में नींद आती है ?"

प्रश्न सुनकर स्त्री ने बुर्का उतार दिया। उसकी रूपराशि से हकीम साहब का वह कमरा एकबारगी मानो दमक उठा। उनकी आँखें उस रूप जाल में ऐसी उलझ गईं कि हटाए हटती ही नहीं थीं। वह स्त्री बोली—"हजरत, मुझे रात में नींद आती है, खाने में भी अरुचि नहीं होती, पागल भी नहीं हूँ—यह रूप ही मेरा काल है। इसी रूप के कारण मेरी सारी सुखसंपदा चली गई है। हकीम साहब, भला आप कह सकते हैं कि किस तरह मेरा रूप नष्ट होगा ? मैंने सुना है, आप नामुमकिन को भी मुमकिन कर सकते हैं। मेरे पास दौलत की कमी नहीं है; जितनी आप मागेंगे, मैं दूँगी। आप क्या सारी खराबियों की जड़ इस रूप को दूर कर सकेंगे ?"

असत्पथ का अवलंबन करनेवाले हकीम शहीदुल्ला इस रमणी की बातें सुनकर बड़े आश्चर्य में पड़ गए। उनके पचास वर्ष के जीवन में नाना प्रकार के स्त्री पुरुष सहस्रों वैध अवैध कार्यों के लिये उनकी

सहायता ले चुके थे लेकिन ऐसी असंभव याचना आज तक किसी ने नहीं की थी।

वृद्ध हकीम बोले—"बेटी, मैं बुड्ढा हो गया, बहुत दुनिया देख चुका, हजारों रोगियों की दवा मैंने की, लेकिन ऐसी दवा किसी ने नहीं माँगी। रूप तो खुदा की देन है, कोई खुद ख्वाहिश करके उसे नहीं पा सकता। अपना यह खुदाई नूर क्यों बरबाद करना चाहती हो बेटी? तुम्हारा आदमी कहीं चला गया है या उससे कुछ झगड़ा हुआ है? इस उम्र में मामूली वजहों को लेकर इस तरह की बातें हो जाया करती हैं, बेटी! मैं तुम्हारे इस रूप को दूर कर सकता हूँ, लेकिन एक बार बरबाद हो जाने पर फिर दुनिया भर के हकीम एक साथ कोशिश करने पर भी तुम्हारा यह रूप लौटा नहीं सकेंगे।"

वह स्त्री हँसी, उसने धीरे धीरे कहा—"जनाब, मैं तवायफ हूँ। महज मामूली तवायफ नहीं, तवायफ के पेट से पैदा हुई तवायफ हूँ। आज दस बरसों से इस पटने के बच्चे से लेकर बड़े बूढ़ों तक के मुहँ से सुनती आ रही हूँ कि मेरा रूप आलमगीर बादशाह की तरह दुनिया को जीत सकता है। अपने रूप की तारीफ सुनते सुनते मेरे कान पक गए। हुजूर, तवायफ का कहीं आदमी होता है; उसका आदमी महज रुपया है। सुनती हूँ कोई कोई तवायफ आदमी भी रखती हैं, लेकिन तब वे तवायफ नहीं रह जातीं—वे औरत हो जाती हैं। इस रूप से मैंने दुनिया फतह की है; आदमी की जात को लापरवाही से पैरों तले रौंदा है; लेकिन वही रूप आज मेरा दुश्मन हो रहा है। यह रूप मेरी ही राह का काँटा नहीं, मुझको ही बरबादी की राह पर ले जानेवाला नहीं, बहुत से गृहस्थों के बसे बसाए घर में आग लगानेवाला है। जनाब, तवायफ के रूप में आग लगा देने पर दुनिया का भला होगा, अल्लाह को खुशी होगी। कितनी ही सती और पतिव्रता औरतें

दोनों हाथ उठाकर आपको दुआ देंगी। मैं भी अपनी पाप की कमाई हुई अशर्फियों से आपकी दोनों मुट्ठियाँ भर दूँगी। हुजूर, आप उम्र में मेरे वालिद के बराबर हैं। मन में विचारकर देखिए कि जो तवायफ अपनी इच्छा से अपने रूप को खत्म कर देना चाहती है वह उसे पाने की फिर कोशिश करेगी?"

हकीम साहब उस स्त्री की बात सुनकर स्तंभित हो रहे। उनकी यह दशा देखकर स्त्री ने उनके पैरों के पास पाँच अशर्फियाँ रख दीं। स्वर्णमुद्राओं को देखते ही शहीदुल्ला की सद्वृत्तियाँ लुप्त हो गईं और उनके चेहरे पर पूर्ववत् अप्रसन्न भाव छा गया। वे बोले—"तुम्हारा रूप खत्म हो जायगा लेकिन थोड़ी तकलीफ होगी।"

स्त्री बोली—"हजरत, मैं दोजख की तकलीफ बरदाश्त कर रही हूँ। इससे बढ़कर तकलीफ और क्या होगी।"

"सारे बदन में घाव हो जायगा।"

"कोई हर्ज नहीं।"

"दवा का दाम दस अशर्फी होगा।"

"दवा ने अपना काम किया तो और दस अशर्फियाँ दे जाऊँगी।" इतना कहते हुए उसने और पाँच अशर्फियाँ आगे बढ़ाईं।

हकीम साहब ने एक मिट्टी के पात्र में उसे दवा दे दी और बोले—"आँखों को छोड़कर इस दवा का लेप सारे बदन में कर देना। इससे जख्म हो जायगा और तुम्हारा रूप चला जायगा।"

वह स्त्री सलाम करके बाहर चली गई।

अँधेरे राजमार्ग में एक आदमी उस स्त्री की प्रतीक्षा कर रहा था। स्त्री को इसका पता नहीं था। उसने उस स्त्री के शरीर पर हाथ रखकर कहा—"बेटी, यह दवा मुझे दे दो।"

शरीर पर हाथ पड़ने से वह स्त्री काँप उठी थी। उसकी यह दशा देखकर आगंतुक बोला—"डरो मत बेटी, मैं तो तुम्हारा बुड्ढा बेटा हरिदास हूँ।"

मुन्नी ने वह दवा वृद्ध को दे दी और कातर होकर उसके पैरों पर गिर पड़ी।

———

अरसठवाँ परिच्छेद

नई वैष्णवी

असीम को सूतीगाँव छोड़े दो तीन मास व्यतीत हो चुके। त्रिवि-क्रम और हरिनारायण मुर्शिदाबाद चले गए। सैयद अब्दुल्ला खाँ और हुसेनअली खाँ के साथ मिलकर बादशाह फर्रुखसियर काजुआ की लड़ाई में अपने भाई शाहजादा आजुद्दीन को परास्त कर आगरा तक पहुँच गए। दिल्ली से चलकर बादशाह जहाँदारशाह ने आगरे के पास यमुना किनारे समोगढ़ नामक स्थान में अपनी छावनी डाल दी। अकस्मात् वर्षा आरंभ हो गई और यमुना बढ़ गई। जहाँदारशाह सोचते थे कि नदी का जल उतरे बिना फर्रुखसियर की सेना इस पार नहीं आ पाएगी। अपनी इस धारणा के कारण वे इधर से निश्चिंत होकर बैठे हुए थे। लेकिन सैयद अब्दुल्ला खाँ ने दो तीन कोस हटकर अपनी समस्त सेना को पार उतार दिया। फर्रुखसियर भी इसी सेना के साथ पार चले गए और आगरे से चार कोस पर अकबर की कब्र के पास उन्होंने अपनी छावनी खड़ी कर दी। इस स्थान का नाम सराय रोजबहनी था और यह आगरे से मथुरा और दिल्ली जानेवाले मार्ग पर पड़ता था। जहाँदारशाह के लोगों ने जब सुना कि फर्रुखसियर की सेना ने नदी पार कर लिया है तो वे हताश होकर आगरे की ओर भागे। सन् ११२४ हिजरी की १२वीं जिलहिज्ज को रोजबहनी गाँव

की उस सराय के चारों ओर फर्रुखसियर की सेना फैली हुई थी। सैनिक अपने अस्त्रशस्त्र की सफाई में लगे हुए थे। शाही सड़क के दोनों किनारों पर बाजार लग गया था। इस बाजार में खाने पीने और पान की दूकानें ही अधिक थीं, केवल दो एक दूकानों में कपड़े और अस्त्रशस्त्र बिकते थे। पान की दूकानों पर सबसे अधिक भीड़ थी क्योंकि पान की प्रत्येक दूकान के सामने कोई पुरुष अथवा स्त्री सितार बजाती या गीत गा रही थी।

बाजार के उत्तरी सिरे पर अरहर के खेतों के पास छाएदार स्थान में एक व्यक्ति ने बड़ी सी पान की दूकान खोली थी लेकिन गायक या गायिका की व्यवस्था न होने से उसके यहाँ ग्राहकों का अभाव था। उसी रास्ते एक भिक्षुक अपनी युवती कन्या का हाथ पकड़े मथुरा की ओर चला जा रहा था। दूकानदार ने उसे देखकर पूछा—"बाबा, कुछ गाना बजाना जानते हो?"

वृद्ध भिक्षुक बोला—"नहीं भाई।"

पानवाले ने फिर पूछा—"लड़की गाती है?"

वृद्ध ने विरक्तिपूर्वक कहा—"मैं नहीं जानता।"

पानवाले ने तब बड़े विनय से वृद्ध का हाथ पकड़कर कहा—"बाबा, मेरे ऊपर थोड़ी मेहरबानी करो, तुम्हारी दया न होगी तो मेरा बड़ा नुकसान हो जायगा। बिना गाने बजाने के कोई ग्राहक इधर नहीं आ रहा है। साँझ हो गई है। सबेरे ही लड़ाई शुरू हो जायगी। इस वक्त बिक्री न हुई तो सारा सामान बरबाद हो जायगा।"

वृद्ध ने बड़ी उपेक्षा के साथ लड़की से पूछा—"तुम गाओगी?"

थोड़ी देर सोच विचारकर उसने उत्तर दिया—"मेरे गाने से अगर इसका कुछ लाभ होता है तो मुझे गाने में कोई आपत्ति नहीं है।"

पानवाले ने रास्ते के किनारे धूल कीचड़ से भरी भूमि पर अरहर के डाल पत्ते बिछा दिए। वृद्ध उसपर बैठ गया। लड़की उसके सामने खड़ी होकर गाने लगी—

कहाँ गए नटवर गिरधारी ?

तजिकै गोप-धेनु-कुल रोवत औ जसुदा महतारी।

गायिका का सुस्पष्ट और मीठा कंठस्वर छावनी के कोलाहल को भेदकर ऊपर उठा और किंचित् काल के लिये सर्वत्र स्तब्धता छा गई। तदुपरांत छावनी के लोग इस गायिका की खोज में निकल पड़े। वह गा रही थी—

बिरह अनल में जोगताप अलि नाहीं परत सँभारी।
को है सुनै कहौं मैं कासौं अपनो दुख बिस्तारी।

चारों ओर से आकर जनसमूह जिस समय पानवाले की दूकान के सामने एकत्र हो गया उस समय गाना खूब जमा। श्रोताओं में से कोई कोई कह उठता था—"गला क्या है, कोयल कूक रही है !"

सचमुच गायिका के चेहरे की गढ़न अच्छी होने पर भी रंग उसका कोयल की तरह ही काला था। उसने आगे गाया—

हम अबला अहीरि व्रजबासिनि, प्रीति रीति अनुहारी।
नंदनँदन कै संग गयो मन, अहि काँचुली उतारी।

काजुआ की लड़ाई के समय लूट में एक सैनिक को बहुत सा द्रव्य हाथ लग गया था। उसने चाँदी का एक सिक्का निकालकर गायिका की ओर बढ़ाया किंतु उसने लिया नहीं। खिन्न होकर सैनिक वह रुपया वृद्ध वैरागी को देने लगा मगर उसने भी सिर हिलाकर लेने से अस्वीकार कर दिया। हतप्रभ होकर सैनिक कहने लगा—"रुपया नहीं लेना है तो इस तरह गाने की क्या जरूरत थी ?"

पास खड़े श्रोता ने कहा—"ये तो इसी रास्ते से जा रहे थे; पानवाले की दूकान पर ग्राहकों को जुटाने के लिये उसी के कहने से गा रहे हैं।"

गायिका गा रही थी—

कहाँ गए नटवर गिरधारी ?

इसी समय जनसमूह में एक ओर खलबली हुई। लोग इधर उधर भागने लगे। पानवाले ने खड़े होकर देखा कि कोई घुड़सवार लोगों के बीच से रास्ता निकालकर उसी की दूकान की ओर आ रहा है। गाना रुक गया। लोग चले गए। पानेवाले को चार पैसे मिलने लगे थे। वह सिर थामकर बैठ रहा। दूकान के सामने पहुँचकर सवार ने वृद्ध से पूछा—

"मुन्नी कहाँ है, मुन्नी बाई! मैं फरीद खाँ हूँ, पटने का फरीद खाँ।"

गायिका उस समय सिर का आँचल खींचकर वृद्ध के पीछे खड़ी थी। सवार ने वैरागी से पूछा—"तू कौन है?"

वृद्ध बोला—"हुजूर, हिंदू फकीर हूँ। बंगाल से आ रहा हूँ, मथुरा जाऊँगा। यह मेरी पाली हुई लड़की है।"

उत्तर सुनकर वह दीर्घाकार मुसलमान योद्धा एकदम संकुचित हो गया। जिस आशा के भरोसे वह उत्साह के साथ आया था, उसकी पूर्ति न होने के कारण उसके शरीर का समस्त बल, दर्प और गर्व मानों उड़ गया। निराशा के भार से उसकी देह बिलकुल झुक गई। वह उद्धत सैनिक शांत और शिष्ट व्यक्ति की तरह लौट गया।

छावनी के लोग चारों ओर से आकर पुनः एकत्र हो गए और गायिका से गाने का अनुरोध करने लगे। पानवाला भी दूकान से उतर-

कर वृद्ध के हाथ पैर जोड़ने लगा। उन सबके अनुरोध से विवश होकर गायिका ने पुनः गाया—

कहाँ गए नटवर गिरधारी ?

घुड़सवार उस समय तक बहुत दूर नहीं गया था। गायिका का कंठस्वर उसके हृदय को स्पर्श कर रहा था। घोड़े की लगाम खींचकर वह खड़ा हो गया। फरीद खाँ लौटा। वह इस बार धीरे धीरे आकर जनसमूह के एक किनारे खड़ा हो गया। उसे देखकर दो एक श्रोताओं ने संभ्रमपूर्वक उसके लिये रास्ता दे दिया किंतु वह आगे नहीं बढ़ा। फरीद खाँ ने देखा कि गायिका हूबहू मुन्नी की तरह है, लेकिन उसकी आँखों में वैसी चंचलता नहीं है; वे स्थिर हैं, उनमें वारवनिताओं जैसी अस्थिरता का सर्वथा अभाव है। उसकी अंगभंगी में लालित्य है, पर निर्लज्जता नहीं है। गहरी साँस लेकर फरीद खाँ वहाँ से चला गया।

उनहत्तरवाँ परिच्छेद

आगरे की लड़ाई के बाद

१३वीं जिलहिज्ज को प्रातःकाल से ही वर्षा होने लगी। धुआँधार पानी पड़ने से चारों ओर घना अंधकार छा गया। दोनों बादशाहों के आदमियों में से जिसे जहाँ आश्रय मिला वह वहीं लुक-छिपकर बैठ रहा। वृद्ध वैष्णव हरिदास तथा मुन्नी सराय रोजबहनी के पास ही एक कब्रिस्तान में टिकी थीं। रात में तीन राजपूत सैनिक, एक गदहा तथा दो कुत्तों ने भी उसी स्थान पर आतिथ्य ग्रहण किया था। जाड़े के दिन थे। घनघोर वर्षा में बाहर शीत के कारण ठहरना असंभव था। वर्षा दिन भर होती रही। अपराह्न में वर्षा थमने पर तीनों सिपाही चले गए। चलते समय वे हरिदास से कहते गए कि शायद आज ही यहाँ लड़ाई होगी, इसलिये अब बाहर निकलना ठीक नहीं है।

आगरे में जिस समय लड़ाई समाप्त हुई उस समय दो पहर रात बीत चुकी थी। हरिदास और मुन्नी ने वह सारी रात जागकर काटी। युद्धक्षेत्र से चार पाँच कोस के भीतर तक का कोई भी व्यक्ति उस रात पहले तो युद्ध के कोलाहल के कारण, तदुपरांत घायलों की चीखपुकार के कारण सो नहीं सका। दूसरे दिन प्रातःकाल लोगों को यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि जुलफिकर खाँ और बादशाह जहाँदारशाह भाग खड़े हुए। पुराने बादशाह को भूल-

कर लोग नए बादशाह की वंदना करने में प्रवृत्त हुए। हरिदास और मुन्नी ने भी कब्रिस्तान से निकलकर मथुरा की ओर प्रस्थान किया।

उस समय तक रास्ते के दोनों ओर घासों पर ओस की बूँदें जमी हुई थीं और हेमंत का बालसूर्य पूर्वाकाश की गोद में बैठ नहीं पाया था। गत रात्रि के युद्ध के चिह्न आगरे से लेकर यहाँ तक दिखाई पड़ने लगे थे। एक सुंदर घोड़ा यथासाध्य हाथ पैर पटक-पटककर शीघ्र दम तोड़ने की चेष्टा कर रहा था। बंदूक की गोली उसका पेट छेदकर पीठ की ओर निकल गई थी। दो गीदड़ और बहुत से कौवे रास्ते के किनारे बैठे हुए उसकी मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे थे। घोड़े के पास से होकर जाते समय मुन्नी उसकी मृत्युयंत्रणा देखकर सिहर उठी। वृद्ध ने लक्ष्य करके कहा—"बेटी, इस संसार में रहना है तो इस साधारण से कष्ट को देखकर सिहरने से कैसे काम चलेगा? मनुष्य ने ही इसके पूर्वजों को जंगल से पकड़ लाकर उनका पालन पोषण किया था। वही मनुष्य अब अपनी इच्छा से इसे ऐसी यंत्रणा देकर मार रहा है। तुम भी मनुष्य हो, मनुष्य समाज में ही तुम्हें भी रहना है, इसलिये मनुष्य के क्रिया कलाप पर सिहरने से कैसे पार लगेगा बेटी?"

मुन्नी दुबारा काँप उठी; बोली—"बाबा, मनुष्य किसी जीव को क्यों इतना कष्ट पहुँचाता है, सो समझ में नहीं आता।"

वृद्ध हरिदास ने जीभ निकालकर कहा—"ऐसा नहीं कहते बेटी, हम लोग तो भगवान के हाथ की कठपुतली हैं, वे जो नाच नचाते हैं हमें वही नाच नाचना पड़ता है।"

मुन्नी की समझ में कुछ नहीं आया। उसने पूछा—"आपकी बात मैं समझ नहीं सकी बाबा! जहाँदारशाह अगर अपने भतीजे के साथ लड़ाई न करते तो शायद ऐसा सुंदर घोड़ा असमय में न मरता।"

"युद्ध के सिवा और उपाय ही क्या था बेटी ? पुतलियों को जो नचानेवाले हैं उन्हीं की मर्जी के अनुसार पुतलियाँ नाचती हैं। जहाँदारशाह क्या अपनी इच्छा से युद्ध को रोक सकता था ? नहीं; सिंहासन का त्याग कर देने पर भी नहीं।"

मुन्नी कुछ कहने जा रही थी, किंतु पास में ही अस्फुट आर्त्तनाद सुनकर उसके मुँह की बात मुँह में ही रह गई। पता लगाने पर मुन्नी ने देखा कि शाही सड़क के एक किनारे बनी बड़ी सी मीनार के पास एक मुसलमान पड़ा हुआ है और उसके नीचे दो एक आदमी और दिखाई दे रहे हैं। उनमें कौन जीता है, कौन मर गया है, यह कहना कठिन है। मुन्नी उन्हें देखते ही उनके पास दौड़ गई और मुसलमान को हटाकर मीनार से सटाकर बैठा दिया।

हरिदास बोला—"बेटी, सिकंदरे से लेकर आगरे तक लाशें बिछी पड़ी हैं, तुम किस किसकी सेवा सुश्रूषा करोगी ? दिन भर चलते रहने पर कहीं संध्या तक मथुरा पहुँचना होगा।"

वृद्ध के हाथ से कमंडलु लेकर मुसलमान के मुँह पर जल का छींटा देती देती मुन्नी बोली—"यह अभी जीवित है बाबा, जब तक जान है, तब तक छोड़कर जा न सकूँगी।"

हरिदास थोड़ा हँसकर किनारे बैठ गया। इसी समय उस मुसलमान ने मुँह खोला। मुन्नी ने कमंडलु से थोड़ा जल उसके मुँह में ढाल दिया, किंतु ढालते ही मुन्नी धाड़ मारकर रो उठी। वह कहने लगी—"फरीद, फरीद भाई।"

वृद्ध हरिदास भी व्यस्त भाव से उठा और जहाँ फरीद खाँ गिरा था वहाँ आकर दूसरे आदमी को देखने लगा। थोड़ी देर में फरीद खाँ ने आँखें खोल दीं। बहुत धीमे स्वर से उसने कहा—"मैं फरीद खाँ

हूँ। पटने में मेरे बूढ़े माँ बाप हैं। उन्हें खबर कर दीजिएगा कि फरीद ने अपने बाबा की तरह ही कूच किया।"

मुन्नी रोते रोते बोली—"फरीद भाई, मैं मुन्नी हूँ, मुझे पहचानते नहीं ?"

फरीद बोला—"तुम दोजख की बाँदी हो। मेरी मुन्नी तो बहिश्त के फूलों जैसी है।"

मुन्नी ने उसके कान से मुँह सटाकर कहा—"फरीद भाई, मैंने अपने को छिपाने के लिये चेहरे का रंग बदल लिया है। मैं सचमुच मुन्नी हूँ। बाँदी कहो, चाहे परी कहो, मैं वही मुन्नी हूँ।"

फरीद खाँ ने तब बड़े कष्ट से अपने दोनों आहत हाथों को उठाकर उसके कंधों पर रख दिया और बोला—"मुन्नी, मेरे जैसे पापी को भी खुदा भूला नहीं। इसीलिये मरते समय उसने तुम्हें भेज दिया। मुन्नी, तुम पटने लौट जाओ। पिता से कहना कि उनका बेटा तवायफ के पीछे पीछे जरूर घूमा करता था मगर मरते समय वह अपने सब पापों का प्रायश्चित कर गया। वह मुगल बादशाहों के नमक को भूला नहीं। बापजान को मेरे मरने की खबर देकर तुम्हारी जहाँ इच्छा हो चली जाना।"

मुन्नी रोते रोते बोली—"फरीद, तुम्हीं अपने माँ-बाप की आँखों की रोशनी हो, मैं तुम्हें मरने न दूँगी।"

वृद्ध वैरागी ने आकर पूछा—"कमंडलु में पानी बचा है ?"

मुँह उठाकर मुन्नी ने देखा कि मीनार के पास असंख्य लाशों की ढेर में और एक परिचित मुख मृत्यु की काली छाया के भीतर से स्पष्ट हो उठा है। वह पुनः रो पड़ी। कमंडलु से दूसरे व्यक्ति के मुँह में जल डालते डालते वैरागी ने कहा—"बेटी, गोपाल की इच्छा नहीं है कि

आज मथुरा पहुँचूँ। सोचा था, आज का विश्राम विश्रामघाट पर होगा, पर प्रभु की मर्जी कुछ दूसरी ही है।"

फरीद को छोड़कर मुन्नी कुछ देर के लिये द्वितीय व्यक्ति के पास चली गई। थोड़ी देर की सुश्रूषा के बाद उसने कहा—"मेरा नाम असीम राय है। संसार में मेरा कोई नहीं है। किसी को कोई संवाद देने की आवश्यकता नहीं है।"

असीम के चेहरे पर बहा हुआ रक्त पौष मास के शीत के कारण जमकर बरफ की तरह कठोर हो गया था।

सत्तरवाँ परिच्छेद

सरस्वती का नवावतार

दुर्गा बोली—"चेहरा तो पहचाना हुआ मालूम होता है। रह-रहकर मुझे संदेह होता है कि इसे कई बार देखा है।"

बहू ने कहा—"मेरा मन भी ऐसा ही कह रहा है दीदी, इसकी बोली मानों कई बार सुन चुकी हूँ।"

पास ही शैल बैठी हुई थी। वह बोली—"आप लोगों की बातें! वैष्णवी दीदी कहती हैं कि उनका घर, उनकी चालढाल, बातचीत सब ढाका की ओर की है। आप लोग कभी ढाका गई हैं जो उसे पहचानेंगी?"

दुर्गा—"ढाका क्यों जाऊँगी? ढाका के कितने ही लोग हमारे मुर्शिदाबाद के उस पार डाहापाड़ा में रहते हैं।"

बहू—"ढाका के बहुत से लोगों को देखा है किंतु इसकी बातचीत वैसी नहीं है।"

इतने में सती हँसती हुई आई। पूछा—"क्या बातें हो रही हैं?"

शैल गंभीरतापूर्वक बोली—"सती दीदी, नई वैष्णवी पहले दिन से ही इन लोगों की कोपभाजन बनी हुई है। गरीब घर की स्त्री ठहरी,

दिन बुरे आने पर अपने स्वामी के साथ परदेश आई हुई हैं, उसपर तुम लोगों का इतना क्रोध क्यों है?"

बहू—"क्रोध क्यों होगा भाई। आवाज पहचानी हुई लगती है, यही तो कह रही हूँ।"

दुर्गा—"अच्छा छोटी बहू, वह गाना जानती है?"

शैल—"नहीं। लाज के मारे उसके मुँह से आवाज ही नहीं निकलती। उस दिन उसे नई साड़ी दी थी; कितना कहा कि इसे पहन लो, लेकिन उसने कुछ सुना ही नहीं।"

दुर्गा—"किंतु मुझे तो लगता है कि यह स्त्री रात दिन वेश बदले रहती है।"

शैल—"ऐसा मत कहो जीजी, वह बेचारी बड़ी भली है। थोड़ा बहुत जो कुछ मिल जाता है उसी पर दिन भर काम में जुटी रहती है। रह रहकर किसी चिंता में अवश्य पड़ जाती है। उसकी अवस्था किसी समय बड़ी अच्छी थी। आजकल हालत बिगड़ गई है, इसी से शायद दुःखी रहती है। मेरी श्रीमती को तुम लोग दोष मत दो, बेचारी बड़ी अच्छी है।"

दुर्गा—नहीं भाई, तुम्हारी लक्ष्मी को कोई दोष नहीं देगा। उसका नाम शायद श्रीमती है? हमलोगों को तो इतने दिन चेष्टा करने पर भी उसका नाम नहीं मालूम हो सका।"

इसी समय अधेड़ अवस्था की एक सधवा स्त्री आई और सिर का कपड़ा थोड़ा आगे खींचकर खड़ी हो गई। उसे देखकर सती ने पूछा—"क्या चाहिए?"

स्त्री बोली—"चाहिए कुछ नहीं। उस घर के मालिक ने छोटी बहू जी को बुलाया है।"

पिता बुला रहे हैं, सुनकर शैल चली गई। लेकिन वह स्त्री फिर भी खड़ी रही। यह देख सती ने जिज्ञासा की—"और हालचाल कैसा है ?"

स्त्री बोली—"काम सब हो चुका, आज्ञा हो तो घाट की ओर हो आऊँ।"

सती बोली—"चलो, मैं भी चलती हूँ।"

गाँव से निकलकर गंगा किनारे जाते जाते सती ने श्रीमती से बहुत सी बातें पूछीं—"तुम लोग कितने दिन मुर्शिदाबाद रहीं ?"

श्रीमती ने कहा—"बहुत दिन।"

किंतु तत्काल सँभलकर पुनः कहा—"यही चार पाँच बरस।"

"मुर्शिदाबाद शायद बहुत बड़ा शहर है ?"

"उतना बड़ा शहर बंगाल में दूसरा नहीं है। ढाका से भी बड़ा है।"

"तुमलोग कहाँ रहती थीं ?"

"शहर के पास ही लालबाग में।"

"किरीटेश्वरी वहाँ से कितनी दूर है ?"

"पाँच छः कोस।"

"तुम वहाँ गई हो ?"

"कई बार जा चुकी हूँ।"

नहा-धोकर दोनों गाँव में लौट आईं। सती को घर तक पहुँचाकर श्रीमती ने भीगे वस्त्रों में ही मित्र महाशय के घर में प्रवेश किया। उस समय शैल आँगन में बैठकर अपने आजानुलंबित बाल सँवार रही थी। श्रीमती उसके हाथ से कंघी लेकर बालों को सुलझाने लगी। अनेक प्रकार से रोते-कलपते, इधर उधर की बहुत सी बातें करते करते

श्रीमती ने सहसा कहा—"छोटी बहू, एक विनती है, अभय दो तो कहूँ।"

शैल ने विस्मयपूर्वक कहा—"अभय क्यों?"

"नहीं बहू जी, बड़े घर की बात ठहरी, हम लोग छोटे आदमी हैं, कहते हुए डर लग रहा है।"

"अच्छी बात है, दिया अभय, बोलो।"

"यहाँ ठीक नहीं होगा, भीतर चलिए।"

आँगन से उठकर दोनों दोतल्ले की एक कोठरी में चली गईं। शैल ने पूछा—"क्या कहती थीं, बोलो।"

श्रीमती ने उसे प्रणाम करके कहा—"मैं कायस्थ नहीं हूँ, जात वैष्णव[1] की लड़की हूँ। मेरा नाम सरस्वती है। आपके श्वसुरकुल में बहुत दिनों से सेवा करती आ रही हूँ। आपके विवाह का समाचार पाकर आपकी जेठ-जेठानी ने मुझे यहाँ भेजा है।"

इतना कहते कहते सरस्वती की पूर्वी बंगाल की भाषा और हावभाव बदल गए। शैल चकित होकर उसका यह परिवर्तन देख रही थी। सरस्वती कहने लगी—"विशेष कारण न होता तो आपके जेठ और जेठानी मुझे आपके पास न भेजते। वे लोग बहुत बड़े आदमी हैं। ढाका के निवासी अभी भी आपके श्वसुर महाशय का नाम स्मरण किए बिना जल नहीं ग्रहण करते। आपका श्वसुरकुल जगद्विख्यात है। उसी घर की अब आप बहू हैं। आपसे कहे बिना इस संकट से छुटकारा पाना कठिन है, इसीलिये उन लोगों ने मुझे आपके पास मेजा है।"

१—अपनी मूल जातियों से पृथक् हुए लोगों की एक स्वतंत्र जाति।

—अनु०

शैल ने हठात् पूछा—"तुम जब मेरी ससुराल की पुरानी दासी हो तो यों छिपकर क्यों आई हो ? और इसी का क्या प्रमाण है कि तुम सच बोल रही हो ?"

सरस्वती हँसने लगी; बोली—"ठीक कहती हो बहू जी, बड़े घर की बहू जैसा ही प्रश्न है। आपके श्वसुरकुल के नाम पर कालिख पुतना चाहती है, इसीलिये उन लोगों ने मुझे तुम्हारे पास भेजा है—और यह है उसका प्रमाण।"

उसने टेंट में से एक पत्र निकालकर शैल के हाथ पर रख दिया। शैल लिखना पढ़ना नहीं जानती थी। उसने पत्र लेकर अपनी खूँट में बाँध लिया और बोली—"मेरे श्वसुरकुल के कलंक की बात तुमने नहीं बताई ?"

सरस्वती मुसकुराकर बोली—"देखो छोटी बहू, यह बात तुमसे सरस्वती वैष्णवी ने कही है, इसे अपने ही तक तो रखोगी न ? बोलो, मेरी जान तो बचाओगी न ?"

शैल ने दृढ़तापूर्वक कहा—"हाँ, बचाऊँगी।"

"यह जो कलूटी पठिया दुर्गा है न, यही समस्त अनर्थों की जड़ है। छोटे मालिक को मुँह से तो दादा कहती है लेकिन उसी के लिये छोटे मालिक देश छोड़ परदेश में भटक रहे हैं। गाँव में जब थुड़ी थुड़ी होने लगी, पाँच पंचों ने मिलकर जब विद्यालंकार महाराज को जात बाहर कर दिया तब बालबच्चों की माया छोड़ न सकने के कारण उन्होंने काशीयात्रा का निश्चय किया। छोटे मालिक को दुर्गा के बिना चैन कहाँ ? सो उन्होंने भी झूठमूठ बड़ी माँ जी के साथ झगड़ा करके घर छोड़ दिया। रास्ते में दोनों मिल गए। छोटे मालिक से बिछुड़ना न पड़े, इसलिये दुर्गादेवी बुड्ढे ब्राह्मण बेचारे को काशी नहीं जाने देती। उसे लाज शरम बिलकुल नहीं है। पटना

जाकर बूढ़े बाप की आँखों में धूल झोंककर दोनों पती पत्नी की तरह रह चुके हैं। अधिक क्या कहूँ; दोनों को एक दूसरे से अलग किए बिना तुम्हारा कल्याण नहीं होगा।"

शैल ने अपना चेहरा घने बादल जैसा गंभीर बनाकर कहा—"बड़े मालिक से कह देना कि ऐसा ही होगा।"

सरस्वती एक बार फिर प्रणाम करके बोली—"छोटी बहू, मैं अभी सूतीगाँव में दो चार दिन रहूँगी। किसी उपाय से दुर्गा को घर से निकाल दिया गया तो तुम्हारे जेठ ने अच्छी बखशीस देने का वचन दिया है।"

एकहत्तरवाँ परिच्छेद

बंगाल के सूबेदार और कानूनगो

राजमहल अभी पूरी तरह बनकर तैयार नहीं हुआ था। अपूर्ण राजप्रासाद में विस्तृत चँदवे के नीचे सूबा बंगाल, बिहार और उड़ीसा के सूबेदार मुर्शिद कुली जाफर खाँ का दरबार लगा हुआ था। प्रधान कानूनगो दर्पनारायण राय, द्वितीय कानूनगो हरनारायण राय इत्यादि राजस्व विभाग के कर्मचारीगण उनके दाहिनी ओर बैठे हुए थे। सूबेदारी का कार्यालय और सैन्य विभाग अभी तक जहाँगीरनगर (ढाका) से यहाँ नहीं आया था। फर्रुखसियर ने आगरे की लड़ाई के पहले रशीद खाँ नामक एक अधिकारी को बंगाल के तीनों सूबों का सूबेदार नियुक्त करके भेजा था किंतु वह मुर्शिदाबाद से तीन कोस दूर पराजित किया जा चुका था। आगरे की लड़ाई का समाचार तब तक मुर्शिदाबाद नहीं पहुँच पाया था। मुर्शिदा-बाद के फौजदार मुहम्मद खाँ, सैयद अनवर खाँ जौनपुरी तथा बंगाल के प्रमुख और विश्वस्त अमीर लोग नवाब के बाईं ओर बैठे हुए थे। नवाब के दामाद शुजाउद्दीन खाँ ने बंगाल के तीनों सूबों का राजस्व लेकर दिल्ली की ओर प्रस्थान किया था। इलाहाबाद में फर्रुखसियर, सैयद अब्दुल्ला खाँ तथा सैयद हुसेन अली खाँ ने राजस्व के रुपयों की सुरक्षा के बहाने उसे किले के भीतर ले जाकर सब रुपए छीन लिए

थे। तब से शुजाउद्दीन का कोई समाचार नहीं मिला था। दामाद की खबर न मिलने से बूढ़े नवाब बड़े चिंतित थे। वास्तविक सम्राट् कौन है—जहाँदारशाह या फर्रुखसियर, इसी की आलोचना हो रही थी कि चोबदार ने आकर समाचार दिया कि विक्रमपुर परगने के भूतपूर्व फौजदार, जहाँगीरनगर (ढाका) के भूतपूर्व थानेदार और जिन्नतमकानी शाहजादा अजीमुश्शान के भूतपूर्व खानसामा राय त्रिविक्रम राय दरबार में हाजिर होना चाहते हैं। नाम सुनकर जाफर खाँ को हँसी आ गई। हरनारायण राय का मुख मलीन हो गया। सैयद अनवर उठ खड़े हुए। दरबार के सभी लोग बड़े विस्मित हुए क्योंकि त्रिविक्रम राय का नाम इससे पहले मुर्शिदाबाद में सुनाई नहीं पड़ा था।

जाफर खाँ ने पूछा—"त्रिविक्रम राय क्या हिंदू फकीर के वेश में आ रहे हैं!"

चोबदार बोला—"जनाब आली, राय साहब दरबारी पोशाक में आए हुए हैं।"

जाफर खाँ ने सैयद अनवर से पूछा—"आप क्यों उठ खड़े हुए?"

अनवर बोले—"जनाब आली, त्रिविक्रम राय मेरे पुराने साथी हैं। इब्राहीम खाँ के समय में जहाँगीरनगर में हम लोगों ने एक साथ मनसब पाया था।"

जाफर खाँ ने पेशकार नाजिर अहमद खाँ से पूछा—"सूबे के मनसबदारों में त्रिविक्रम राय का नाम क्या अब तक मौजूद है?"

पेशकार ने कागजपत्र उलट-पुलटकर कहा—"जनाब आली, आलमगीरी अमलदारी में आप दोनों कानूनगो के और त्रिविक्रम राय के नाम अब तक मौजूद हैं।"

इसे सुनकर सूबेदार ने सैयद अनवर से कहा—"तुम जाकर त्रिविक्रम को लिवा लाओ।"

यह आज्ञा सुनकर चोबदार किंचित् खिन्न हो गया क्योंकि नवीन मनसबदार को लिवा लाने का अवसर यदि उसे मिलता तो वह एक अशर्फी बखशीस पाता।

आलमगीरी अमलदारी अर्थात् बादशाह औरंगजेब आलमगीर के राज्यकाल में जिन कर्मचारियों की नियुक्ति हुई थी, मुगल साम्राज्य के अंतिम दिनों में वे बड़े संमान की दृष्टि से देखे जाते थे। औरंगजेब के प्रधान मंत्री अमीर उल् उमरा असद खाँ सद्गुण और कर्त्तव्यनिष्ठा का प्रमाण पाए बिना किसी को मनसब नहीं देते थे। औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात्, विशेषतः जहाँदारशाह और फर्रुखसियर के शासन-काल में, बहुतेरे अनुपयुक्त व्यक्तियों को मनसबदारी मिलने लगी जिसके कारण मुगल साम्राज्य के ध्वंस का मार्ग और प्रशस्त हो गया।

सैयद अनवर गए और त्रिविक्रम को यथारीति लाकर दरबार में उपस्थित किया। त्रिविक्रम ने ग्यारह अशर्फियाँ नजर कीं, कोरनिश किया और मसनद पाई। राजरीति समाप्त होने पर नवाब जाफर खाँ ने उनसे पूछा—"त्रिविक्रम राय, तुम इतने दिनों तक कहाँ थे?"

त्रिविक्रम ने उत्तर दिया—"जनाब आली, एक औरत के लिये फकीर हो गया था और एक दूसरी औरत के लिये फिर संसार में लौट आना पड़ा।"

वृद्ध नवाब ने हँसते हुए कहा—"राय जी, औरत ही इस दुनिया की दुश्मन है, एक दिन उसी के पीछे जान चली जायगी।"

"जनाब आली, जब फिर से संसारी हुआ हूँ तो जीविका के लिये काम करना जरूरी है। इसीलिये दरबार में हाजिर हुआ हूँ।"

नवाब बोले—"तुम्हारे समान विश्वासपात्र कर्मचारी को तो कोई भी सूबेदार हाथों हाथ लेना चाहेगा। तुम्हारा मनसब, आयमा[1] सभी कुछ तो मौजूद है राय जी; तुम कौन सा काम करना चाहते हो ?"

त्रिविक्रम ने हँसकर कहा—"जनाब, सदा से मैं खालसा दफ्तर[2] में रहा। राजस्व का जो कोई भी काम होगा, कर लूँगा।"

नवाब ने कहा—"राय जी, खालसा सरिश्ते का कामकाज आजकल गड़बड़ हो गया है। नए बादशाह का हुक्म मिलने तक तुम इन तीनों सूबों की नायब दीवानी सँभालो।"

दरबार के समस्त उपस्थित व्यक्तियों ने 'करामत', 'करामत' कहकर नवाब का साधुवाद किया। वृद्ध दर्पनारायण राय का मुख प्रसन्नता से चमक उठा किंतु क्षुद्रकाय हरनारायण राय के चेहरे पर मुर्दनी छा गई।

त्रिविक्रम दरबार में एक किनारे बैठे रहे। दरबार का कार्य चालू रहा। दोपहर तक उस दिन की समस्त अर्जियाँ सुनकर जब नवाब दरबार से चले गए तब प्रधान कानूनगो दर्पनारायण राय ने हरनारायण से कहा—"क्यों जी, तुमने तो त्रिविक्रम को पहचाना भी नहीं ?"

हरनारायण ने शुष्क कंठ से कहा—"पहचाना क्यों नहीं; मैंने तो पहले ही पहचान लिया था। मगर दरबार में नवाब के रहते कुछ कहना बेअदबी होती, इसीलिये कुछ बोला नहीं।"

दर्पनारायण को त्रिविक्रम और हरनारायण ने प्रणाम किया। त्रिविक्रम बोले—"हरनारायण, मेरे साथ हरि आए हुए हैं। हम लोग लालबाग में ठहरे हैं। संध्या समय तुम वहाँ आ सकोगे ?"

१—माफी जागीर।

२—राजस्व कार्यालय।

—अन०।

हरनारायण ने कहा—"हरिनारायण को जिस तरह गावँ छोड़ना पड़ा था उसे देखते हुए मैं उनसे मिलना ठीक नहीं समझता।"

त्रिविक्रम ने कहा—"दुर्गावाले प्रवाद के कारण उन्हें कोई दुःख नहीं है। इस समय वे पटना से तुम्हारे दोनों सौतेले भाइयों के मुख्तारआम के रूप में आए हुए हैं। मैं तो यही कहूँगा कि तुम दोनों आदमी मिलकर कागजपत्र देखकर झगड़े का निपटारा कर डालो नहीं तो हो सकता है कि कल ही नवाब के दरबार में असीम और भूपेन की ओर से अर्जी पेश हो जाय।"

हरनारायण का मुहँ उतर गया। उन्होंने कहा—"अर्जी ही पेश होनी है तो हो; मैं क्या कर सकता हूँ?"

"देखो हरू, असीम अब एक अमीर है, हमारे तुम्हारे जैसा मनसबदार नहीं। वह जब मुर्शिदाबाद आएगा तब नवाब जाफर कुली खाँ को उठकर खड़ा होना पड़ेगा। तुमने जिस प्रकार से रोकनपुर परगने का हिस्सा लिखवाया है वह मैं सुन चुका हूँ।"

वृद्ध दर्पनारायण के साथ भी हरनारायण का एक पुराना विवाद था। त्रिविक्रम इसे जानते थे। एक बार दर्पनारायण ने जाफर खाँ से विवाद करके सूबा बंगाल, बिहार और उड़ीसा के राजस्व के हिसाब-किताब पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया था। हरनारायण उस समय नायब कानूनगो थे। उन्होंने जाफर खाँ को प्रसन्न रखने के लिये उस हिसाब पर हस्ताक्षर कर दिया था। जाफर खाँ उस समय सूबा बंगाल के राजस्व विभाग के दीवान थे, दर्पनारायण राय प्रथम कानूनगो थे और हरनारायण द्वितीय कानूनगो। उसी समय से दर्पनारायण पर जाफर खाँ की कोपदृष्टि थी।

दर्पनारायण ने पूछा—"क्यों जी हरनारायण, रोकनपुर का दस

आना हिस्सा कब लिखवाया था ? इसकी सूचना भी खालसा के पेशकार को तुमने नहीं दी !"

हरनारायण ने हारकर कहा—"काका जी, यह व्यवस्था चुपके चुपके हुई थी, इसीलिये खालसा सरिश्ते में इसकी चर्चा नहीं की। दो साल से जैसा गोलमाल चल रहा है उसमें जगह जमीन को बचाए रखना बड़ा कठिन हो गया है।"

त्रिविक्रम ने बीच में बाधा देकर कहा—"नहीं जानते कि रोकनपुर खालसा परगना है ? खालसा का आयमा बादशाही पंजे और मुहर के बिना हस्तांतरित नहीं होता ? दीवान और मुस्तफी को छोड़कर दूसरा कोई भी इस प्रकार का विवाद बादशाही दरबार में पेश नहीं कर सकता ?"

त्रिविक्रम का कंठस्वर धीरे धीरे ऊँचा होता जा रहा था जिसे सुनकर क्रमशः दो दो, चार चार व्यक्ति उनकी ओर बढ़े चले आ रहे थे। यह स्थिति देख हरनारायण डरे। उन्होंने भीत भाव से कहा—"काका जी, विशेष गोलमाल करने की आवश्यकता नहीं। आप और त्रिविक्रम मिलकर इस घरेलू झगड़े का फैसला कर दें।"

बहुत दिनों के पश्चात् अपने बैरी हरनारायण को जाल में फँसा देख दर्पनारायण अपनी प्रसन्नता संवरण नहीं कर पा रहे थे। उन्होंने त्रिविक्रम से कहा—"तो फिर सायंकाल दरबार से लौटकर तुम्हारे यहाँ आऊँगा। हरिनारायण भी मेरे साथ आएँगे। यह मामला खालसा दफ्तर के पेशकार से बता दिया जाता तो ठीक रहता।"

हरनारायण अत्यंत कातर होकर कहने लगे—"काका, तुम्हारी जैसी आज्ञा होगी, वैसा ही करूँगा; मगर अब और अपमानित मत कराओ।"

राजस्व के हिसाब किताब की बात सोचकर त्रिविक्रम हँसने लगे।

बहत्तरवाँ परिच्छेद

किरीटेश्वरी के पथ पर

संध्याकालीन झुटपुटे में रसोईघर के दरवाजे पर बैठी सती जप कर रही थी और श्रीमती उससे दो चार हाथ की दूरी पर बैठी हुई थी। जप समाप्त होने पर सती को हाथ जोड़ते देख श्रीमती ने कहा—"बहू जी, जरा छोटी बहू जी के यहाँ होती आऊँ ?"

सती ने हँसकर कहा—"देखती हूँ, दिन पर दिन छोटी बहू पर तेरी ममता बढ़ती जा रही है और मेरा कुछ ख्याल ही नहीं है! अभी जाने का कोई काम नहीं, यहीं बैठी रह।"

श्रीमती अर्थात् सरस्वती ने हँसकर कहा—"छोटी बहू प्रेम से बोल देती हैं इसीलिये उनके पास चली जाती हूँ। आप यदि मना कर रही हैं तो न जाऊँगी।"

"बैठ बैठ, मेरी बड़ी इच्छा है कि किरीटेश्वरी के दर्शन कर आऊँ। यहाँ से कितनी दूर है ?"

"गाड़ी से जाने पर डेढ़ दिन का रास्ता है।"

"रास्ता कैसा है ? कोई डर तो नहीं है ?"

"बढ़िया बादशाही सड़क है बहू जी! अमावस्या और एकादशी को मुर्शिदाबाद और डाहापाड़ा से कितनी ही स्त्रियाँ और बच्चे पैदल दर्शन करने आते हैं। डर कैसा ? इस राज्य में भला डर की क्या बात है ?

"अच्छा, कल एकादशी है न ? हम लोग चार आदमी मिलकर एक गाड़ी कर लेंगे और त्रयोदशी की संध्या को चले चलेंगे ।"

"मालिक से पूछ लिया है बहू जी ?"

"ओ बाबा ! बाबू जी से पूछने पर भला जाने पाऊँगी ? साथ में दुर्गादेवी जायँगी, बहू जी रहेंगी और गाँव की दो एक हमजोली स्त्रियों को ले लूँगी । तू रास्ता बताती चलेगी न ?"

इस अप्रत्याशित सुसंवाद से वृद्धा वैष्णवी का हृदय आनंदातिरेक से नृत्य करने लगा फलतः थोड़ी देर तक वह कुछ उत्तर नहीं दे सकी । उसने जब उत्तर दिया तब बातों का रुख दूसरी ओर मुड़ गया । वह बोली—"—मैं भी गृहस्थ घर की स्त्री ठहरी बहू जी, तुम सब लड़कियाँ ही लड़कियाँ रहोगी । मैं इतनी लड़कियों को कैसे सँभाल सकूँगी ?"

"सँभाल क्यों न सकोगी ? इसी घोष घराने की तीन विधवा बहुएँ पिछले महीने किरीटेश्वरी का दर्शन कर आईं । उनके साथ केवल दीनू बागदी की स्त्री गई थी, पुरुष कोई नहीं गया था ।"

"तुम लोग अगर साहस करोगी तो ले चलूँगी बहू जी । अच्छा, तो अब चलती हूँ ।"

"जाओ, लेकिन शैल से कुछ मत कहना ।"

मन ही मन प्रसन्न होती, देवी देवताओं का स्मरण करती करती सरस्वती बाहर हुई ।

कृष्णपक्ष की त्रयोदशी के दिन सायंकाल दुर्गा, बड़ी बहू, सती तथा गाँव की एक वृद्धा स्त्री के साथ सरस्वती ने किरीटेश्वरी की यात्रा आरंभ की । गाड़ी सारी रात चलती रही । प्रातःकाल एक गाँव के पास जब गाड़ीवान बैलों को खोलकर भोजन बनाने की तैयारी करने

लगा तब सरस्वती आवश्यक वस्तुओं की खोज में गाँव के भीतर पहुँची। गाँव का नाम था महिपाल। उसने पूछताछ करके यह पता लगा लिया कि यहाँ दो चार घर पठानों के हैं। वे पठानों के वंशधर अवश्य थे, किंतु बंगाल की स्निग्ध जलवायु ने उनकी पठान सुलभ कर्कशता को दूर करके उन्हें साधारण बंगाली किसान बना दिया था। एक पठान को अच्छे पुरस्कार का लोभ देकर सरस्वती ने समाचार सहित डाहापाड़ा रवाना किया। सरस्वती के लौट आने पर साथ की स्त्रियों ने भोजन बनाना आरंभ किया। भोजनादि से छुट्टी पाकर उन लोगों ने पुनः यात्रा आरंभ की।

रात्रि में बैल मनमाने चले जा रहे थे। गाड़ीवान ऊँघने लगा था। ऐसे समय चार पाँच लठैतों ने गाड़ी घेर ली। गाड़ीवान ने जब देखा कि अँधेरे में गाड़ी को भगा ले जाना संभव नहीं है तब उसने गाड़ी और बैल का मोह छोड़कर अकेले ही पलायन करना उचित समझा।

सती, दुर्गा और बड़ी बहू बैठी रहीं। साथ की स्त्रियों और सरस्वती ने लठैतों के आगे बड़ा अनुनय विनय किया, रोया धोया। पूर्व दिशा की ओर जब उषा का आलोक दिखाई पड़ा तब लठैतों ने गाड़ी को एक तालाब के पास ले जाकर खोल दिया और स्त्रियों को नीचे उतर आने के लिये कहा। बड़ी बहू देख रही थीं कि सरस्वती यद्यपि उस समय भी ऊँचे स्वर से रो रही है, किंतु उसकी आँखों में आँसुओं का नाम भी नहीं है। स्त्रियों को तालाब के पास एक टूटे फूटे मंदिर में बैठाकर दो लठैत पहरा देने लगे, शेष दो लठैत पास के गावँ की ओर आगे बढ़े।

उसी दिन ठीक उसी समय नवीन नगर मुर्शिदाबाद के एक भाग

में एक छोटी सी अट्टालिका की एक कोठरी में बैठे त्रिविक्रम नवीनदास से पूछताछ कर रहे थे। चाहे सरदी के कारण हो और चाहे भय के कारण, नवीन काँप रहा था। दरवाजा बंद था, नवीन एक मोटा कंबल ओढ़े हुए था, फिर भी उसे कँपकँपी छूट रही थी। त्रिविक्रम उसके सामने कुशासन पर बैठे हुए थे। उनके शरीर पर एक पतला रेशमी रामनामी दुपट्टा था। नवीन के सामने एक ताम्रकुंड रखा हुआ था।

त्रिविक्रम ने पूछा—"अब क्यों आए ?"

नवीन हाथ जोड़कर बोला—"बड़े मालिक के डर से।"

"मेरे हाथों में पड़कर तुम्हारी जो दशा हुई थी उसे हरनारायण से कहा था ?"

"कहा था, लेकिन उन्होंने आज्ञा दी कि तुम वेश बदलकर फिर जाओ।"

"अब तुम क्या करना चाहते हो ?"

"आपकी जो आज्ञा हो।"

"देखो नवीन, दो दो बार दया करके तुम्हें छोड़ चुका हूँ। अबकी बार नहीं छोड़ूँगा। ताम्रकुंड की ओर देखो।"

नवीन ने त्रिविक्रम का पैर कसकर पकड़ लिया और रोते रोते बोला—"पंडित जी, इस बार क्षमा कर दीजिए। इस जल की अग्नि को देखने पर सात दिनों तक सिर नहीं उठा पाता। आप अब जैसा कहेंगे वैसा ही करूँगा।"

सहसा त्रिविक्रम का रूप बदल गया। नवीन उठकर खड़ा हो गया। उसे भान हुआ कि त्रिविक्रम की आँखों से अग्नि की लपलपाती हुई रेखा निकली और उसने ताम्रकुंड के जल में आग लगा दी।

नवीन बैठ गया। उसके दोनों हाथ आँखों पर से हटकर नीचे झूल गए।

त्रिविक्रम ने पूछा—"क्या दिखाई देता है?"

मंत्रमुग्ध नवीन बोला—"ताम्रकुंड के जल में आग लग गई है।"

"सती कहाँ है, देखो इसमें।"

"किरीटेश्वरी के मंदिर के पास किरीटकोण के तालाब के पूरब ओर-वाले टूटे मंदिर में।"

विस्मित होकर त्रिविक्रम ने पूछा—"उसके साथ और कौन कौन है?"

नवीन बोला—"डाहापाड़ा के विद्यालंकार की लड़की दुर्गा, सुदर्शन महाराज की स्त्री, सरस्वती वैष्णवी, बड़े मालिक के लठैत कालिदास और भुवन बागदी। एक बूढ़ी स्त्री और है जिसे मैं नहीं पहचानता।"

मुहूर्त्त मात्र के लिये त्रिविक्रम चंचल हुए किंतु तत्काल वे शांत हो गए। उन्होंने पूछा—"असीम कहाँ है?"

थोड़ी देर बाद नवीन बोला—"बहुत दूर, दिल्ली में। अजमेरी दरवाजे के पास एक बहुत बड़ा टूटा फूटा मकान है। उसकी एक छोटी सी कोठरी में बाबा हरिदास और मुन्नो बाई बैठी हुई हैं। कोठरी के दोनों ओर दो चारपइयाँ हैं। एक पर छोटे राय सोए हुए हैं। छोटे मालिक को, जान पड़ता है, चोट लग गई है क्योंकि उनके समस्त शरीर में रक्त लगा हुआ है। दूसरी चारपाई पर एक और आदमी लेटा हुआ है। उसके शरीर पर भी रक्त है किंतु उसे मैं नहीं पहचानता।"

त्रिविक्रम ने ताम्रकुंड की ओर फूत्कार किया। आग बुझ गई। उनके आदेश से नवीन आँखें खोलकर देखने लगा किंतु उठ नहीं

सका। उसे उसी कुशासन पर लेटने के लिये कहकर वे बाहर निकल आए और साँकल बंद कर दी। सूर्योदय के पश्चात् सोलह कहार एक बहुत बड़ी पालकी लेकर आए। त्रिविक्रम दरबार की ओर चले। उस दिन अमावस्या थी। दोपहर तक दरबार का कार्य समाप्त हो गया। दरबार समाप्त होने पर त्रिविक्रम ने दर्पनारायण को एकांत में ले जाकर कहा—"काका जी, आप क्या अभी तक व्रत रखते हैं?"

वृद्ध दर्पनारायण बोले—"अचानक यह कैसा प्रश्न बेटा? पचास वर्षों का अभ्यास क्या एक दिन में छूट सकता है?"

"तो चलिए किरीटेश्वरी देवी के दर्शन कर आएँ।"

"कब चलोगे?"

"अभी।"

"चलो।"

खालसा के दीवान और प्रधान कानूनगो की पालकियाँ राज-प्रासाद से निकल पड़ीं। हरनारायण ने इसे देखा लेकिन कुछ समझ नहीं सके। तीसरे पहर लालबाग के घाट से होकर पाँच पालकियाँ एक साथ उस पार गईं। खेवे की बड़ी बड़ी नावें एक में बाँध दी गई थीं और उन्हीं पर वे पालकियाँ रखी गई थीं। एक बूढ़े मल्लाह ने पूछा—"इतनी पालकियाँ कहाँ जायँगी भाई?"

एक कहार बोला—"किरीटेश्वरी के मंदिर तक जाना आना है। नावें ठीक रखना। सबेरे ही फिर इस पार आना होगा।"

तिहत्तरवाँ परिच्छेद

अब्दुल्ला खाँ

आगरे की लड़ाई के एक मास दो दिन बाद बादशाह फर्रुखसियर का जलूस दिल्ली से पाँच मील की दूरी पर स्थित खिज्राबाद नामक स्थान से चलकर दिल्ली दरवाजा होता हुआ राजप्रासाद में पहुँचा। इस जुलूस में बादशाह के हाथी के पीछे जो हाथी था उसपर एक व्यक्ति बाँस की नोक पर मृत बादशाह जहाँदारशाह का कटा हुआ सिर ले जा रहा था। एक दूसरे हाथी की पूँछ में मृत वजीर जुलफिकार खाँ का शव बँधा हुआ था। असीम और फरीद खाँ के साथ हरिदास वैरागी, सुदर्शन तथा भूपेंद्र आगरे की लड़ाई के दो दिन बाद ही दिल्ली चले आए थे। नवीन बादशाह ने पहले पहल जिस दिन राजधानी में प्रवेश किया उस दिन तक असीम की हालत पहले से बहुत अच्छी हो गई थी और वे दिल्ली दरवाजे के पास खड़े खड़े सुदर्शन और भूपेंद्र के साथ बादशाही सवारी का जुलूस देख रहे थे।

मुगलकाल में जब भी कोई नए बादशाह सिंहासन लाभ किया करते थे तब साम्राज्य के प्रधान तथा साधारण कर्मचारीगणों में से बहुतेरे पदच्युत कर दिए जाते थे, कुछेक की पदोन्नति होती थी और कुछ अमीर से भिखारी बन जाया करते थे। बादशाह फर्रुखसियर ने

नए कर्मचारियों को नियुक्त किया। असीम राय तथा फरीद खाँ की चर्चा किसी ने नहीं चलाई क्योंकि असीम बादशाह के मित्र थे और स्वयं बादशाह साम्राज्यलाभ करने पर अपने दुर्दिन के मित्र को भूल गए थे।

शरीर में यथेष्ट शक्ति आ जाने पर असीम ने एक दिन दरबार में उपस्थित होने की चेष्टा की किंतु ढूँढ़ने पर भी उन्हें कोई परिचित व्यक्ति नहीं मिला। सैयद अब्दुल्ला खाँ 'कुतुब-उल्-मुल्क' की उपाधि प्राप्त कर बादशाह के प्रधान मंत्री नियुक्त हुए थे किंतु उनसे असीम का विशेष परिचय नहीं था। सैयद हुसेन अली खाँ आगरे की लड़ाई में घायल होकर पड़े हुए थे इसलिये असीम उनसे भी साक्षात् नहीं कर सके। किले के भीतर असीम को अफरासियर खाँ दिखाई पड़े थे। वे उसी दिन तीसरे बख्शी नियुक्त किए गए थे इसलिए वे असीम को पहचान भी नहीं सके। असीम ने विरक्त होकर जीविका के उद्योग में दक्षिण की ओर जाने का निश्चय किया। सुदर्शन और भूपेंद्र ने स्थिर किया कि फरीद खाँ के स्वस्थ हो जाने पर सब लोग ग्वालियर के रास्ते दक्षिण की यात्रा करेंगे।

किले के अजमेरी दरवाजे के नौबतखाने के नीचे एक दिन असीम का साक्षात् अहमद बेग से हो गया। अहमद को 'गाजीउद्दीन' की उपाधि प्राप्त हुई थी किंतु फिर भी उसने फर्रुखसियर के मित्र को पहचान लिया। असीम का दिल्ली छोड़ने का संकल्प सुनकर गाजी-उद्दीन खाँ ने बादशाह के नवीन मित्र शरीफुल्ला खाँ अर्थात् मीर जुमला की सहायता से असीम की अर्जी दरबार में पेश करवाई। आगरे की लड़ाई के तीन मास बाद असीम को बादशाह के दर्शन हुए। उन्हें एक हजार रुपए की खिलअत मिली, वे एकहजारी मनसबदार बनाए गए। सूबा बंगाल में जो खालसा परगने थे उनमें से

जन्नताबाद सरकार के अंतर्गत रोहनपुर गावँ बादशाह ने उन्हें जागीर में देकर बंगाल जाने का आदेश दिया। उसी दिन बादशाह के शिशु-पुत्र फर्जंदबख्त सूबा बंगाल के नाजिम अर्थात् सूबेदार नियुक्त किए गए और उनकी ओर से कार्य संचालन करने के लिये नवाब जाफ़रकुली खाँ अर्थात् मुर्शिदकुली खाँ नायब नाजिम नियुक्त हुए। उड़ीसा की सूबेदारी मिलने पर मुर्शिदकुली खाँ को जाफर खाँ नासीरी की उपाधि मिली। असीम राय को अपनी सनद और जागीर का फ़रमान लेकर मुर्शिदकुली के साथ मुर्शिदाबाद प्रस्थान करने का आदेश हुआ।

अपने निवास स्थान पर आकर असीम को ज्ञात हुआ कि बहुत दिनों के बाद फ़रीद खॉ की चेतना लौटी है। इस सुसमाचार को को सुनकर उन्होंने भूपेंद्र और सुदर्शन से परामर्श करके मुर्शिदाबाद चलने का दिन स्थिर किया। संध्या समय मुन्नी कहीं से एक सारंगी ले आई और फ़रीद की शय्या के पास बैठकर सुर ठीक करने लगी। उसे देखकर विस्मयपूर्वक सुदर्शन ने जिज्ञासा की—"मुन्नी, यह क्या कर रही हो?"

मुन्नी बोली—"उस्ताद, आज फ़रीद सारे दिन सोते रहे हैं। हकीम साहब कह गए हैं कि इनको जागते रहना होगा; इसीलिये सोच रही हूँ कि एक गाना गाऊँ। फ़रीद भाई, गाना सुनोगे?"

फ़रीद ने सिर हिलाकर बताया कि सुनूँगा। गाना सुनते सुनते फ़रीद पुनः सो गया। तब असीम ने मुन्नी से कहा—"मुन्नी, तुमसे कई बातें पूछनी थीं। एक बार बाहर चलो।"

सारंगी रखकर मुन्नी बाहर चली आई।

उस समय जाड़ा कम हो चला था, फिर भी वृद्ध हरिदास दो-

तल्ले की एक कोठरी में आग जलाकर ताप रहे थे। मुन्नी को साथ लिए असीम जब उनके पास पहुँचे तब उन्होंने पूछा—"क्या समाचार है बेटा ?"

"समाचार तो सुदर्शन से सुना ही होगा बाबा जी !"

"भगवान तुम्हारा कल्याण करें बेटा ! तुम लोग कब देश लौटोगे ?"

"कल प्रस्थान करने का विचार है। फरीद को आपके पास छोड़कर मुन्नी को अपने साथ देश ले जाने का विचार है। अनजाने मैंने ही उससे अपना घरबार छुड़वाया है। अब मै ही उसे ले जाकर पटने में उसकी माता को सौप दूँगा।"

हरिदास ने किंचित् हँसकर कहा—"बेटा, जिस वस्तु की इच्छा की जाती है वह क्या तुरंत हो ही जाती है ? मैंने मुन्नी को उसके पिता के पास पहुँचाने के उद्देश्य से ही सूतीगाँव से पटने की यात्रा की थी किंतु मुन्नी पिता के पास कहाँ पहुँची ? तुम्हारी या मेरी इच्छा पर मुन्नी का भविष्य नहीं निर्भर करता। गोपाल की जब इच्छा होगी तब मुन्नी पटने लौट जायगी।"

असीम ने विरक्तिपूर्वक मुन्नी से कहा—"मुन्नी, मैं तुमसे अनु-रोध करता हूँ कि मेरे साथ पटना लौट चलो।"

मुन्नी ने सलाम किया; बोली—"तसलीमात हुजूर, इस वक्त फरीद को छोड़कर स्वर्ग भी नहीं जा सकूँगी।"

हरिदास फिर हँसे। असीम ने और अधिक विरक्तिपूर्वक हरिदास से कहा—"बाबा जी, तो फिर मुन्नी यहीं रहे। इसके और फरीद के लिये खरचा वरचा कितना चाहिए ?"

हरिदास बोले—"यह सब गोपाल जानते हैं, वे ही प्रबंध करेंगे। बेटा, तुम देश लौट जाओ, गोपाल तुम्हारा मंगल करें। तुम्हें खर्च वर्च कुछ नहीं देना होगा।"

दूसरे दिन दोपहर को भूपेंद्र और सुदर्शन के साथ बादशाही सनद और फरमान लेकर असीम ने मुर्शिदाबाद के लिये प्रस्थान किया।

चौहत्तरवाँ परिच्छेद

किरीटेश्वरी

सरस्वती वैष्णवी और हरनारायण के लठैत दिन भर उस मंदिर के चारों ओर बैठे रहे। वे चाहते तो स्त्रियों को लेकर स्वच्छंद भाव से डाहापाड़ा चले जाते, किंतु वे गए नहीं। स्त्रियों ने सारा दिन निराहार रहकर काट दिया। केवल सरस्वती मौका निकालकर उदर-पूर्ति कर आई। संध्या समय दुर्गा को ज्ञात हुआ कि ये लोग हरनारायण राय के आदेश की प्रतीक्षा में हैं। तब वह स्नानादि के बहाने सती और बड़ी बहू को लेकर तालाब पर पहुँची। सरस्वती किनारे खड़ी रही और दो लठैत थोड़ी दूरी पर ताड़ के पेड़ की आड़ से पहरा देते रहे। इतने में दूर से बहुत से मनुष्यों की आहट सुनाई पड़ी। दोनों लठैतों ने सोचा कि हरनारायण ने पालकी भेजी है। आगंतुकों के पास आने पर उन्होंने देखा कि पालकियाँ तो कुल दो ही हैं किंतु साथ में सिपाही प्यादे बहुत से हैं। इतने में एक लठैत ने हाँक लगाई—"पालकी कहाँ की है?"

आगे आगे चलनेवाले एक मशालची ने उत्तर दिया—"मुर्शिदाबाद की। हुजूर खालसा के दीवान और कानूनगो साहब की पालकी है। हट जाओ सामने से!"

लठैत इतना जानते थे कि हरनारायण कानूनगो हैं। इसलिये उन्होंने समझा कि हरनारायण स्वयं आ रहे हैं। तालाब के पास पालकी पहुँचने पर उन्होंने रोकने के लिये कहा और दर्पनारायण तथा त्रिविक्रम के उतरने पर उन्हें प्रणाम करके बोले—"हुजूर, सबको गिरफ्तार कर लिया है।"

पुरस्कार देने के बदले त्रिविकम ने जब उन्हें बाँधने का आदेश दिया तब तो वे बड़े घबड़ाए। दर्पनारायण बोले—"बेटा, यह क्या मामला है? मुर्शिदाबाद आकर भी देखता हूँ कि अपनी ढाकेवाली चालढाल तुमने नहीं छोड़ी।"

"जी, यह चालढाल और ये दोनों लठैत मेरे बाल्यबंधु हरनारायण राय के हैं और गिरफ्तार की गई हैं मेरी पत्नी और हरिनारायण की कन्या तथा बहू।"

त्रिविक्रम की बातें सुनकर दर्पनारायण इतने अधिक विस्मित हुए कि थोड़ी देर तक उनके मुहँ से कोई बात ही नहीं निकल सकी। तदनंतर उन्होंने पूछा—"तुम्हारी स्त्री? दुबारा तुमने ब्याह कब किया? और उसके साथ दुर्गा की भेंट कब हुई?"

त्रिविक्रम बोले—"पिछले साल सूतीगावँ में ब्याह करके ही संसारी होने के लिये बाध्य होना पड़ा, नहीं तो इतने दिनों तक चिता की अग्नि में भोजन बनाकर खाया करता था और चिताभस्म पर ही शयन किया करता था।"

"हम लोगों ने भी ऐसा ही सुन रखा था। लेकिन दुर्गा को कहाँ पाया?"

"हरिनारायण मेरे साथ पटना से मुर्शिदाबाद आ रहे थे। तूफान में नाव डूब जाने पर सूतीगावँ में मेरी ससुराल में ही उन लोगों ने

आश्रय लिया था। हम दोनों व्यक्ति स्त्रियों को सूतीगावँ में ही छोड़कर मुर्शिदाबाद आए थे।"

"हरनारायण ने इन्हें बंदी क्यों किया?"

"सो मैं क्या जानूँ काका जी। कल नवाब के दरबार में हरिनारायण विद्यालंकार असीम राय की अर्जी पेश करेंगे। उस समय शायद सारी बातें स्पष्ट हो जायँगी। इस समय आप यहाँ आ गए इसीलिये हम लोगों की इज्जत बच गई।"

दर्पनारायण कुछ बोले नहीं। तालाब के पास जाकर वे पुकारने लगे—"दुर्गा! ओ दुर्गा! मैं तेरा बाबा हूँ। डर मत। चली आ।"

लोगों का कोलाहल सुनते ही दुर्गा तालाब में आगे बढ़कर गले तक पानी के भीतर पैठ गई थी। दर्पनारायण की पुकार सुनकर बड़ी बहू ने कहा—"जीजी, तुम्हें कोई बुला रहा है।"

दुर्गा बोली—"जान पड़ता है बहाने से हम लोगों को पानी के बाहर आने के लिये कोई बाबा बनकर पुकार रहा है। निकलने का कोई काम नहीं है।"

इतने में दो मशालची मशालें लिए दर्पनारायण के सामने आ खड़े हुए। प्रकाश में शुभ्रकेश वृद्ध को देखते ही दुर्गा पहचान गई। उसने कहा—"भाभी, छल कपट नहीं है। सचमुच बाबा आए हुए हैं।"

दुर्गा तालाब के बाहर निकल आई और भीगे वस्त्र पहने ही दर्पनारायण के पास जाकर खड़ी हो गई। वृद्ध दर्पनारायण राय बोले—"सचमुच, दुर्गा बेटी ही तो है। त्रिविक्रम, तुम्हें यह सब कैसे मालूम हुआ?"

मार्गशीर्ष के आरंभ में उत्तरी राढ़ देश में प्रातःकाल और सायंकाल भयंकर सरदी पड़ती है। रात्रि के प्रथम प्रहर में उत्तरी राढ़ के उस

उन्मुक्त और प्रशस्त अंचल में बड़ी ठंढी और तेज हवा चल रही थी। दुर्गा सरदी के मारे काँप रही थी। यह देखकर दर्पनारायण ने स्त्रियों को मंदिर के भीतर भेजकर अपना और त्रिविक्रम का दुशाला वहीं भेजवा दिया। तब उन्होंने त्रिविक्रम से पूछा—"त्रिविक्रम, रात में कहाँ टिका जायगा ?"

त्रिविक्रम ने उत्तर दिया—"देवी के मंदिर में।"

"और लड़कियों ने जो सबेरे से कुछ खाया पीया नहीं है ?"

"पूजा करने आई हैं, अभी खायँगी कैसे काका जी ! हिंदू की लड़कियाँ हैं, एक दिन न खाने से मरेंगी नहीं।"

"मंदिर कितनी दूर है ?"

"आध कोस।"

"तब तुम उन्हें पालकी में बैठा दो। हम दोनों पैदल चले चलेंगे।"

चारों स्त्रियों को दोनों पालकियों में बैठाकर त्रिविक्रम और दर्पनारायण किरीटेश्वरी के मार्ग पर आगे बढ़े। राजप्रासाद बनते समय मुर्शिदाबाद के चारों ओर दस कोस के भीतर जितने भी मंदिर थे वे सब सूबेदार के आदेशानुसार तोड़ डाले गए थे। फलतः काले पत्थर के बने मंदिर में महापीठ के चिह्नस्वरूप जो पाषाण शिला रखी गई थी वह चूर चूर होकर चारों ओर बिखरी हुई थी। सब लोगों ने मंदिर के पास ही एक धर्मशाला में आश्रय लिया। अमावस्या का दूसरा प्रहर बीतने पर पूजा और बलि के उपरांत दर्पनारायण ने त्रिविक्रम से पूछा—"क्यों बेटा, हरनारायण ने ऐसा नीच कर्म क्यों किया ?"

त्रिविक्रम हँसे, बोले—"काका जी, दो दिन तक असीम के बारे में

चर्चा करके मैंने हरनारायण के मन की थाह ले ली है। वह सोचता है कि झूठी बातें बनाकर मैं त्रिविक्रम को धोखा दे लूँगा, लेकिन वह यह नहीं जानता कि मैं उसके मनोभावों को पुस्तक के अक्षरों की भाँति स्पष्ट रूप से पढ़ सकता हूँ।"

"वह चाहता क्या है ?"

"वह चाहता है कि मैं मुर्शिदाबाद छोड़कर भाग जाऊँ और हरि-नारायण विद्यालंकार निर्वासित कर दिए जायँ।"

"इससे क्या होगा ?"

"खालसा की दीवानी पर उसकी बहुत दिनों से आँख है क्योंकि गौड़ की जागीर कितनी मूल्यवान है इसका ठीक ठीक पता दिल्ली में भी अभी तक किसी को नहीं है। निरुपद्रव रहने पर बंग भूमि सोना उग-लती है। अकेले सूबा बंगाल का केवल राजस्व इतना होता है कि उससे कश्मीर और मालवा जैसे सूबे खरीदे जा सकते हैं। दिल्ली के खालसा का सरिश्ता इसे अभी तक ठीक ठीक नहीं जानता। जानता है तो मुर्शिदकुली क्योंकि वह दक्षिण के छः सूबों का बंदोबस्त कर आया है। और जानता था अजीमुश्शान। तूरानी मुगल केवल झगड़ा करना जानते हैं। देश का शासन करना जानते हैं ईरानी। हिंदुस्तानी मुसल-मानों ने तो केवल पैसा खर्च करना सीखा है।"

"ठीक कहते हो त्रिविक्रम। लेकिन हरिनारायण की बेटी और बहू का हरण करके हरनारायण को क्या लाभ होगा ?"

"स्वर्गीय हरिनारायण काका मरते समय धन संपत्ति, जगह जमीन का दानपत्र हरिनारायण विद्यालंकार को दे गए थे। रोकनपुर परगने का निर्विघ्न उपभोग करने के उद्देश्य से हरनारायण ने दोनों भाइयों और हरिनारायण विद्यालंकार को गावँ से धता बताया था। विद्यालंकार

सनकी आदमी ठहरे। उन्हें अपनी शतरंज की बाजी से ही अवकाश नहीं मिलता। पूर्वजों की भूमि को छोड़कर जाते समय उन्हें स्मरण नहीं था कि कागजपत्र मेरे ही पास है। याद आने पर वे पटने से लौटे हैं। इसीलिये हरनारायण उनकी बेटी और बहू को पकड़वाकर उन्हें अपने कब्जे में रखना चाहते हैं।"

"ठीक है। अब रात में लौटने का काम नहीं है। सवेरे और चार पालकियाँ मँगाकर सब लोग साथ ही चलेंगे।"

पचहत्तरवाँ परिच्छेद

सूबेदार का विचार

बादशाह के दरबार से बिदा होने के दो मास बाद असीम मुर्शिदाबाद के अंचल में पहुँचे। समाचार पाकर हरिनारायण और त्रिविक्रम नगर के बाहर ही उनसे मिले। वृद्ध दर्पनारायण स्वयं नहीं जा सके, इसलिये उन्होंने अपने एक कर्मचारी को भेज दिया। त्रिविक्रम के मुहँ से सारा समाचार सुनकर असीम ने डाहापाड़ा जाने का विचार त्याग दिया। हरिनारायण विद्यालंकार ने बताया कि रोफनपुर परगने के दस आने तेरह गंडे हिस्से के लिये अर्जी पेश हो चुकी है किंतु हरनारायण राय ने असीम की साक्षी का आग्रह करके तत्संबंधी आदेश को टलवा दिया है। असीम सुनकर थोड़ा हँस पड़े।

दूसरे दिन बादशाही रीति के अनुसार जलूस के साथ असीम राय मुर्शिदकुली खाँ को सनद और फरमान देने चले। मुगल बादशाहों के राज्यकाल में बादशाह का फरमान अथवा सनद लेकर जो व्यक्ति आता था वह बादशाह की भाँति ही संमानित किया जाता था। असीम हाथी पर सवार थे। उनके समक्ष चौबीस हरकारे आसासोटा और निशान

लिए चल रहे थे। पीछे असीम की सेना के पचास सवार थे। यह जलूस सीधे राजप्रसाद के फाटक तक पहुँचकर रुका। दूसरा अवसर होता तो असीम को मुर्शिदाबाद के त्रिपोलिया दरवाजे पर हाथी से उतर जाना पड़ता, लेकिन आज वह बादशाह का पत्र लेकर आ रहे थे इसलिये मुर्शिदकुली जाफर खाँ नासीरी स्वयं राजप्रसाद के फाटक तक आकर असीम के स्वागत के लिये खड़े थे। उनके पीछे सूबा बंगाल के मुख्य राजकर्मचारी और प्रतिष्ठित जमींदार खड़े थे। असीम के हाथी पर से उतरने पर मुर्शिदकुली ने तीन बार कोरनिश करके मखमली खरीते में रखा हुआ बादशाही फरमान और सनद उनसे लिया और उसे सोने की थाली में रखकर दिल्ली की ओर उठाया। फिर तीन बार कोरनिश की। गुलामों ने थाली के ऊपर छाया कर दी। खोजे सोने का आसासोटा, माही मरातिब इत्यादि नाना प्रकार के राज्यचिह्न लेकर दोनों ओर पंक्तिबद्ध खड़े हो गए। नकीब ने हाँक लगाई—"फरमान रवान शाहंशाह बादशाहे गाजी अबुल मुजफ्फर मुहम्मद फर्रुखसियर सुलतानुस्सलातीन नासिर अमीर उल् मोमिनीन।"

सूबेदारों का जलूस राजप्रासाद के फाटक से चलकर मसनद तक पहुँचा। हरकारे रास्ते से हटकर चारों ओर दीवारों से सटकर खड़े हो गए। मुर्शिदकुली खाँ ने नायब नाजिम सैयद अकरम खाँ को सोने की थाली पकड़ाई और मखमली खरीते पर की बादशाही मुहर खोलकर उसे अपनी पगड़ी में खोंस लिया। तदनंतर उन्होंने फरमान और सनदें पढ़ीं। फर्जंदबख्त की सूबेदारी की सनद, अपनी उड़ीसा की सूबेदारी की सनद, अपनी सूबा बंगाल की नायब सूबेदारी की सनद और फरमान पढ़ चुकने पर नवाब मुर्शिदकुली खाँ ने असीम राय को मिली नई जागीर का फरमान पढ़ना आरंभ किया। फरमान के नीचे एक छोटे से कागज के टुकड़े पर फारसी में एक कविता थी—

"फकीर की कब्र के ऊपर उगनेवाला कँटीला पौधा गुलाब से अधिक सुंदर होता है। राजा के पैरों में पड़ा हुआ फटा जूता भी मणि-मुक्ता-खचित नवीन जूते की अपेक्षा अधिक संमान का अधिकारी होता है। यह काफिर युवक लड़ाई में बादशाह के गुलाम हुसेन अली खाँ के साथ स्वर्ग की ओर जाने की तैयारी कर रहा था किंतु अभी इस संसार में इसका कर्त्तव्य शेष था इसलिये खुदा ने इसे वापस कर दिया।"

"बनामे कुतुब-उल्-मुल्क अब्दुल्ला सैयदेबाहो
बंदा-ए-बंदेगान बखिदमते फर्रुख शाह।"

अनमने भाव से दोनों कविताएँ पढ़कर नवाब मुर्शिदकुली खाँ थोड़ा हँसे। क्षुद्रकाय हरनारायण राय सिकुड़कर दर्पनारायण और सैयद अकरम खाँ के बीच विलीन हो जाना चाहते थे। बादशाही सनद और फरमान पढ़ चुकने पर मुर्शिदकुली खाँ ने कटरा मसजिद के पेशईमाम सैयद अफजल खाँ को नवीन बादशाह के नाम से खुतबा पढ़ने का आदेश दिया। सेठ मानिकचंद को जहाँगीरनगर मुर्शिदाबाद और कटक की टकसालों में नए बादशाह के सिक्के ढालने की आज्ञा दी गई। तदनंतर दरबार के अर्जबेग ने उठकर सूचना दी कि मन-सबदार अमीर असीम राय बहादुर के नाम से जो अर्जी पेश है प्रार्थी का बयान लेकर उसपर आदेश देने की आज्ञा दी जाय। चतुर मुर्शिद-कुली खाँ मुसकुराए। अर्जबेग ने अर्जी पढ़ी। प्रधान कानूनगो दर्प-नारायण राय ने असीम से पूछा—"अमीर साहब, आपने क्या पैत्रिक तालुके का अपना हिस्सा कानूनगो हरनारायण राय के नाम लिख दिया है?"

असीम बोले—"हाँ, लिखा था। लेकिन उस समय मैं यह नहीं जानता था मेरे स्वर्गीय पिता जी मरते समय रोकनपुर परगना देवोत्तर

कर गए हैं और हम तीनों भाई केवल सेवाधिकारी हैं, हमें दान करने या विक्रय करने का कोई अधिकार नहीं है।"

दर्पनारायण ने पुनः पूछा—"रोकनपुर खालसा परगना है। कानूनगो हरनारायण राय इस समय उसके सोलहो आने के दावेदार हैं। असीम राय की लिखा पढ़ी पर पाँच बरस पहले सही-मुहर हो जाने पर भी इस हस्तांतरण की सूचना बादशाही दरबार के मुस्तफी को या दीवानी-ए-कुल को क्यों नहीं दी गई?"

मुर्शिदकुली खाँ ने एक बार हरनारायण की ओर देखा किंतु उन्होंने कुछ उत्तर न देकर आँखें नीची कर लीं। नायब सूबेदार ने आज्ञा दी—"दानपत्र अव्यवहार्य है। रोकनपुर परगना आलमगीर बादशाह के आदेशानुसार हरिनारायण राय के तीनों पुत्रों के नाम बराबर बराबर लिखा जाय।"

उपस्थित सभासदों ने 'करामत' 'करामत' कहकर सूबेदार को धन्यवाद दिया। नौबत बजने लगी। सभा समाप्त हो गई। त्रिविक्रम ने हरिनारायण विद्यालंकार और असीम को पुकार कर कहा—"अब तुम लोग डाहापाड़ा जाकर जगह जमीन पर कब्जा करो।"

इसी समय दर्पनारायण राय भी वहाँ आ गए। उन्हें देखकर त्रिविक्रम बोले—"काका जी, असीम से अब पैत्रिक स्थान दखल करने के लिये कह रहा हूँ। आपकी क्या आज्ञा है?"

दर्पनारायण बोले—"ठीक तो है। विद्यालंकार, तुम भी बाल बच्चों को लेकर घर जाओ। अब कब तक उनको साथ लिए लिए इधर उधर भटकोगे?"

विद्यालंकार बोले—"सुदर्शन के आने पर बहू को भेज दूँगा, लेकिन मैं अब डाहापाड़ा में रहने नहीं जाऊँगा। हरनारायण का घमंड तोड़

दिया, स्वर्गीय हरिनारायण राय की आज्ञा का पालन कर चुका, अब अपना प्रायश्चित्त करने काशी जाऊँगा। असीम, तुम्हारी संपत्ति तुम्हें वापस मिल गई है। वहाँ जाना तो मेरे घरद्वार की देखरेख करना। सुदर्शन को तुम्हें सौंपता हूँ। उसे बुला लेना। निरीह समझकर उसकी रक्षा करना। मैं दुर्गा को लेकर काशी चला।"

उसी दिन संध्या होने के पहले एक छोटी सी नौका पाल उड़ाती उत्तर दिशा की ओर रवाना हो गई।

छिहत्तरवाँ परिच्छेद

झंझावात

असीम को लौटे छः वर्ष बीत चुके हैं। वे भाई और पत्नी के साथ डाहापाड़ा में निवास करते हैं। सुदर्शन का एकमात्र कार्य है संगीत की आराधना। असीम को राजकीय कार्यों से बंगाल के नाना भागों में जाना पड़ता है। उस समय भूपेंद्र घर के कर्त्ता हो जाते हैं। हरनारायण दूसरे स्वतंत्र घर में रहा करते हैं किंतु उनकी पत्नी के साथ असीम की स्त्री शैल का प्रगाढ़ प्रेम है। जाड़ा आरंभ होते ही दिल्ली से बादशाह के साथ कुतुब-उल्-मुल्क सैयद अब्दुल्ला खाँ और हुसेन अली खाँ के विवाद के समाचार आने लगे। भारतवर्ष भर के समस्त राजकर्मचारी इस समाचार से उद्विग्न हो उठे। मार्गशीर्ष मास के आरंभ में एक हरकारा दिल्ली से असीम के नाम पत्र लेकर आया। उसे पढ़कर असीम बड़े चिंतित हुए। भूपेंद्र को साथ लेकर एक छोटी सी डोंगी पर गंगा पार करके वे त्रिविक्रम से साक्षात् करने चले। असीम की अस्थिरता देखकर उसकी पत्नी जेठानी से परामर्श करने गई। हरनारायण की पत्नी ने नाक का बड़ा सा नथ हिलाते हुए कहा—"यही तो नहीं सोच पा रही थी कि छोटे मालिक ने कैसे इतने दिनों तक प्राणेश्वरी दुर्गा को छोड़ रखा।"

शैल बोली—"दीदी, सरस्वती ने छानबीन करके बताया है कि हरकारा दिल्ली से आया है।"

"यह सब बहानेबाजी है भाई। इतने दिन हुए, बादशाह छोटे राय को भूल चुका है। छोटे राय तो बादशाह के बहाने दुर्गा के साथ रास रचने जा रहे हैं। तू अपना भला चाहती है तो उनके साथ जा।"

हरनारायण की स्त्री ने शैल को जैसा समझाया उसने वैसा ही समझा। विपत्ति में पड़कर फर्रुखसियर ने असीम और भूपेंद्र को स्मरण किया था। मीर जुमला आदि सारशून्य चाटुकारों का साहस जब सैयद अब्दुल्ला और हुसेन अली खाँ के विरुद्ध खड़े होने का नहीं हुआ और जब यह सुनाई पड़ा कि अब्दुल्ला खाँ के आमंत्रण पर सैयद हुसेन अली खाँ ने औरंगाबाद से दिल्ली के लिये कूच कर दिया है तब अभागे फर्रुखसियर समझ गए कि मयूरसिंहासन पर बैठे रहने पर भी मैं उसकी रक्षा नहीं कर पाऊँगा। फलतः उन्होंने बचपन के मित्रों, पिता के शुभचिंतकों आदि को डर के मारे दिल्ली बुला भेजा। आमेर के महाराजा जयसिंह कछवाहा, जोधपुर के महाराजा अजितसिंह राठौर, एक दूसरे मीर जुमला उपाधिधारी शरीयतउल्ला खाँ से लेकर साधारण से असीम राय तक दिल्ली बुलाए गए।

शैल ने यह निश्चित कर लिया था कि असीम यदि डाहापाड़ा छोड़कर कहीं जायँगे तो मैं अवश्य साथ जाऊँगी। त्रिविक्रम से परामर्श करके लौटने पर जब असीम ने उसे बताया कि मुझे दिल्ली जाना होगा तब शैल ने बिना रंच मात्र आश्चर्य प्रकट किए कहा—"तुम लोग तो घोड़े पर जाओगे, मैं कैसे चलूँगी ?"

असीम बड़े विस्मित हुए; उन्होंने पूछा—"तुम कहाँ जाओगी ?"

शैल ने हँसकर कहा—"मैं इस शत्रुपुरी में अकेली नहीं रह सकूँगी। तुम जहाँ जाओगे, मैं भी तुम्हारे संग चलूँगी।"

असीम ने शैल को समझाने की बड़ी चेष्टा की लेकिन उसने किसी प्रकार भी कोई बात नहीं मानी। अंत में उन्होंने कहा—"तो चलो तुम्हें सूतीगाँव में छोड़ आऊँ।"

शैल बोली—"लोग तो कहते हैं कि यहाँ की बहुएँ बड़ी होने पर पिता के यहाँ नहीं जाया करतीं। मैं गई तो बड़ी निंदा होगी।"

"दिल्ली यहाँ है? घोड़े की डाक से एक महीने का रास्ता है। पालकी से जाने पर तीन महीने और नाव से छः महीने लगेंगे।"

"मुझे अपने साथ नहीं ले जाओगे तो तुम्हारे पैरों पर सिर पटक-पटक कर मर जाऊँगी।"

निरुपाय होकर असीम ने त्रिविक्रम और सुदर्शन के साथ परामर्श किया। निश्चय हुआ कि दो पालकियों के साथ असीम सुदर्शन और भूपेंद्र को लेकर यात्रा करेंगे। सूबेदार से परवाना लेकर अगर पालकी-वालों की डाक बैठा दी जाय तो दो महीने में दिल्ली पहुँचा जा सकता सकता है। मुर्शिदकुली से विदा होकर दूसरे दिन सुदर्शन और उनकी स्त्री, भूपेंद्र और शैल को साथ लेकर असीम ने प्रस्थान किया। चलते समय त्रिविक्रम बहुत दूर तक असीम को बिदा करने आए। उन्होंने कहा—"अब बहुत वृद्ध हो गया हूँ। हो सकता है कि तुमसे फिर भेंट न हो। मेरी तीन बातें याद रखना—एक तो विपत्ति के समय स्त्रियों से परामर्श मत करना, दूसरे स्वार्थ के कारण अपना कर्त्तव्य मत भूलना और तीसरे यह जीवन, यौवन, धन, संपत्ति सब तुच्छ है, स्त्री पुत्र आदि तुम्हारा कोई नहीं है; संसार में केवल तुम्हीं अपने हो, अकेले आए हो और अकेले ही जाना होगा।"

दोनों पालकियाँ और असीम के एक हजार सवार जब आँखों की ओट हो गए तब त्रिविक्रम ने अपने मन में कहा—"भगवती की इच्छा पूरी हुई, अंत में जीत हरनारायण की ही हुई!"

सतहत्तरवाँ परिच्छेद

निजामुद्दीन

आधा माघ बीतने पर असीम दिल्ली पहुँचे। मार्ग में सुदर्शन ने अपने पिता से साक्षात् करके बहू को काशी में ही छोड़ दिया। दुर्गा को देखकर शैल को अत्यंत आश्चर्य हुआ क्योंकि केवल एक बार साधारण बातचीत करने के सिवा वह असीम से बोली तक नहीं। काशी से दिल्ली चलते समय दुर्गा भूपेंद्र को पकड़कर रोने लगी। उसने आपत्तियों से घिरी दिल्ली की यात्रा करने के लिये शैल को भी मना किया। उससे काशी में ही रुक जाने का आग्रह तक किया। पर शैल ने सोचा कि यह सब छल है। असीम यदि अकेले चले गए तो दुर्गा उसे छोड़कर उनसे जा मिलेगी। उसने किसी की बात नहीं मानी और पति के साथ ही दिल्ली चली।

हिजरी सन् ११३१ की ४थी रबिउस्सानी (२३ फरवरी, सन् १७१९ ई०) को अब्दुल्ला खाँ और हुसेन अली खाँ बादशाह के दरबार में उपस्थित हुए। इसके दो दिन पहले ही आमेर के राजा जयसिंह और बूँदी के राजा बुधसिंह हाड़ा को दिल्ली से प्रस्थान करने की आज्ञा मिल चुकी थी। अब्दुल्ला खाँ और हुसेन अली खाँ के डर से बादशाह एक एक करके समस्त विश्वस्त अनुचरों को दिल्ली

से विदा कर रहे थे। दरबार में बादशाह से साक्षात् करके असीम ने तुगलकाबाद अर्थात् गाजियाबाद में सेना ले जाने की आज्ञा प्राप्त की। राजा जयसिंह दिल्ली से चलकर थोड़ी ही दूरी पर पड़ाव डाले हुए थे। उनसे परामर्श करके असीम ने अपनी सेना तुगलकाबाद के पास ओखला नामक गाँव में इकट्ठी की। वे स्वयं सपरिवार दिल्ली दरवाजे के पास टिके।

हुसेन अली खाँ और अब्दुल्ला खाँ के बादशाही दरबार में उपस्थित होने पर सभी की धारणा हुई कि वजीर और प्रधान सेनापति से बादशाह का जो मतभेद था वह समाप्त हो गया। असीम घोड़े पर सवार होकर दिल्ली दरवाजे से निकल ओखला की ओर अग्रसर हुए। दिल्ली में उस समय भीषण सरदी पड़ रही थी। प्रातःकाल रास्ते में विशेष भीड़ नहीं थी। सूर्योदय होते होते असीम निजामुद्दीन की समाधि तक पहुँच गए। समाधि के पास एक स्त्री भजन गा रही थी। उसका कंठस्वर सुनकर असीम ने उसकी ओर घोड़ा फिराया।

अलाउद्दीन खिलजी द्वारा निर्मित उस प्रकांड मसजिद के प्रशस्त आँगन में स्वच्छ संगमरमर के बने समाधि-मंदिर में सुविख्यात मुसलमान संत निजामुद्दीन औलिया समाधिस्थ हैं। समाधि-मंदिर के दरवाजे के सामने शाहजहाँ की बेटी की खुली हुई कब्र है। इन दोनों समाधियों के बीच में संगमरमर के फर्श पर बैठी हुई एक स्त्री सारंगी बजाकर भजन गा रही थी। असीम वहीं आकर खड़े हो गए। उस स्त्री का सर्वांग हरे रंग के बुरके से ढका हुआ था इसलिये उसके साथ बातचीत करना शिष्टाचार के विरुद्ध समझकर असीम दूर खड़े रहे। गाना समाप्त हो गया। असीम मंत्रमुग्ध की भाँति सुनते रहे। वह स्त्री सारंगी रख कर उठी। एक छोटे से सुंदर बालक ने सारंगी उठा ली और स्त्री का हाथ पकड़कर ले चला। तब असीम उनके सामने जा पहुँचे। उन्हें

देखते ही वह स्त्री रोमांचित हो गई। उसने बुरके के सामने का आवरण हटाकर सलाम किया। असीम बोले—"मुन्नी, तुम्हारा कंठ-स्वर मुझे बादशाही सड़क से खींचकर यहाँ लिवा लाया। दिल्ली दरवाजे से मैं ओखला जा रहा था। रास्ते में दिल्ली के प्राचीन ध्वंसावशेषों में तुम्हारा कंठस्वर सुनकर चकित हो गया। तुम वृंदावन नहीं गईं मुन्नी ?"

मुन्नी ने उत्तर दिया—"वृंदावन जाकर मैंने बहुत सोच-विचारकर देखा कि मेरे छोड़ देने पर फरीद इस संसार में ठीक तरह से टिक नहीं सकेगा, इसलिये पिता से कहकर चार पाँच वर्ष हुए मैं दिल्ली चली आई थी। आप कब आए ?"

"दो चार दिन हुए। वजीर से झगड़ा होने के कारण बादशाह ने सेना सहित आने की आज्ञा दी थी।"

असीम ने लक्ष्य किया कि पहले उन्हें देखकर मुन्नी की आँखें प्रसन्नता से जैसे नाच उठती थीं आज उनका वह भाव नहीं है। दूसरी चर्चा छेड़ने के उद्देश्य से उन्होंने कहा—"फरीद खाँ कहाँ हैं ?"

"यहीं है। हम लोग कल दिल्ली से आए हैं। दो दिन यहाँ ठहरकर वापस लौट जायँगे। अल्लाह की मेहरबानी से फरीद का मन अब ठिकाने आ गया है। उसका ब्याह कराकर उसे गृहस्थ बना दिया है। आजकल वह अमीन खाँ चीन की फौज में पंजसदी है।"

"फरीद भी यहाँ आया है ?"

"फरीद ही नहीं, उसकी स्त्री भी आई हुई है। यह उसी का बड़ा लड़का है।"

"तो चलो उससे मिल लूँ।"

"अब आज आप यहीं रहें न !"

"चलो, रहूँगा।"

बच्चे का हाथ पकड़कर मुन्नी निजामुद्दीन औलिया की समाधि से नीचे उतरी। असीम उसके पीछे पीछे चले। पास के एक तीन तल्ले के मकान में फरीद खाँ टिके हुए थे। अब तक जो लोग निजामुद्दीन औलिया की कब्र के दर्शनार्थ आते हैं वे इसी टूटे फूटे मकान में ठहरा करते हैं। इस मकान में अकबरकालीन एक विख्यात अमीर की कब्र थी। तितल्ले मकान के पीछे मसजिद थी और चारों ओर चहारदीवारी। मुन्नी फरीद के बच्चे को लेकर मकान के भीतर चली गई। थोड़ी ही देर में फरीद खाँ ने बाहर आकर असीम का आलिंगन किया। कुशल क्षेम के अनंतर फरीद ने पूछा—"राजा साहब, आपकी फौज कहाँ है ?"

असीम ने विस्मयपूर्वक पूछा—"क्यों ?"

"दिल्ली से खबर आई है कि कुतुब-उल्-मुल्क अब्दुल्ला खाँ ने किले में से बादशाही फौज को निकाल बाहर करके महलसरा पर कब्जा कर लिया है। बादशाह इस समय कैदी हैं। सभी इस समय विश्वास-घातक हो उठे हैं। इत्तिकाद खाँ, गाजीउद्दीन खाँ, अहमद बेग और बादशाह के श्वसुर सआदत खाँ ने चारों ओर से अपने आदमियों को बुलवाया है। मैं यहीं निजामुद्दीन में बाल बच्चों को मुन्नी को सौंपकर अभी दिल्ली जा रहा हूँ। राजा साहब, आप बादशाह के मित्र हैं। आपका क्या विचार है ?"

"मुझे तो कोई समाचार नहीं मिला। लेकिन जब आप जा रहे हैं तब मैं भी चलूँगा।"

"आपकी फौज कहाँ है ?"

"यहाँ से बहुत दूर, ओखला की मंडी के पास।"

"राजा साहब, आप तुरंत वहाँ जाइए और फौज लेकर फौरन वापस आ जाइए। आपकी फौज में राजपूत हैं या पठान ? जैसी खबरें

सुन रहा हूँ उनसे संदेह होता है कि आपकी फौज के लोग आपकी बात नहीं मानेंगे। हिंदुस्तान के तमाम मुसलमान और राजपूत नमकहरामी पर आमादा हैं।"

"खाँ साहब, मेरी सेना बंगाली हिंदुओं की है।"

"तब आप फौरन जाइए। जहाँ तक जल्द हो सके फौज के साथ काबुली दरवाजे पर पहुँचिएगा। दिल्ली की खबर लेकर मैं वहीं आपकी बाट देखूँगा।"

असीम ने तुरंत घोड़े पर सवार होकर दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान किया। फरीद खाँ ने भी उत्तर की ओर अपना घोड़ा बढ़ाया।

अठत्तरवाँ परिच्छेद

राज्य के अंतिम दिन

सन् ११३१ हिजरी की ६वीं रबिउस्सानी को प्रातःकाल समस्त दिल्ली नगर स्तब्ध हो गया। सब लोगों ने सुना कि नगर पर हुसेन अली और अब्दुल्ला खाँ का अधिकार हो गया है और बादशाह फर्रुखसियर किले में बंदी हैं। कोई कहता था कि बादशाह के श्वसुर जोधपुर के राजा अजितसिंह ने जामाता की दुर्दशा देखकर अब्दुल्ला खाँ की हत्या कर दी। कोई कहता था कि चीन किलिच खाँ निजाम-उल्-मुल्क और अमीन खाँ चीन ने बादशाह की रक्षा के लिये किले पर धावा बोल दिया है। किंतु बाद में लोगों ने देखा कि इन दोनों विश्वासघाती तूरानी मुगल सेनापतियों ने बादशाह को बचाने का कुछ भी प्रयत्न नहीं किया। उस दिन फर्रुखसियर के राज्यकाल का अंतिम दिन था। विश्वासघाती मुसलमान और राजपूत सेनापतियों में से किसी को अभागे बादशाह की सहायता के लिये आगे बढ़ते न देख इत्तिकाद खाँ, इसलाम खाँ, मुखलिस खाँ इत्यादि कतिपय साधारण सेनानायक नगर के भीतर प्रविष्ट होकर दिल्ली दरवाजे तक पहुँचे लेकिन निर्लज्ज राजपूत अजितसिंह और सैयद अब्दुल्ला खाँ ने इनपर गोला बरसाना आरंभ कर दिया फलतः बाध्य होकर ये पीछे हट आए। इत्तिकाद खाँ आहत हो गया। इस सेना में शिक्षित सिपाही नहीं थे। जो लोग युद्ध करने

के लिये आगे बढ़े थे वे किले की तोपों का गर्जन सुनकर डर के मारे भाग खड़े हुए।

तीसरा पहर बीतने पर एक हजार सवारों के साथ असीम जिस समय काबुली दरवाजे के पास पहुँचे उस समय फरीद खाँ उनसे सड़क पर मिले। असीम ने पूछा—"क्या समाचार है खाँ साहब ?"

दुःखी होकर फरीद खाँ बोले—समाचार अच्छा नहीं है राजा साहब। तमाम मुसलमान और राजपूत विश्वासघाती हो गए हैं। चीन किलिच खाँ या अमीन खाँ चीन ने बादशाह को बचाने की चेष्टा नहीं की। किले पर चढ़ाई करने में इत्तिकाद खाँ घायल हो गए हैं। बादशाह की कोई खबर नहीं मिली। शहर का दिल्ली दरवाजा बंद कर दिया गया है। सैयदों का बख्शी दिलावर अली खाँ दिल्ली दरवाजे के पास तोपें चढ़ाए डटा हुआ है जिसमें उधर से कोई बादशाह की सहायता करने न जाने पाए। सरबुलंद खाँ लाहोरी दरवाजे पर तैनात हैं। चलिए देखें, और किसी फाटक से फौज को भीतर ले जाने का रास्ता मिलता है या नहीं।"

फरीद खाँ के परामर्श के अनुसार असीम एक हजार सवारों को लेकर दो कोस का चक्कर लगाकर जब अजमेरी दरवाजे पर पहुँचे तब उन्होंने सुना कि शहर के सब दरवाजे बंद हैं और हुसेन अली खाँ की आज्ञा है कि हथियार लेकर कोई आदमी भीतर न जाने पाए। तब अजमेरी दरवाजे के पास पहाड़गंज की सराय में सेना को छोड़कर अस्त्र-शस्त्र उतारकर सायंकाल असीम और फरीद अजमेरी दरवाजे से शहर के भीतर प्रविष्ट हुए।

दिल्ली का राजमार्ग जनशून्य था। दूकानें बंद पड़ी थीं। रास्ते में प्रकाश तक नहीं था। बड़ी कठिनाई से रास्ता चलकर जब असीम

अपने निवासस्थान पर पहुँचे तब रात्रि का प्रथम प्रहर बीत चला था। वहाँ का हालचाल लेकर सिर से पैर तक जिरह-बकतर चढ़ाए असीम और फरीद खाँ आधीरात के लगभग टोह लेने के उद्देश्य से बाहर निकले। चाँदनी चौक के पास उन्हें दो चार व्यक्ति मिले अवश्य, किंतु वे सब सैनिक थे और सैयदों की ओर मिल गए थे। किले के दक्षिण ओर औरंगजेब की लड़की जीनतउन्निसा बेगम की मसजिद के पास फरीद खाँ को दो चार परिचित व्यक्ति मिले। असीम और फरीद को उनसे ज्ञात हुआ कि हिंदुस्तानी मुसलमानों में इत्तिकाद खाँ और तूरानी मुगलों में आगर खाँ लड़ते लड़ते घायल हुए हैं। युद्ध बंद हो गया है। संभवतः हुसेन अली खाँ स्वयं बादशाह होंगे।

उन लोगों से विशेष बातचीत न करके असीम और फरीद यमुना के शुष्क गर्भ में उतर पड़े और किले के पूरब ओर होकर सलीमगढ़ के किले के पास पहुँचे। उन्होंने देखा कि यमुना का तट भी सुरक्षित है। जाट राजा चूड़ामणि के अधीन सैयदों की बहुत सी वेतनभोगी हिंदू सेना यमुना के गर्भ में छावनी डाले पड़ी है। काबुली और कश्मीरी दरवाजा होते हुए लौटकर असीम और फरीद जिस समय अपने निवासस्थान पर पहुँचे उस समय रात्रि प्रायः बीत चली थी। प्रातःकाल फरीद खाँ अकेले निकले। असीम ने चलते समय उनसे कहा कि मैं भी अजमेरी दरवाजे के पास फौज का प्रबंध करने आऊँगा।

फरीद खाँ के चले जाने पर शैल ने असीम को बुला भेजा। भीतर पहुँचने पर अपना सुंदर मुखड़ा तिरछा करके उसने कर्कश कंठ से पूछा—"रात में कहाँ थे?"

विरक्तिपूर्वक असीम ने पूछा—"इससे तुम्हारा क्या प्रयोजन है?"

शैल ने झनककर कहा—"अच्छा! तो तुमने फिर रात में घूमना

आरंभ कर दिया। दुर्गा रानी का साथ छूटने के बाद इतने दिनों तक यह आदत बंद थी। रानी साहब फिर आ पहुँची हैं क्या ?"

क्रुद्ध होकर असीम बोले—"शैल, तुम्हारी इस पापी जीभ को टुकड़े टुकड़े करके कुत्ते को खिला देना चाहिए !"

विकृत कंठ से उच्च हास्य करके शैल बोली—"ठहरो ठहरो, पहले तुम्हारी सती सावित्री रानी को कुत्ते को खिला लूँ तब मेरी जीभ काटने आना। कल रात में कहाँ गए थे, बोलो तो सही ?"

अत्यंत कुपित होकर असीम ने कहा—"किसी तरह नहीं बताऊँगा।"

शैल बोली—"तब दुर्गा अवश्य आई है।"

बिना कुछ उत्तर दिए असीम बाहर निकल आए और घोड़े पर सवार होकर अजमेरी दरवाजे की ओर चले।

अजमेरी दरवाजे के भीतर सिर से पैर तक बुरके में लिपटी एक भिखारिणी गाना गाकर भीख माँग रही थी। उसका कंठस्वर सुनकर असीम उसके पास चले गए और पूछा—"मुन्नी, तुम दिल्ली कब आई ?"

सलाम करके मुन्नी ने उत्तर दिया—"हुजूर, कल सारा दिन कुछ नहीं मिला। रात दिन भूखी रही। खुदा आपका भला करे। यह रोटी की एक दूकान खुल गई है, मेहरबानी करके एक रोटी दिला दीजिए।"

उसका अनुरोध सुनकर असीम बड़े विस्मित हुए लेकिन उन्होंने सोचा कि बिना विशेष कार्य हुए मुन्नी इस प्रकार भीख माँगने नहीं निकलती। अजमेरी दरवाजे के पास एक रोटीवाला दूकान खोलकर गरम गरम रोटियाँ पका रहा था। असीम ने उसकी दूकान से एक पैसे की चार बड़ी बड़ी रोटियाँ खरीदकर मुन्नी को दीं। मुन्नी ने एक रोटी उठाकर मुँह से लगाया ही था कि तुरंत उसे बाहर निकालकर

असीम की ओर फेंक मारा। असीम स्तब्ध रह गए। घृणित भाषा में असीम को गाली देती देती मुन्नी ने बाकी तीनों रोटियाँ कुत्तों को डाल दीं। जिस रोटी से उसने असीम को मारा था उसे असीम ने पकड़ा नहीं, यह देखकर मुन्नी कहने लगी—"काफिर, हरामखोर, हरामजादे, नमकहराम, मैं सुअर हूँ जो रास्ते का गलीज उठाकर खऊँगी ? तू हराम, तेरी रोटी हराम ! तू नरक में जाकर अपनी रोटी खा।"

असीम समझ गए कि मुन्नी रोटी उठा लेने के लिये इंगित कर रही है। घोड़े से उतरकर उन्होंने रोटी उठा ली और टटोलकर देखा कि उसके भीतर कोई कड़ी वस्तु दबाई हुई है।

रोटी को कपड़ों में छिपाकर असीम पहाड़गंज की ओर चले। फाटक पार करने पर उन्होंने देखा कि अश्लील और अश्रव्य भाषा में गाली देती देती मुन्नी भी बाहर आ रही है। एक पुरानी कब्र के पास वे घोड़े से उतर पड़े और रोटी के भीतर से उस कड़ी वस्तु को बाहर निकाला। उन्होंने देखा कि ताँबे के छोटे से जंतर में एक पत्र है। पत्र देखते ही वे रोमांचित हो उठे क्योंकि वह स्वयं बादशाह फर्रुखसियर के हस्ताक्षरों में था। बादशाह ने लिखा था—

"मित्र, आज मैं अंधा हूँ। नमकहरामों ने मेरी आँखों में जलती हुई सलाइयाँ फेर दी हैं। मैं आज एकाकी हूँ क्योंकि मेरी बादशाही खत्म हो चुकी है। अगर तुम मेरे सच्चे मित्र हो तो मेरा उद्धार करो।"

पढ़ना समाप्त होने के पहले ही मुन्नी वहाँ आ पहुँची। असीम ने उससे पूछा—"मुन्नी, यह पत्र तुमने कहाँ पाया ?"

मुन्नी बोली—"लाहोरी दरवाजे पर भीख माँगती थी, वहीं मिला। आप इस समय चले जाइए। आधी रात को फरीद के साथ

दो घोड़े लेकर लाहोरी दरवाजे के बाहर तैयार रहिएगा। अजमेरी दरवाजे के पहरेदार को घूस देकर मैंने मिला लिया है।"

इतना कहकर पुनः अकथ्य भाषा में राजपूत राजा अजितसिंह को गालियाँ देती हुई मुन्नी चली गई। असीम हतबुद्धि हो उसकी ओर देखते रह गए।

उन्नासीवाँ परिच्छेद

ऋण परिशोध

फर्रुखसियर के अधःपतन का इतिहास आज सर्वविदित है। राजप्रासाद और अंतःपुर पर अब्दुल्ला खाँ का अधिकार हो जाने पर हतभाग्य बादशाह फर्रुखसियर अपने श्वसुर जोधपुर के राजा अजितसिंह के आदेशानुसार अपनी माता और पत्नी के आलिंगन पाश से विच्छिन्न करके दीवान-ए-खास अब्दुल्ला खाँ के समक्ष उपस्थित किए गए थे और उस विश्वासघाती सैयद के आदेश से उनकी आँखों पर जलती हुई सलाइयाँ फेर दी गई थीं। इसके बाद फर्रुखसियर को त्रिपोलिया दरवाजे पर बंदी कर रखा गया था। अब्दुल्ला खाँ और हुसेन अली खाँ जिस समय नरपिशाच अजितसिंह के साथ फर्रुखसियर की हत्या करने का परामर्श कर रहे थे उसी समय असीम और फरीद खाँ उन्हें छुड़ाकर जयपुर के राजा जयसिंह के पास ले जाने का उपक्रम कर रहे थे।

सारा दिन घर पर बिताकर संध्या होने पर असीम जब बाहर जाने की तैयारी कर रहे थे उसी समय नौकर ने सूचना दी कि एक भिखारिन मिलना चाहती है। असीम मन में तो समझ गए कि

मुन्नी मिलने आई है, पर उन्होंने नौकर से कहा—"भिखारिनी को सदर दरवाजे पर रहने दो, मैं आ रहा हूँ।"

यह समाचार किस प्रकार भीतर पहुँच गया, इसे असीम नहीं समझ सके। वे उठे। एक नौकर जलती हुई मशाल लेकर आगे आगे चला। भिखारिनी मुन्नी ही थी। उसका समस्त शरीर फटे पुराने बुरके से ढका हुआ था। असीम को देखते ही उसने सामने का परदा उलट दिया। मशाल की तेज रोशनी मुन्नी के चेहरे पर पड़ते ही ऊपर तितल्ले पर कोई हँस पड़ा। असीम ने आश्चर्यचकित होकर देखा कि तितल्ले की खिड़की पर मुँह खोले शैल खड़ी है और उसके सामने दिया हाथ में लिए एक दासी झाँक रही है।

असीम की समझ में यह बात उस समय नहीं आई कि मुन्नी को देखकर शैल उनका जीवन कहाँतक विषमय कर डालेगी। विरक्त होकर उन्होंने तितल्ले की खिड़की से अपनी दृष्टि हटा ली। मुन्नी की समझ में कुछ नहीं आया। उसने कहा—"हुजूर, आप इस समय बाहर मत जाइएगा। फरीद और मैं सब ठीक ठाक करके आपको बुलाने आऊँगी।"

मुन्नी की बातें शैल के कानों में पड़ीं तो वह पुनः खिलखिलाकर हँस पड़ी। असीम उसे सुनकर और भी विरक्त हुए किंतु कुछ बोले नहीं। उन्हें चुप देख कर मुन्नी ने कहा—"बड़ी कठिनाई से पठान अब्दुल्ला खाँ को वश में किया है लेकिन रतनचंद की तवायफ गुलाब बाई से मालूम हुआ है कि बादशाह की कल हत्या कर दी जायगी। इसलिये अगर आज ही रात में कुछ प्रबंध नहीं होता तो इतना परिश्रम और प्रयत्न व्यर्थ हो जायगा।"

मुन्नी की बातों पर कुछ देर विचार करने के अनंतर असीम ने

कहा—"देखो मुन्नी, रात में तुम अकेली मत आना, फरीद को साथ ले लेना।"

असीम की बात समाप्त होने के पहले ही शैल की ऊँची हँसी असीम और मुन्नी के कानों में पहुँची। असीम क्रोध के मारे दाँत पीसने लगे। मुन्नी सलाम करके बिदा हुई।

रात्रि का पहला पहर बीतने पर एक दासी ने आकर असीम को सूचित किया—"रानी साहब की तबीयत ठीक नहीं है। उन्होंने आपको बुलाया है।"

शैल के व्यवहार से असीम अत्यंत क्षुब्ध हो गए थे। उन्होंने दासी से कहा—"किसी नौकर से कह दो कि हकीम को बुला लाए। लेकिन इतनी रात गए हकीम से भेंट होगी या नहीं, इसमें भी संदेह है। मैं अभी कपड़े बदल रहा हूँ। मुझे भीतर जाने में विलंब होगा।"

दासी चली गई। सिर से पैर तक असीम ने लोहे का जिरह-बकतर कसा, उसके ऊपर कपड़े पहने। संध्या के बाद से ही वर्षा होने लगी थी, इसलिये दिल्ली में उस दिन भयंकर सरदी पड़ रही थी। असीम ने मोटे तूल का एक कुरता पहना, उसके ऊपर चमड़े का चोगा चढ़ाया। सिर पर लोहे का शिरस्त्राण रखकर जिस समय उन्होंने पगड़ी बाँधना प्रारंभ किया उसी समय वह दासी दौड़ती हुई आई और बोली—"हुजूर, जल्दी आइए, हकीम नहीं मिले, रानी जी न जाने कैसा कर रही हैं।"

असीम जल्दी जल्दी भीतर पहुँचकर देखते हैं कि शैल शयनकक्ष में भूमि पर पड़ी छटपटा रही है। तब क्षोभ और विरक्ति को भूलकर असीम ने पत्नी के पास बैठकर स्नेहपूर्वक पूछा—"क्या हुआ है शैल? ऐसा क्यों कर रही हो?"

शैल ने चीत्कार करके कहा—"तुम्हारी राह का काँटा दूर करने के लिये मैंने विष खा लिया है। मुन्नी तुम्हें जिस रासलीला का निमंत्रण देने आई थी उसे अपनी आँखों देख चुकी हूँ। बहुत सहन कर चुकी, आज बरदाश्त के बाहर हो गया। अब जी भरकर तुम रास रचो। भगवान को साक्षी करके तुमने मुझसे विवाह किया था, इसीलिये तुमसे इतना कह रही हूँ कि अंत काल में मुझे परदेश में अकेली मरने के लिये छोड़कर मुन्नी के साथ मौज करने मत जाओ; मेरे प्राण निकल जायँ तब जाना।"

शैल की बातें सुनकर असीम स्तब्ध हो गए। इसी समय बाहर बाँसुरी के स्वर सुनाई पड़े। असीम हड़बड़ाकर उठे। शैल ने भी बाँसुरी सुन ली थी। उसने कसकर असीम को पकड़ लिया और बोली—"पहुँच गई तुम्हारी राधा रानी! बाँसुरी बजाकर तुम्हें यमुना किनारे लिवा ले जाने आई हैं? जाना, कल चले जाना; मनमाना सोलह सौ गोपियों को लेकर रासलीला करना, लेकिन आज की रात धर्म के नाम पर मेरे पास हो रहो।"

बाँसुरी फिर बज उठी। सुनकर असीम को रोमांच हो आया। उनके मानस चक्षुओं के समक्ष बादशाह फर्रुखसियर का गौरवर्ण मलीन मुखमंडल स्पष्ट हो उठा। मुहूर्त्त मात्र के लिये वे किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गए। फिर उन्हें जान पड़ा जैसे लाल पत्थरोंवाले ऊँचे नक्कारखाने की अँधेरी कोठरी में से दोनों भुजाएँ फैलाकर फर्रुखसियर पुकार रहे हैं—"मित्र तुम आज मुझे मत भूलना। मयूरसिंहासन की कंटकाकीर्ण रपटीली राह पर मेरे पैर फिसल गए हैं। बादशाही के साथ साथ सारी दुनिया ने मुझे छोड़ दिया है। मित्र, आज इस असहाय फर्रुखसियर को मत भूलना।"

इसके साथ ही असीम को सुनाई पड़ा कि त्रिविक्रम वज्रगंभीर

स्वर से कह रहे हैं—"तीन बातें स्मरण रखना। एक तो विपत्ति के समय स्त्रियों के परामर्श के अनुसार कार्य मत करना, दूसरे स्वार्थ के कारण कर्त्तव्य को मत भूलना, और तीसरे यौवन, धन, संपत्ति सब कुछ तुच्छ है।"

साथ ही साथ बाँसुरी पुनः बज उठी। उद्भ्रांत होकर असीम ने कहा—"शैल, मेरे सामने कठोर कर्त्तव्य है। बादशाह फर्रुखसियर आज विपन्न और मित्रहीन होकर निराश्रित पड़े हुए हैं। उन्होंने तुच्छाति-तुच्छ असीम राय को स्मरण किया है। तुम मुझे छोड़ दो। तुम मेरी स्त्री अर्थात् धर्मपत्नी हो। कर्त्तव्य ही एकमात्र धर्म है। मुझे कर्त्तव्यपथ से विचलित मत करो। अगर भूल से तुमने विष खा लिया है तो उसके लिये अभी समय है, उसका उपाय किया जा सकता है। मैं हकीम को भेज देता हूँ। बादशाह को अगर छुड़ा सका तो मैं भी तुरंत लौट आऊँगा।"

असीम की बातें सुनकर शैल उन्हें पकड़कर जोर जोर से रोने लगी। वह बोली—"मेरे बादशाह तो तुम्हीं हो। अरे मुझे मरते समय अकेली छोड़कर कहाँ जाओगे?"

असीम उठने जा रहे थे किंतु उसकी बातें सुनकर उसे गोद में लेकर बैठ गए। दासी से उन्होंने कहा—"छोटे मालिक को बुला ला।"

भूपेंद्र तत्काल आ पहुँचा। रुँधे हुए गले से असीम ने कहा—"भूप, मुन्नी को देखकर शैल ने विष खा लिया है और बादशाह की मुक्ति के लिये मुन्नी मुझे बुलाने आई है। मैं जा नहीं सकूँगा। भूपेंद्र, कठोर कर्त्तव्य का सामना है। तुम मुन्नी के साथ जाओ और प्राणपण से बादशाह के उद्धार का प्रयत्न करो।"

असीम ने उठकर भूपेंद्र का आलिंगन किया, चुंबन लिया। उस जन्मांध युवक ने ज्येष्ठ भ्राता तथा भावज को प्रणाम किया और चला गया। डबडबाई हुई आँखों से असीम ने उसे विदा किया लेकिन शैल के ओठों पर क्रूर हँसी की क्षीण रेखा दिखाई पड़ गई। नियति भी हँस रही थी।

आधी रात को चहारदीवारी पार करके अंधा भूपेंद्र गगनचुंबी नक्कारखाने पर चढ़ रहा था। दूर खड़े एक पठान सैनिक ने उसे देखा। इस सैनिक को मुन्नी ने घूस देकर मिला लिया था इसलिये वह अन्यान्य सैनिकों को सतर्क न कर नक्कारखाने के तितल्ले की एक अँधेरी कोठरी में जाकर धीरे धीरे बोला—"शाहंशाह, जिस रास्ते पर मेख लगाई गई थी उसी रास्ते से एक आदमी आ रहा है।"

अंधे बादशाह फर्रुखसियर उत्कंठित होकर असीम की प्रतीक्षा कर रहे थे। वे हड़बड़ाकर उठ खड़े हुए। पठान सैनिक बोला—"हजरत, आप घबड़ाइए नहीं; मैं आपके मित्र को यहीं लिवा लाता हूँ।"

भूपेंद्र ज्योंही मेखों के सहारे ऊपर पहुँचा त्योंही पठान सैनिक उसके पास जाकर धीरे धीरे बोला—"मैं तुम्हारा दोस्त हूँ, पास ही पहरा पड़ रहा है। मेरा हाथ पकड़कर सावधानी से ऊपर आ जाओ।"

पठान भूपेंद्र को बादशाह के पास लिवा ले गया। बादशाह उसे पकड़कर रोने लगे। वे बोले—"मित्र, तुम्हें देखते ही पहचान गया था। उस सुदूर वंग देश में तुमसे भेंट होते ही मैं समझ गया था कि इस विश्वासघाती दुनिया में मुझे तुमसे धोखा नहीं होगा।"

भूपेंद्र ने बादशाह के प्रति तसलीम करके कहा—"शाहंशाह, आप शांत रहें। जिस रास्ते मैं आया हूँ उसी रास्ते आपको जाना होगा।"

फर्रुखसियर बोले—"मित्र, मैं अंधा हूँ?"

भूपेंद्र—"शाहंशाह, मुझे भूल गए क्या? डाहापाड़ा के पीपल तले पहले मेरे साथ ही आपकी भेंट हुई थी। मैं तो जन्म से ही अंधा हूँ।"

भूपेंद्र का हाथ पकड़कर फर्रुखसियर बाहर हुए। अनशन, अनिद्रा और दुश्चिंताओं के कारण उनका शरीर कृश हो गया था। कोठरी के बाहर आने पर फटे कपड़ों में पाँव फँस जाने के कारण वे उलझकर गिर पड़े। पठान सैनिक डरकर भाग गया। बादशाह ने भूपेंद्र से कहा—"मित्र, तुम भी भाग जाओ। पहरेदारों ने आवाज सुन ली होगी, वे आते ही होंगे।"

भूपेंद्र ने बादशाह को कसकर पकड़ लिया और बोला—"शाहंशाह, अन्नदाता को मृत्यु के मुख में ढकेलकर अपना प्राण बचाने के लिये भाग जाऊँ? भूपेंद्र राय ऐसे वंश का नहीं है।"

देखते देखते चारों ओर से विकटाकार पठान पहरेदार दौड़ पड़े। मुहूर्त्त मात्र में दो बरछे अशक्त और अंधे युवक की छाती में घुस गए। भूपेंद्र का शव दिल्ली किले के लाहोरी दरवाजे के सामने फेंककर पठान सैनिकों ने अभागे फर्रुखसियर को फिर कोठरी में बंद कर दिया।

रात समाप्त होते होते जिस समय हकीम आकर शैल को जुलाब देने लगा उस समय विकट हास्य से उस अट्टालिका को प्रकंपित

करती हुई वह बोली—"मैं विष क्यों खाऊँगी ? तुम्हें मुन्नी के साथ न जाने देने के लिये जली हुई तंबाकू खाई थी।"

हकीम लौट गए। असीम उन्मत्त की भाँति दौड़ते हुए बाहर निकले।

उस समय पूर्व दिशा की ओर ऊषा की मधुर मुसकान दिखाई देने लगी थी और उसी के साथ नियति की क्रूर हँसी भी सुनाई पड़ने लगी थी।

अस्सीवाँ परिच्छेद

"खत्म शुद, बिल खैर"

दूसरे दिन दिल्ली नगर जाग उठा। हजारों भिक्षुक लाल किले के दरवाजे पर एकत्र हुए। उनके आगे आगे अवगुंठन विहीन मुन्नी और उद्भ्रांतचित्त असीम राय थे। लाहौरी दरवाजे पर सैयदों की सेना ने उन्हें रोक लिया था। किंतु दूर से ही उन्होंने देखा कि त्रिपोलिया दरवाजे के नीचे दो शव पड़े हुए हैं। बड़ी कठिनाई से दिलावर अली खाँ की अनुमति लेकर असीम लाहौरी दरवाजे के भीतर प्रविष्ट हुए। त्रिपोलिया के ऊँचे तोरण के नीचे फटी हुई चटाई में लपेटा फर्रुखसियर का शव पड़ा हुआ था। उन्हें पहचानकर असीम ने कोर्निश किया और बोले—"शाहंशाह, संसार के स्वामी, कल तुम दीन और दुनिया के मालिक थे और आज तुम्हारी यह दशा!"

उनकी बातें सुनकर अब्दुल्ला खाँ और हुसेनअली खाँ के सैयद सैनिकों के आँसू भी नहीं रुक सके। दूर खड़े भिक्षुक आर्त्तनाद कर उठे। सहसा असीम जैसे पागल हो उठे। दौड़कर वे दूसरे शव के पास पहुँचे और बोले—"भाई भूप! अरे भैया!"

दोनों बरछे तब तक भूप के शरीर में बिंधे हुए थे। उन्हें सावधानी से निकालकर असीम ने भूपेंद्र का शव गोद में लिया और उसे बादशाह

के पैरों के पास रखकर बोल उठे—"जहाँपनाह, मैं नमकहराम हूँ, मैं नमकहराम ! लेकिन तुम उस अज्ञात लोक में अकेले नहीं गए हो मेरा भूप तुम्हें रास्ता दिखाने आकर तुम्हारे साथ ही गया है। हमलोगं का पितृऋण और आपका नमक उसने चुका दिया। किंतु अंत समय मित्र कहकर तुमने जिसे स्मरण किया था वह रूपसी युवती का बाहुपाश छुड़ाकर तुम्हारे पास नहीं आ सका।"

असीम की बातें सुनकर वृद्ध सैयद और पठान सैनिक भी रोने लगे। देखते देखते बख्शी दिलावर अली खाँ और सैयद अली खाँ भी पहुँच गए। बादशाह फर्रुखसियर का मृत शरीर शवाधार में रख दिया गया। दो चार छोटे मोटे स्वामिभक्त मनसबदारों और खोजों के सिवा और कोई पास भी नहीं फटका। बादशाह के शवाधार के साथ चार हिंदू व्यक्ति भूपेंद्र का शव लेकर चले। देखते देखते चाँदनी चौक के रास्ते पर हजारों नागरिकों की भीड़ इकट्ठी हो गई। प्रायः प्रत्येक घर की स्त्रियाँ तक मृत बादशाह का शव देखने बाहर निकल आईं। सबके संमिलित आर्त्तनाद से आकाश तक गूँज उठा। दिल्ली दरवाजे और काबुली दरवाजे के बीच हुमायूँ के मकबरे के पास दोनों शव ले जाए गए। उसी विशाल मकबरे की एक अँधेरी कोठरी में बादशाह फर्रुखसियर समाधिस्थ हैं।

बादशाह को दफन करने के बाद हिंदुओं ने यमुनातट पर भूपेंद्र की उत्तरक्रिया संपन्न की। सैयदों की आज्ञा से हजारों रोटियाँ, ताँबे और चाँदी के सिक्के मुगल सम्राटों की रीति के अनुसार भिक्षुकों को बाँटे गए। मुन्नी ने रोटी का एक टुकड़ा लिया और थूककर उसे फेंक दिया। वह बोली—"भाई लोगो, नमकहरामों की रोटी नमकहलालों के लिये हराम है।"

बीसों हजार भिक्षुकों ने रोटी और पैसों पर थूक थूककर उनसे

ैलाबर अली और सैयद अली को मारना आरंभ किया। उन्होंने भाग- र अपनी जानें बचाईं।

कलश भर यमुना का जल लाकर भूपेंद्र की चिता ठंढी करके असीम जब यमुना किनारे रेती पर आकर खड़े हुए तब उनकी उद्भ्रांत दृष्टि को लक्ष्य करके मुन्नी बोली—"जनाब, अब घर लौट चलिए।"

उन्मत्त की भाँति मुन्नी के चेहरे की ओर देखते हुए असीम ने कहा—"घर ? कहाँ है घर ?"

मुन्नी ने तब हँसकर स्नेहपूर्वक असीम को पकड़ लिया और बोली— "समझी ! समझी ! गोपाल तुम्हें भी बुला रहे हैं। चलो, गोपाल के ही घर चलें।"

शून्य की ओर देखते हुए असीम ने कहा—"चलो।"

उस समय सद्यःस्नाता सुसज्जिता शैल असीम की प्रतीक्षा कर रही थी—और नियति हँस रही थी।

समाप्त